जैन परम्परा का रामकथा साहित्य

एक अनुशीलन

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

डॉ. शान्तिलाल खेमचंद शाह

एम्. ए., पीएच. डी.

प्रकाशक :
सौ. रेखावती शाह
४२४९ सोमवार पेठ,
बार्शी (जि. सोलापूर)

मूल्य रु. १०

प्रकाशन की अनुमति के लिये
पूना विश्वविद्यालय के
आभार

मुद्रक :
श्री. क. ला. मुनोत, एम्. ए.
प्रभात प्रिन्टिंग वर्क्स
४२७ गुलटेकडी, पूना ९

I have read with great pleasure and profit the book " Jain Paramparaka Ramkatha Sahitya — Ek Anushilan " by Dr. Shantilal Khemchand Shah. The author has first given the story of Ram, according to Ramayan of Valmiki and other Hindu sources and then told us how the same topics are treated in various Jain literary works. Thus it is a comparative study in great details of the Hindu and Jain Ramayan in the broad sense. This study should be particularly appreciated both by theJains, and Hindus and all scholars who are interested in the organic and the deifications of Rama's story.

If an English Version is prepared it will be useful to the scholars all over the world.

- H. D. Sankalia

15-3-1977

Professor Emeritees
Deccan College
Poona.

पं. पद्मश्री सुमतीबाई शहा

अध्यक्ष

महिला विद्यापीठ

डॉ. शांतिलाल खेमचंद शाह का पीएच्. डी. पदवी प्राप्त " जैन परंपरा का रामकथा साहित्य - एक अनुशीलन " प्रबंध पढा ।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी और डॉ. रामसिंग तोमर जैसे हिंदी साहित्य क्षेत्र के मूर्धन्य विद्वान परीक्षकों की कसौटीपर कसा जानेपर वह खरा निकला यही उसकी योग्यता की निशानी है ! रामकथा की विविधता पर प्रकाश डालते हुए विद्वान लेखक ने वाल्मीकि रामायण तथा तुलसी रामायण की पृष्ठभूमीपर विमल-सूरी का पउमचरिअ, स्वयंभू का पउमचरिउं, गुणभद्र का उत्तरपुराण तथा हेमचंद्र का त्रिषष्टि शलाका पुरुष - चरित्र, आदि का जो अनुशीलन किया है वह बडा ही विद्वत्तापूर्ण एवं प्रशंसनीय है । प्राकृत, अपभ्रंश तथा संस्कृत इन तीन भाषाओं के महाकाव्यों का इस प्रकार का विस्तृत अनुशीलन प्रथम हीं हो रहा है । मैं तो कहूंगी कि डॉ. कामिल बुल्के की रामकथा के बाद रामकथा का इतना विस्तृत अनुशीलन डॉ. शाह ने ही किया है । रामचरित्र के पात्रोंका चरित्र चित्रण तथा काव्यकला प्रकटन पठनीय ही नहीं किंतु चिन्तनीय है । जैन शासनकी प्रभावनामें इस ग्रंथ का स्थान अनोखा रहेगा । मैं अपनी ओरसे ग्रंथ लेखक को हार्दिक बधाई देती हूं । और समाज से अनुरोध करती हूं कि ऐसे ग्रंथों को उत्तेजन देकर इस प्रकारके अधिकाधिक ग्रंथ प्रकाशित होने में सहायता प्रदान करें ।

२७ सितंबर १९७६

पद्मश्री पं. सुमतिबाई शहा
अध्यक्ष,
महिला विद्यापीठ, सोलापूर

श्राविका संस्थानगर
बुधवार, सोलापूर-२
फोन नं. ४४५५

डॉ. शांतिलाल के. शाह का पीएच. डी. के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध 'जैन परंपरा का रामकथा साहित्य– एक अनुशीलन' वैचारिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

रामकथा साहित्य वैदिक, जैन एवं बौद्ध इन तीनों दर्शनों में विशिष्ट रूप से प्राप्त होता है। विशेषतया वाल्मीकि रामायण ही लोगों के सामने अधिकतर आता है। किंतु वाल्मीकि रामायण में हम पाते हैं कि व्यक्तिपूजा में लेखक एकांगी बने हैं। अपना नायक सर्व–गुण–संपन्न है। उसके समर्थक गुणवान, लब्धिवान हैं। और नायक का विरोध करनेवाला सर्व दोषयुक्त, संक्षेप में राक्षस है, और उसकी सहायता करनेवाले भी राक्षस कुलोत्पन्न ही हैं। एक व्यक्ति को आदर्श वर्णित करते समय उसके विरोधकों के सभी गुणों को नष्टप्राय करने की वृत्ति ने ही तिरस्कार वृत्ति को जन्म दिया है और हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायण के प्रति दाक्षिणात्य हीन भावना रखते हैं।

जैन विचारकों ने इसी पहलू पर गौर किया और रामायण की सभी संबंधित व्यक्तियों की ओर न्यायपूर्ण दृष्टिकोन रखा। हम इसमें पक्षपात का अभाव तथा न्यायबुद्धि का प्रभाव पाते हैं।

डॉ. शांतिलाल ने अपने शोध प्रबन्ध में इसी महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डाला है और यही कारण है कि विद्वानों में यह महत्त्वपूर्ण विवेचक बुद्धि अपना स्थान अवश्य प्राप्त करेगी। डॉ. शांतिलाल के परिश्रम मेरी दृष्टि में प्रशंसापात्र हैं। ग्रन्थरूप में प्रकाशित होने वाला यह प्रबन्ध विद्वन्मान्यता प्राप्त करे यही मेरी मंगल कामना है।

पूना, २०-३-७७
नव वर्ष प्रभात

–कनकमल मुनोत

○ ○ ○

हृद्गत

रामकथा संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न पद्धतियों से अभिव्यक्त की गई काव्यकथा है। राम के चरित्र का भारतीय जनजीवन में अतिव्यापक महत्त्व है। अनेक भाषाओं में लिखित रामकथा-साहित्य साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक महत्त्व रखता है।

महाकवि वाल्मीकि ने अपनी प्रतिभासे यह महाकाव्य रचा। संत तुलसीदासने इसे भारतीय संस्कृति का मुकुटमणि बनाया। दोनों की प्रतिभा, दृष्टिकोण और रचना पद्धति भिन्न थी।

जैन परम्परा में अनेक कवियों ने रामकाव्य की रचना की, पर उनमें प्रमुख रचनाएं हैं विमलसूरि की प्राकृत रचना 'पउमचरिअ' स्वयंभू की अपभ्रंश रचना 'पउमचरिउ' गुणभद्राचार्य की संस्कृत रचना 'उत्तर पुराण' और हेमचन्द्राचार्य की संस्कृत रचना 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र'

एक भ्रम पैदा हुआ था कि वाल्मीकि रामकथा का जैन-धर्म प्रचार के लिये विकृतीकरण करके जैन रामकथा बनी है। इस का शिकार जैन एवं जैनेतर विद्वान बने थे। मैंने वाल्मीकि तथा तुलसी की रामकथा की पृष्ठभूमिपर जैन कथाओंका तुलनात्मक अनुशीलन करकें कथा, चरित्र चित्रण, दर्शन आदि की दृष्टि से जैन रामकथा की मौलिकता प्रतिपादित की है। इसमें जैन संस्कृति के प्रति पक्षपात नहीं है पर भारतीय संस्कृति का एक मौलिक अंग पूर्वग्रह दूषित विचारों के कारण उपेक्षित बना था उसे उसका अपना उचित स्थान देने की कोशिश की है। वाल्मीकि को और तुलसी को प्राचीन रामकथा का एक सूत्र प्राप्त हुआ जिसे उन्होंने अपनी प्रतिभा से महाकाव्य में परिवर्तित किया। जैनाचार्यों को भी उसी प्राचीन परंपरा का नामावलिबद्ध एक सूत्र मिला जिसका उन्होंने अपनी प्रतिभा के अनुसार महाकाव्य बनाया। इसकी तुलना से प्राकृत अपभ्रंश और संस्कृत भाषाओं के काव्यों का रसास्वाद प्राप्त होगा। कथाशृंखला की जो कडियाँ वाल्मीकि तथा तुलसी में टूटी हुई लगती हैं उन्हें जैनाचार्यों ने जोड दिया है।

राम चरित्र को दोनों महाकवियोंने भक्तिभाव से देखा है जिसके कारण राम के सहायक सज्जन बन गये हैं और विरोधी दुर्जन जिससे कैकेई, रावण, शूर्पणखा, वाली जैसे महान पात्रों पर बड़ा अन्याय हुआ है। यही नहीं पर भरत, दशरथ सीता, आदि पात्रों को जैन रामकथा ने जितना उन्नत बनाया है उतना भी ये भक्त कवि नहीं कर पाये हैं। साथही जैन रामकथाकारोंने कथा में जो मौलिकता जोडी है और कुछ नये पात्रों का सृजन किया है वे भी समझने योग्य हैं।

रामकथा को आर्य और अनार्य की दक्षिण और उत्तर को या दुर्जन और सज्जन के संघर्ष की कथा का स्वरूप प्राप्त हुआ है उसका प्रतिवाद कर जैन रामकथा ने भारत की एकात्मता की रक्षा करने का महाकार्य संपन्न किया है। सूर्यवंश, राक्षसवंश, वानरवंश, विद्याधरवंश तथा हरिवंश इन वंशों का केन्द्र एक ही आर्यवंश है इसका प्रतिपादन तर्कपूर्ण शैली में कर रावण के पुतले जलाने की व्यर्थता को प्रमाणित किया है।

रामकथा का सन्देश आज के संदर्भ में किस प्रकार उपयुक्त है और आज राष्ट्रीयता की दृष्टि से कितना मौलिक है इसे हम भली भांति समझ सकते हैं। रामायणों के पात्रों के विषय में जो समन्वयात्मक एवं भारतीय एकात्मता की भूमिका निभाई है वह एक बडा ही चिन्तनीय स्वरूप धारण करती है।

इस पुस्तक के द्वारा मैंने मेरे प्रबंध का प्रथम खंड प्रकाशित किया है जो मेरे पांच साल के प्रयास का फल है। अपने विचार एवं चिन्तन को वाचकों के सामने रखते हुए मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। इस पर वाचक गण अपने अभिप्राय भेजकर द्वितीय खंड प्रकाशित करने की प्रेरणा दें जिसमें जैन रामकथा का साहित्यिक अध्ययन, जैन रामकथाओं में वर्णित दर्शन का स्वरूप, जैन दर्शन में भक्ति का स्वरूप, जैन रामकथा में युगजीवन, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएं परिशिष्ट १ त्रिषष्टि शलाका पुरुषों की सूची, परिशिष्ट २ तीर्थंकरों की संपूर्ण जानकारी-तालिका, उपलब्ध रामकथाएँ परिशिष्ट ३रा का अन्तर्भाव होगा।

मैं अपने प्रबन्ध के निर्देशक डॉ. न. चि. जोगलेकरजी, परीक्षक महोदय डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदीजी तथा डॉ. रामसिंग तोमरजी का आभारी हूँ।

कार्यव्यस्तता होने पर भी पुस्तक पढ़कर उस पर अपना मन्तव्य देकर मुझे उपकृत करनेवाले डॉ. सांकलियाजी, पं. पद्मश्री सुमतीबाई तथा श्री कनकमल मुनोतजी का मैं हार्दिक ऋणी हूँ। जिनकी रचनाओं का मुझे इस ग्रंथलेखन में सहाय हुआ, उन लेखकों तथा अपनी चर्चाद्वारा या अन्य प्रकारसे प्रोत्साहित करनेवाले हितस्वियों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पूना के श्री. एच. के. फिरोदिया, श्री. यू. के. पुंगलिया, श्री. माणिकचंदजी कटारिया तथा नवमहाराष्ट्र चाकण ऑईल मिल के सेठ श्री मोहनलालजी लुंकड से प्राप्त योगदान के लिये हार्दिक आभार प्रगट करता हूँ।

'महाराष्ट्र राज्य कागद वाटप समिति, पुणे' ने शैक्षणिक रियायती मूल्य पर कागज उपलब्ध करके बडा सहयोग दिया। प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स के संचालक श्री. प्रदीपभाई मुनोतजीने बडी ही आत्मीयता एवं लगनसे मुद्रण कार्य संपन्न किया। इन सब का ऋण स्वीकृत करने में मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूँ।

–शांतिलाल खेमचंद शाह

अनुक्रमणिका

		पृ.
१	जैन रामकथा - साहित्य का स्वरूप और विकास	१
२	जैन रामकथाओं के मूल स्रोत	२५
३	जैन तथा अन्य रामकथाएँ	४४
४	जैन और जैनेतर रामकथाओं की पारंपरिक तुलना एवं उनका मूल्यांकन	७९
५	जैन रामकथाओं के पात्रोंका चरित्रचित्रण	१०६
६	जैन रामायणीय संस्कृति का अपने युगपर और परवर्ती युगपर प्रभाव	१७८
७	परिशिष्ट - ४ कुछ संदर्भ ग्रंथसूची	१९४
८	जैन परंपराके रामकथा साहित्य के अनुशीलनकी निष्कर्षात्मक उपलब्धियाँ एवं उपसंहार	२००

५८-८५

जैन परंपरा का रामकथा साहित्य
एक अनुशीलन

अध्याय १

जैन रामकथा साहित्य का स्वरूप और विकास

रामकथा की प्राचीनता एवं व्यापकता :

रामायण की लोकप्रियता :

भारतीय संस्कृति के मुकुटमणि सदृश शोभायमान मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी का अनोखा व्यक्तित्व है। इसलिए भारतीय संस्कृति के साहित्याकाश में रामायण एक ऐसा जगमगाता नक्षत्र है जो पथभ्रष्ट और संभ्रमित जनों को ध्रुवतारे की तरह अडिग मार्गदर्शन करनेवाला तथा सबको प्रेरणा एवं स्फूर्ति देनेवाला है। भारतवर्ष में ही नहीं अपितु समस्त संसार में रामायण की सी लोक-प्रियता शायद ही किसी महाकाव्य को प्राप्त हुई हो। यही एक प्रमुख कारण है कि जिससे संसार की विविध भाषाओं, सम्प्रदायों और परम्पराओं में रामकथा लिखी गई है। इस महाग्रन्थ ने आदि कवी वाल्मीकि से लेकर आधुनिककाल के मैथिलीशरण गुप्त आदि को प्रभावित किया है और इतने बडे कालखण्ड में लोगों के निराशामय जीवन में आशा का सिंचन किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसीलिए राम की महिमा गाते हुए कहा है --

"हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता।
कहहिं, सुनहिं बहुविधि सब सन्ता।[1]
राम अनन्त, अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार,
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्हके बिमल विचार।।[2]"

---

१. रा. च. मानस – बालकाण्ड – १।१३९।३ संवत २०१८

२. रा. च. मानस – बालकाण्ड – १।३३ संवत २०१८

तुलसी के इन्हीं विचारों का समर्थन राष्ट्रकवि स्व. मैथिलीशरण जी ने भी इस प्रकार किया है ।

" राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है ।।"[३]

रामसाहित्य की लोकप्रियता दिन ब दिन बढ रही है । उसकी कथा का विस्तार एवं विकास का दिग्दर्शन करनेवाला साहित्य सृजन भी बडे अनुपात में हो रहा है । पर इन सब में जैनेतर राम कथा की ही उपादेयता वर्णित है । जैन रामकथा साहित्य की उपेक्षा कर उसकी उपादेयता संभ्रमित की जाती है । हमने जैन रामकथा साहित्य की उपादेयता प्रमाणित करना चाहा है और जैनेतर रामकथा साहित्य को इसी सन्दर्भ में यथासंभव समझने का भी प्रयास किया है ।

इस प्रकार रामकथा साहित्य अक्षुण्ण रूप में बहता चला आ रहा है । इसमें एक ओर से पुराण रूप का गंगाजल, लोककथा रूप का जमुनाजल और संस्कृति एवं दर्शन की सरस्वति के जल की त्रिवेणी द्वारा संपन्न तीर्थराज प्रयाग की तरह एकत्र होकर आज भी प्रवाहमान है ।

रामकथा की उत्पत्ति इक्ष्वाकु राजवंश में हुई ।[४] सूतों द्वारा आख्यानों के रूप में इसकी प्रथम रचना हुई थी । इस प्रकार आख्यानों एवं लोककथा के द्वारा प्रचलित रामकथा का आर्यरूप सर्वप्रथम वाल्मीकि ने ग्रहण किया । लवकुश का कथन है कि-" वैवस्वत मनु से लेकर अब तक जिन जयशाली राजाओं के अधिकार में समग्र पृथ्वी थी, उन राजाओं के वंश में रामायण नाम का महान आख्यान उत्पन्न हुआ ।"[५]

इक्ष्वाकु वंश के राम तथा अन्य राजाओं के संबंध में प्रचलित स्फुट आख्यान दीर्घकालतक चलते रहे जिन्हें संकलित कर तथा कथासूत्र में ग्रथित करके रामायण की उत्पत्ति हुई ।

वास्तव में वेदों में या वैदिक साहित्य में कहीं भी रामायण के नायक के रूप में राम का नाम नहीं उपलब्ध होता । रामायण के पात्रों के नाम भी रामायण के सन्दर्भ में वेदों में नहीं मिलते । ऋग्वेद में धनवान एवं प्रतापवान इक्ष्वाकु का उल्लेख है ।[६] अथर्ववेद में भी इक्ष्वाकु नाम का एकबार उल्लेख है ।[७] दशरथ राजा

---

३. साकेत – (भूमिका) स्व. मैथिलीशरण गुप्त, सं. २०२० ।

४. इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् । – वा. रा. १–३

५. सर्वा पूर्वमियं येषामासीत्कृत्स्ना वसुन्धरा ।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् । — वा. रा.१–५ ।

६. ऋग्वेद १०-६-४ ।

७. अथर्ववेद १९-३९-९ ।

का नाम भी ऋग्वेद में केवल एक राजा के रूप में ही है।[८] राम का नाम ऋग्वेद में एक राजा होने के संकेत के रूप में आया है।[९] वैदिक साहित्य में सीता का उल्लेख कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में तथा सूर्यपुत्री सीता सावित्री इस नाते आया है। पर इन सब उल्लेखों का संबन्ध न तो रामायण की सीता से है न उस-पर किसी व्यक्तित्व का आरोप है।[१०]

वैदिक रचनाओं में रामायण के एकाध पात्र का नाम अवश्य मिलता है, लेकिन इनके पारस्परिक संबंधों की कोई सूचना नहीं है और रामायण की कथा वस्तु का किंचित भी निर्देश नहीं किया गया है। डॉ. बुल्के का कथन है कि—"अतः वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा रामकथा संबंधी गाथाएँ प्रसिद्ध हो चुकी थीं, उसका निर्देश समग्र वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं मिलता।"[११] परंतु परंपरागत भारतीय मन्तव्य के अनुसार मूलस्रोत के रूप में वेद ही माने जाते हैं और इसी आधार पर नीलकंठ ने मंत्ररामायण की रचना की।[१२] इसके ऐतिहासिक आधार रूप के में वेदों के परवर्ती साहित्य में कथित कौसल जनपद, रामकथा से संबंधित नगर, नदी तथा सूर्यवंश आदि के वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं। इससे वाल्मीकि रामायण के ऐतिहासिक आधार की पुष्टि हो जाती है।

वाल्मीकि रामायण :

रामायण की प्राचीनतम सुव्यवस्थित रचना वाल्मीकि रामायण है। सब रामायणों का आदि स्रोत यही होने से वाल्मीकि आदि कवि और वाल्मीकि रामायण आदि काव्य बतलाया गया है।

वाल्मीकि ने रामायण की लोककथा का आर्यरूप पकडा और पुराणों की पृष्ठभूमि पर तथा लोककथा के परिपुष्ट आधार पर अपनी प्रतिभा के बल एक महाग्रन्थ की रचना की।

वाल्मीकि रामायण का रचनाकाल निश्चित नहीं है। विद्वानों के भिन्न भिन्न मत प्रकट हुए हैं। वाल्मीकि रामायण में भी उसकी रचना के संबन्ध में कोई निर्देश नहीं है।

पाश्चात्य विद्वानों में ए. श्लेगेल ११ वीं शताब्दी ई. पू.[१३], जी गोरेसियो

---

८. अथर्ववेद १.१२६.४ ९. अथर्ववेद १०-९३-१४।

१०. तैत्तिरीय ब्राह्मण ९.३.१०।

११. डॉ. बुल्के रामकथा पृ. २४ से २६। सन १९६२ ई.

१२. डॉ. अमरपाल सिंह—तुलसीपूर्व रामकथा साहित्य पृ. १९, प्र. संस्करण १९६८ ई.

१३. ए. डब्ल्यू श्लेगेल—जर्मन ओरियंटल जर्नल भा. ३

१२ वीं शताब्दी ई. पू.[१४], डा. याकोबी २ री शती ई. पू.[१५] मानते हैं। एम. विन्टरनिट्झ भी इसी मत का समर्थन करते हैं।[१६] अनेक विद्वानों के मतों को देखते हुए डा. अमरपाल सिंह इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि–" रामायण का रचनाकाल निर्धारित करने में विद्वान रामायण के दो रूपों की कल्पना करते हैं। एक रूप वह जिसकी वाल्मीकि ने रचना की थी, इसे वाल्मीकि की प्रामाणिक रचना अथवा आदि रामायण कहा गया है। दूसरा रूप वाल्मीकि रामायण का प्रचलित रूप है जो लम्बी अवधि के परिवर्धनों के अनन्तर प्राप्त हुआ है। इन दोनों रूपों के लिए भिन्नभिन्न समय निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।[१७]

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पाश्चात्य विद्वानों के मतों में भिन्नता अधिक है और एक सामान्य मत निश्चित करना असंभव है। परन्तु बहिर्साक्ष्य के रूप में हम यह कह सकते हैं कि रामायण में बुद्ध या बौद्धों का उल्लेख नहीं है इसलिए उसकी रचना इ. पू. पांचवीं शताब्दी में हुई होगी तथा वाल्मीकि रामायण के आधार पर कालिदास का प्रथम महाकाव्य रघुवंश इ. पू. प्रथम शताब्दी में रचित है इससे वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप ई. पू. प्रथम शताब्दी या उससे पूर्व का होगा।

अन्त:साक्ष्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि रामायण के चित्रकूट के दक्षिण का प्रदेश विशाल अरण्य के रूप में था। यह स्थिति आर्यों के आगमन के पूर्व ही संभाव्य है। विश्वामित्र के साथ जाते समय राम गंगा-शोण संगम के प्रदेशों से होकर गये थे। इस प्रदेश में पाटलीपुत्र नगर की स्थापना आज है जिसका उसमें कोई उल्लेख नहीं है। इससे पाटलीपुत्र की स्थापना के पहले का रामकथा का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

रामायण के प्रति विविध दृष्टिकोण :

रामायण को प्राचीन आर्यों के गौरवशाली इतिहास के रूप में कुछ विद्वज्जनों ने अपनी मान्यता प्रदान की है, तो धर्म के अटूट अंग के रूप में अन्य लोगों ने उसे अपनाया है। इसमें वर्णित आदर्श चरित्र के मानदण्ड के रूप में राम-सीता को लोग प्राचीन काल से आजतक अखण्ड रूप में अपनाये हुए हैं।

इसी के परिणाम स्वरूप लोग इसे पढकर ब्रह्मानन्द की उपलब्धि कर लेते हैं तो कुछ लोग आदर्श जीवन का पाठ ग्रहण करते हैं। युग युग से भारतीय

---

१४. जी. गोरेसियो–रामायण भा. १० भूमिका

१५. एच्. याकोबी–डास रामायण पृ. १००–१८९३

१६. एम. विन्टरनिट्झ–हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर भाग १, पृ. ५१७, सन १८७० ई.

१७. डॉ. अमरपाल सिंग–तुलसीपूर्व रामसाहित्य पृ. २०, सन १९६८ ई.

जनता को कर्तव्य एवं धर्म के क्षेत्र में अनुप्राणित करनेवाली इस महाकथा के विविध अंगों का सम्यक् अध्ययन तभी हो सकेगा जब कि संपूर्ण भारतीय संस्कृति में परिव्याप्त इस रामचरित्र का हम निष्पक्ष रूप से अनुशीलन करने का प्रयत्न करेंगे।

रामचन्द्रजी का व्यक्तित्व ही ऐसा अलौकिक है कि जिसके संपर्क में आते ही वाल्मीकि आदि कवि बन गये तथा तुलसीदास को भी अभिनव वाल्मीकि की संज्ञा प्राप्त हुई।[१८]

वाल्मीकि ने जीवन से ही नाममहात्म्य संप्राप्त कर लिया था। वाल्मीकि ने महर्षि नारद से पूछा – " इस समय संसार में सबसे गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ सत्यव्रत और दृढप्रतिज्ञ महापुरुष कौन है ? जिसके रणभूमि में क्रुद्ध होते ही देवत तक भयाकुल हो जाते हैं ?" उत्तर में नारद ने कहा – " वे हैं इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न महापुरुष जो राम नाम से विश्रुत एवं आख्यात हैं। "

इस प्रश्नोत्तर में "पुरुष" शब्द महत्त्वपूर्ण है। वाल्मीकि मानव को अर्थात् सर्व गुणसंपन्न मनुष्य को ही अपने काव्य में चारित्रिक वर्ण्य विषय बनाना चाहते हैं। मनुष्य के रूप में उन्होंने उनका वर्णन किया है फिर भी वह इतना आदर्श चरित्र बन गया है कि मानव मात्र के लिए वह वन्दनीय है। सर्वसाधारण मानव को उनका अनुकरण करना असंभव नहीं है किन्तु कठिन अवश्य है।

तुलसीदास ने तो रामचरित मानस में स्पष्ट रूप से कह दिया है कि "सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर, जिनकी माया के वश हैं, यह अदृश्य जगत् जिनके सत्त्व से रस्सी में सर्प की भाँति सत्यसा प्रतीत होता है, जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरनेवालों के लिए एकमेव नौका के समान है, इस प्रकार के इन सब गुणों के कारणस्वरूप राम कहानेवाले विष्णु भगवान को मैं वन्दन करता हूँ।[१९]

वाल्मीकि के राम वास्तव में मानवरूप में चित्रित नहीं है। स्वयं वाल्मीकि अपने पुरुषोत्तम के देवस्वरूप को स्वीकार करते हैं। उन्होंने कहा हैं –" हे विभो,

---

१८. त्रेता काव्य निबन्ध करिव शतकोटि रसायन।
इक अच्छर उच्चरैं ब्रह्महत्यादि परायन।
अव भक्तन सुख दैन बहुरि लीला विस्तारी।
रामचरन रसमत्त अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपारके पार को सुगम रूप नव कालयो
कलिकुटिल जीवनिस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो ।।
—नाभादास – भक्तमाल दोहा १२९। पृ. २६८ सन १९४० ई.

१९. राम चरित मानस प्रारम्भिक श्लोक।

आपको हम विश्वकल्याण से जोडना चाहते हैं।[२०] आप मानव स्वरूप में अवतरित हों, लोककण्टक और देवों से भी दुर्वध्य रावण को युद्धभूमि में मृत्यु की शरण में उतार दें। " देवताओं की इस विज्ञप्ति को स्वीकार कर विष्णु ने तुरन्त उन्हें संतुष्ट किया। उन्होंने उपस्थित देवताओं से कहा - " हे देवताओं आप भय छोडें, मैं देव और ऋषियों के लिए भयकारी ' रावण ' को उसके पौत्र, अमात्य तथा बन्धु बान्धवादि के साथ मृत्यु दण्ड देकर ग्यारह हजार वर्षोंतक इस पृथ्वी का मानव के रूप में पालन करूंगा।"[२१]

इस प्रकार वैदिक परम्परा की दोनों प्रातिनिधिक रामकथाएँ राम को परमात्मा के रूप में ग्रहण करती हैं। परमात्मस्वरूप राम के गुणवर्णन से मानव हृदय श्रद्धा से अवश्य प्रभावित होगा परन्तु उनके अनुकरण के लिए वह प्रोत्साहित नहीं हो पायेगा जिससे कि उन गुणपुष्पों की सुगन्ध अपने हृदय में संचित कर सके। मानव सोचेगा कि वह तो सीमित शक्तिधारी प्राणी है। और राम विष्णु स्वरूप होने से सकल गुणशक्ति के भण्डार हैं। केवल राम में ही नहीं रामायण के सारे पात्रों में जो कि राम से सहानुभूति रखते हैं गुणाधिक्य ही दिखता है और इसके विपरीत राम के विरोधी पात्रों को खल एवं दुर्जन और दोषपात्र बतलाया है।

जैन रामकथा के कारण :

जैन रामकथा के राम एक क्षत्रियकुलोत्पन्न वीर हैं। सात्त्विक गुणों के कारण वे सत्यप्रिय और न्यायप्रिय हैं। अपने माता पिता के प्रति पुत्र–कर्तव्य पूर्ति के लिए सब कुछ सहनेवाले मानव के रूप में चित्रित हैं। उनका चरित्र जैनेतर चरित्र से किस प्रकार मेल रख सकेगा ? इसीलिए एक सात्त्विक वीर पुरुष का

---

२०. त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो।। १८
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधं
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्।। २०
अवध्यं दैवतेर्विष्णो समरे जहि रावणम्
स हि देवान् सगन्धर्वान् सिद्धांश्च मुनिसत्तमान्। २१
—वा. रा. बालकाण्ड १।१८– २१।

२१. भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समित्रं ज्ञाति बान्धवम्।।
हत्वा क्रूरं दुरात्मानं देवर्षीणां भयावहम्।
दशसहस्राणि दशवर्षशतानि च।।
—– वा. रा. बालकाण्ड, १।२७, २८, २९, ३०।

जीवन विविध आघात प्रत्याघातों के कारण जैसे विकसित होता है उसी तरह से उनका चरित्र चित्रण जैन रामकथा में आया है। अन्य पात्रों का भी राम के भक्त या विरोधक के रूप में गुणदोषों का चित्रण नहीं किया गया है। इसे हम वास्तविक एवं यथार्थ चित्रण ही कह सकते हैं। इसी कारण जैन रामकथा का आरम्भ रावण के वंश से है और राम का चरित्र बाद में वर्णित है।

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैन रामकथा केवल त्रिषष्टि शलाका पुरुषों के स्वरूप दर्शन के क्रम में ही बलभद्रों का स्वरूप बताना चाहती है। उसमें राम की महानता एवं श्रेष्ठता में अनन्यता या भक्तिभाव का सम्पूर्ण अभाव है।

यज्ञयाग की प्रतिष्ठा

वाल्मीकि रामकथा के आदि में यज्ञ के द्वारा दशरथ को पुत्रप्राप्ति होती है। यज्ञयाग की रक्षा के लिए और विघ्नकर्ता राक्षसों के हननार्थ विश्वामित्र राम–लक्ष्मण को ले जाते हैं और इस महाकाव्य का अंत भी सम्राट रामचन्द्रजी द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के द्वारा संपन्न होता है। अतः प्रारम्भ से लेकर अन्ततक यज्ञयागादि के द्वारा वैदिक संस्कृति की गरिमा सिद्ध करना ही इसका एक लक्ष्य-सा प्रतीत होता है। इसलिए वाल्मीकि रामायण को हम ब्राह्मणयुगीन रचना कह सकेंगे।

लोकाभिमुख रामकथा

तुलसीदास के युग में यह कथा यज्ञयागादि के महात्म्य से हटकर भक्ति द्वारा जनताभिमुख कृति बन गई। रामचरित मानस के चरित्रनायक राम भगवान के रूप में अवतरित हुए हैं इसलिए वे दुष्टों का दमन एवं सज्जनों की रक्षा करते हुए धर्म को प्रतिष्ठित करने की प्रतिज्ञा से वचनबद्ध हैं, जिसमें पौराणिक अवतारवाद का प्रभाव प्रकट रूप से सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार आदि कवि से लेकर आज तक जैनेतर रामकथा परिपुष्ट एवं विकसित होती गयी है।

वाल्मीकि के द्वारा जिस प्रकार आर्यरूप को वाल्मीकि ने ग्रहण किया उसी प्रकार रामकथा का कोई मूलरूप या लोककथा का सूत्र जैन रामकथा मे अपने स्रोत रूप में पकडा होगा जिसे लेकर जैन कथा लेखकों ने वाल्मीकि के सन्दर्भ में उसे ग्रहण किया होगा।

जैन रामकथा का आदि काव्य विमलसूरि का 'पउमचरिय' है, जिसकी रचना कवि के अनुसार महावीर निर्वाण के अनन्तर ५३० वर्षों में हुई है। यह

महावीर निर्वाण का वर्ष ५३० याने ई. स. पू. ४६७ आता है। परन्तु आज के विद्वानों की खोज के अनुसार उसकी रचना तीसरी या चौथी शताब्दी की मानी जाती है। यहां हम काल की दृष्टि से विचार न करते हुए यही कहना पर्याप्त समझते हैं कि विमलसूरि का "पउमचरिय" ही जैन रामकाव्य की सर्वप्रथम रचना है। जिस प्रकार वाल्मीकि की रचना जैनेतर रामकाव्य का आधार ग्रन्थ है उसी प्रकार परवर्ती रामकथा का मूलाधार ग्रंथ यही एकमात्र रचना है।

इस कथा का रूप एवं कथानक जैनेतर रामकथा से भिन्नत्व रखता हैं। जैनेतर रामकथाएँ रामको परमात्मस्वरूप में ग्रहण करती हैं तो जैन रामकथा राम को एक क्षत्रियकुलोत्पन्न महापुरुष के रूप में ग्रहण करती है। जैन संस्कृति के आदर्श के रूप में अपना आत्मविकास साधकर अन्त में मोक्ष के महाधाम में राम पहुँच जाते हैं। जैन रामकथा की पृष्ठभूमि, कथा पात्रों का चरित्र चित्रण, सामाजिक एवं राजनैतिक तथा सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण आदि में भी अन्तर आ गया है। आदिकवि वाल्मीकि से संप्राप्त रूप से भिन्न लोककथा रूप जो दक्षिण भारत में प्रचलित रहा होगा अथवा जो भिन्नता उसमें रही होगी उसी को अपना आधार बनाकर जैन कवियों ने रामकथा की रचना की होगी। ऐसा कहा जा सकता है कि पउमचरिय की रचना का स्रोत विमलसूरि ने नामावली में बद्ध और आचार्य परंपरा से प्राप्त बतलाया है इसी को वे कहते हैं कि मैं इस प्रकार कथन करूंगा [२२]

जैन रामकथा का लक्ष्य समझ लेने पर हम जैन रामकथा काव्य का विकास किस प्रकार हुआ इसका एक संक्षिप्त दिग्दर्शन नीचे दे रहे हैं।

जैन परंपरा में रामकथा साहित्य

पउमचरियं–	विमल सूरि	ई. २ री–३री शताब्दी
पद्मपुराण–	रविषेण	७ वीं शताब्दी
वसुदेव हिण्डी–	संघदास गणि	७ वीं ,,
उत्तर पुराण–	गुणभद्र	८ वीं ,,
पउम चरिउ–	स्वयम्भू	८ वीं ,,
धूर्ताख्यान–	हरिभद्रसूरि	८ वीं ,,
चउपन्न पुरिसचरिउ–	शिलांकाचार्य	९ वीं ,,
महापुराण–	पुष्पदंत	१० वीं ,,
बृहत्कथाकोष	हरिषेण	१० वीं ,,

२२. नामावलियबद्धं आयरिय परंपरागयं सव्वं वोच्छामि पउमचरियं.... ।
विमलसूरि पउमचरियं १,८ ।

पंप रामायण	नागदेव	११ वीं शताब्दी
कहावली–	भद्रेश्वर	११ वीं ,,
त्रिषष्टि शलाका पुरुष	चामुंडराय	११ वीं ,,
धर्म परीक्षा	अमितगति	११ वीं ,,
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व–७	हेमचद्र	१२ वीं ,,
योगशास्त्र	हेमचंद्र	१२ वीं ,,
अंजना पवनंजय	–	१३ वीं ,,
जीवन संबोधन	–	१४ वीं ,,
पुण्णास्तव कहा	–	१४ वीं ,,
शत्रुंजय महात्म्य	धनेश्वर	१४ वीं ,,
रघु पद्मपुराण	–	१५ वीं ,,
रामचरित्र–	देव विजय	१६ वीं ,,
पुण्य चन्द्रोदय	कृष्णदास	१६ वीं ,,
रामचरित–	पद्मविजय	१६ वीं ,,
बलभद्र पुराण	रइधु	१६ वीं ,,
सीताराम चौपड़इ–	समय सुन्दर	१७ वीं ,,
पद्मचरित–	दौलतराम	१९ वीं ,,
जैन रामायण भाग १ से ७	रामविजय सूरि	२० वीं ,,
जैन रामायणमां संस्कृतिनो आदर्श भाग १ से ७	रामविजय सूरि	२० वीं ,,

अन्यान्य भाषाओं में उपलब्ध जैन रामकथा साहित्य का ब्यौरा सूची के रूप में हमने अंत में दे दिया है। अब हम हिन्दी जैन रामकथा का संक्षिप्त विवेचन यहाँ पर करेंगे।

परवर्ती हिन्दी जैन रामकथा से संबंधित साहित्य का संक्षिप्त परिचय

रामचरित[२३] – रचयिता ब्रह्म जिनदास और इसका रचना काल वि.सं.१५०८ है।

पद्मचरित[२४] – इसकी रचना विनयसमुद्र ने की है और ग्रन्थ वि. सं. १६०४ में बीकानेर में रचा गया है।

पिंगल ग्रन्थ[२५] – जेसलमेर के महाराजकुमार हरराज के विनोदार्थ इसकी रचना कुशललाभ ने की है।

---

२३. हस्तलिखित प्रति–डुंगरपुर (राजस्थान) दिगंबर जैन मंदिर के ग्रंथागार में।
२४. ,, उदेपुर (राज.) गोडीजी ग्रंथ भंडार में मौजूद है।
२५. राजस्थान शोध संस्थान जोधपुर से प्रकाशित।

सीताराम चोपइ– कवि समय सुन्दर ने नवखण्डों में इस काव्य की रचना वि. सं. १६७३-८३ के बीच लोकगीतों की ढालों के रूपमें की है। वह विशेष महत्त्वपूर्ण रचना नहीं है।

रामयशोरसायन – विजयगच्छ के मुनि केशराज ने ४ खण्ड एवं पाँच ढालों में इसकी रचना की।

रामचन्द्र चरित्र – लोंकागच्छीय त्रिविक्रम कवि ने वि.सं.१६९९ में इसकी रचना की है। यह ९ खण्डों में एवं १३५ ढालों की रचना है।

सीता चउपइ– खरतर गच्छ के सागरतिलक के शिष्य समय ध्वज ने इसकी रचना वि. सं १६११ में की। ३२७ पद्यों की यह रचना है।

सीता चरित– पूर्णिमा-गच्छीय हेमरतन ने सात सर्गों में यह रचना की है। इसकी भाषा १७ वीं शती की प्रतीत होती है।

लघु-सीता सतु- यह रचना बारहमासा के ढंग पर सीता मन्दोदरी संवाद के रूप में रची गयी है। मन्दोदरी प्रत्येक ऋतु में सीता को रावण से भोग करने की प्रेरणा देती है। जिसे अस्वीकार कर सीता अपने व्रत में अडिग रहती है। इसकी रचना पं. भगवतीदास ने की है तथा रचनाकाल वि. सं. १६८४ है।

रामसीता रास – गुणकीर्ति ने इसकी रचना की। यह जयपुर भंडार में सुरक्षित है।

रावण मंदोदरी संवाद- लावण्य मुनि की यह रचना सं १५०० की है। यह रचना पन्नालाल दिगंबर जैन सरस्वती भवन में (बंबई) सुरक्षित है।

हनुमान चरित– सुन्दरदास ने सं. १६१६ में इसकी रचना की। दिल्ली के जैन पचायती मंदिर में यह सुरक्षित है।

सीता प्रबन्ध– रचना सं. १६२८। नाहरजी के संग्रह में कलकत्ता में सुरक्षित।

सीता विरह लेख[२६] – वि. सं. १६७१ में कवि करमचन्द ने इसकी रचना की है यह अति छोटी रचना है जिसमें केवल ६१ पद हैं। सीता के द्वारा प्रेषित पत्र के रूप में सीता के विरह का बडा कारुण्यपूर्ण वर्णन इसमें किया गया है।

अंजनाचरित्र – भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य भुवनकीर्ति की यह रचना है।

अंजना सुन्दरी रास[२७] –कवि महानन्द ने खण्डकाव्य के रूप में अंजना का कारुण्य पूर्ण जीवन इसमें चित्रित किया है।

---

२६. जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्स मुंबई संपादित, जैन गुर्जर कवियो–भा. १ पृ. ५०८, संवत १९८२।

२७. हस्तलिखित प्रति–जैन सिद्धान्त भुवन, आगरा में।

अंजना रास – इस की रचना कवि शान्ति कुशल ने वि. सं. १६६२ में की है।

अंजना सुन्दरी संवाद – कवि लुणसागर ने मिश्रबंधुओं की से वि. सं. १६८९ में इसकी रचना की है।

हनुमान कथा – ब्रह्म राइमल्ल ने वि. सं. १६१६ में इसे प्रकाशित किया है।

हनुमान चरित्र[२८] – भट्टारक ललित कीर्ति के शिष्य ब्रह्मचारी देवीदास ने सं. १६८१ में राईसेन गढ में इसकी रचना की। इसमें २००० चौपाइयों में वर्णित हनुमान चरित्र मिलता है। ब्रज भाषा में रची गई यह रचना है।

हनुमत रास[२९] – भट्टारक श्री भूषण के शिष्य ब्रह्म ज्ञान सागर की ब्रज भाषा में रची गई यह रचना है।

रामायण – खरतर गच्छीय विजयकुशल ने वि.सं. १७२१ में इसकी रचना की है। जैन कवि की यह रचना वाल्मीकि की रामकथा के आधार पर है।

पद्मपुराण कथा – इसके रचयिता खुशालचंद काला हैं।

सीता चरित[३०] – रामचंद्र बालक का यह सुन्दर महाकाव्य है। इसका रचनाकाल वि. सं. १७१३ है।

सीता हरण[३१] – जयसागर की यह रचना गुजराती मिश्रित राजस्थानी में है। इसकी रचना वि. सं. १७३२ में अहमदाबाद के पास गंधार नगर में हुई।

ढालमंजरी रामरास – इसकी रचना तपागच्छीय सुज्ञानसागर ने वि. सं. १८८२ में की। यह रास हिन्दी प्रचुरा राजस्थानी में है और इसके ९ खंड हैं।

पद्मपुराण वचनिका – पं. दौलतराम ने वि. सं. १८८३ में इस ग्रन्थ की रचना की। आधुनिक खडी बोली का यह गद्य ग्रन्थ है इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्व है।

रामचन्द्रचरित – यह रचना किसी वरधीचन्द की रचना है।

सीता चउपई[३२] – तपागच्छीय चेतनविजय ने वि. सं. १९०३ में बिहार के अंजीमगंज में इसकी रचना की।

---

२८. शाहगढ (जि. सागर) जैन शास्त्र भंडार में विद्यमान है।

२९. हस्तलिखित प्रति–दिगंबर जैन मंदिर तेरापंथी शास्त्र भंडार जयपुर में।

३०. हस्तलिखित प्रति–१४४ पन्नों की आमेर (राजस्थान) के शास्त्र–भंडार में हैं।

३१. हस्तलिखित प्रति–१३३ पन्नों की आमेर शास्त्र भण्डार में विद्यमान।

३२. हस्तलिखित प्रति–अजीम गंज में जयचन्दजी के भंडार में विद्यमान है।

रामरासो – ऋषि शिवलाल द्वारा बिकानेर में यह रचना वि. सं. १९०३ में लिखी गई है। यह रासो पद्धति पर रचित है।

इस प्रकार तीसरी शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक जैन रामकथा से संबंधित उपलब्ध साहित्य की जानकारी संक्षिप्त रूप में जानने का यथाशक्ति हमने यहाँपर प्रयत्न किया है। इस साहित्य में उपलब्ध एवं उल्लेखनीय विशेषताएँ इस प्रकार हैं —

(१) इन कथाओं का आधार जैन रामकथा ही है जिसमें विमलसूरि का पउमचरियं यही आधारभूत ग्रन्थ है।

(२) दूसरी विशेषता इसकी कथावस्तु संबंधी है। प्रायः इस साहित्य में उपेक्षित पात्रों की ओर लेखकों ने अपना सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है।

रवीन्द्रनाथ ठाकूर ने उपेक्षिता उर्मिला की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया था। इसी प्रकार की रामकथा में एक प्रमुखपात्र हनुमान की माता अंजना का विशेष चित्रण इन जैन रामकथा लेखकों ने किया है। जैन कवियों ने परित्यक्ता अंजना का करुणरस से पुष्ट हृदयद्रावक चित्र अभिव्यंजित किया है जो हमें जायसी की नागमती की याद दिलाता है।

अंजना सुन्दरी रास में तिरस्कृता अंजना का यह चित्र दृष्टव्य है--

"वेन दयाल कइ करी दूधनी दूध भरी रे।
एणी संसारी अभागिण एकं ति हुं करी रे
स्यो अपराध कारयामिनी वरता हरोरे।
हा। जियनबंभा पा सो पापीय माहरोरे॥ ३७३

पति के उन कठोर वचनों से उसे कैसा आघात लगा है? पति से ही गर्भधारणा होने पर भी अंजना को कलंक लगाया गया। वह अपने पूर्व पापों पर पश्चात्ताप कर रही है। उसकी इस अतिदयनीय दशा को सूरज भी नहीं देख सका। यथा–

अति दुख देषीं तेहउ, जाणि रहि न सकंत।
दिनकर पणिते आथम्मु, तिमि रात थण पसरंत॥ [33]

लघु सीता सतु में भी पं. भगवतीदास ने सती सीता की दृढता का आकर्षक चित्र खींचा है। इसमें सीता मन्दोदरी का वार्तालाप है। मन्दोदरी सीता को

---

३३. उसका आत्यंतिक दुख देखकर सूरज अपने अस्तित्व को भूल गया और इसी को प्रकट करने के लिए मानो वह अस्ताचलगामी हो गया और रात्री का अन्धकार फल गया।–अंजना सुं. रास महानन्द, गाथा २७५, १७ वीं शती।

रावण का स्वीकार करने के लिए साग्रह प्रलोभन देती है और सीता अपने व्रत पर अटल रहकर रावण के साथ भोग भोगने से इन्कार करती है।

मन्दोदरी ने कहा—

"जब लगी हंस शरीरमाहि।
तब लगी कीजिह भोगु।
राजत जहि भीक्षा भमहिं।
इव भूला सब लोगु॥ [३४]

सीता ने दृढता से प्रत्युत्तर किया —

"शुक नासिक, मृग दृग, पिकवइनि, जानकि वचन लवइ सुखरइनि।
अपना पियपइ अमृत जानी, अवरपुरुष रविदग्ध समानी।
पिय चितवनि चितु रहइ आनन्दा पियगुनसरत बढत रस कंदा
प्रीतम प्रेम रहइ मनपूरी, तिनु बालिमु संगु नहिं दूरी॥
सुख चाहइ ते बावरी, परपति संग रति मानी।
जिउ कपि शोत विथा मरइ, तापस गुंजा आनी
तृष्णा तो न बुझाइ, जलु जब खारी पीजिए
मिरगु मरह छपि धाइ, जल धोखइ थल रेतइ॥" [३५]

सीता की दृढता का यह चित्रण बडा ही सुदृढ एवं आदरणीय लगता है।

(३) जैन हिंदी परवर्ती साहित्य की तीसरी विशेषता हनुमान के विस्तृत चरित्र चित्रण संबंधी है।

---

३४. शरीर में प्राण हैं तबतक सशरीर उपभोग कर आनन्द ले। भीख मांगनेवाला भटकता रहता है और योग्य मार्ग भूल जाता है। वैसे ही तुम्हारे शरीर में जबतक प्राण हैं तबतक उपभोग कर लो। अन्यथा तुम भी भटकती रहोगी।

—सीतासतु—पं. भगवतीदास, गा. ३०३, १७ वीं शती।

३५. शुक के समान जिसकी नासिका है, कोयल के समान वचन है, ऐसी मृगाक्षी सीता बोली—"अपने पति को अमृत के समान जान और परपुरुष को जलानेवाले सूरज के समान समझ।

प्रिय हमेशा आँखों के सामने रहते हैं इससे प्रिय के गुण यशस्कन्ध के समान बढते ही जाते हैं। प्रियतम का प्रेम चित्त में दृढ होता है। इसलिए वह अपने से दूर नहीं है।

जो मूर्ख स्त्री परपुरुष को पति मानकर चाहती है वह शीत में नाहक मरनेवाले कपि के समान अथवा गुंजाफल प्राप्त होने पर भी वृथा मरनेवाले तपस्वी के समान है।

जिस प्रकार खारे जल से प्यास नहीं बुझती और जिस तरह रेत में मृगजल को पानी समझकर मृगतृष्णा तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार परपुरुष के संग से कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता।

——लघुसीतासतु—पं. भगवतीदास गाथा ३०३ से ३०४ वि. स. १६८४।

यह आश्चर्य की बात है कि जो हनुमान राम के सखा एवं आदर्श के रूप में परमपूजनीय माने जाते रहे हैं उनके प्रबल व्यक्तित्व का संपूर्ण चित्र केवल जैन रामकथा में ही चित्रित हुआ है जब कि जैनेतर साहित्य में राम का कार्य सम्पन्न करनेवाले अनन्य सेवक के रूप में ही वे चित्रित हुए हैं ।

रामकथा के विशाल एवं सुविस्तृत जैन साहित्य को देखते हुए उसका सांगोपांग. वर्णन करना इस प्रवन्ध के लिए असम्भव होगा इसलिए सुविस्तृत जैन साहित्य में से केवल प्रातिनिधिक चार जैन रामकथाएँ ही हमने अनुशीलनार्थ ली हैं । बिना इसके हमारे अनुशीलन का प्रयोजन भी सिद्ध नहीं हो सकेगा ।

ये चार जैन रामकथाएँ निम्नलिखित हैं —

(१) पउमचरियं – विमलसूरि रचनाकाल ईसवी की ३ री शताब्दी
(२) पउमचरिउ – स्वयम्भू रचनाकाल ईसवी ८ वीं शताब्दी
(३) उत्तर पुराण – गुणभद्र रचनाकाल ईसवी ७-८ वीं शताब्दी
(४) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व ७ वाँ–हेमचन्द्र ईसवी की १२ वीं शताब्दीं ।

इनमें से विलमसूरि का पउमचरियं प्राकृत भाषा की रचना है । स्वयम्भू ने पउमचरिउ की रचना अपभ्रंश भाषा में की है । उत्तर पुराण और त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र पर्व ७ संस्कृत भाषा की रचना है ।

पउमचरियं तथा पउमचरिउ प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ हैं जिन्हें हिन्दी के साहित्यकारों ने हिन्दी के आदिकाल की रचनाओं के रूप में अपनी स्वीकृति प्रदान की है । हिन्दी भाषा का यह कदाचित पूर्वरूप ही है, इस दृष्टि से उनका सांगोपांग अध्ययन एवं अनुशीलन करना अनुचित नहीं होगा । त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर्व ७ तथा उत्तर पुराण ये दोनों ग्रन्थ संस्कृत में सरल एवं सुबोध भाषा में लिखे गये हैं । जैन रामकथा की कथावस्तु की दृष्टि से ये दोनो ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । अतएव इस दृष्टि से इनका अनुशीलन करना भी योग्य ही होगा ।

चारों प्रातिनिधिक जैन रामकथाओं के लेखकों का संक्षिप्त परिचय

जिन कृतियों को हमने अनुशीलन के लिए चुना हैं उनके कर्ताओं का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है । इनमें प्रथम जैन रामकथा लेखक विमल सूरि हैं ।

(१) विमलसूरि

प्राकृत के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं । वैदिक परंपरा में संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदि कवि का है वही स्थान प्राकृत साहित्य में विमल सूरि का है ।

अपनी अमृतमयी और सुरस प्राकृत भाषा से विलमसूरि ने जो कीर्ति प्राप्त की है उसे शायद ही कोई पा सकेगा।

रचना काल– विमलसूरि की इस रचना के काल के विषय में मतभेद हैं। विमल सूरि ने अपनी रचना में जो मत प्रकट किया है उसके अनुसार इस ग्रन्थ का रचनाकाल वीर संवत ५३० अर्थात पहली शताब्दी है।[३६] डॉ. हर्मन जेकोबी के अनुसार यह रचना काल ईसवी की तीसरी शताब्दी है।[३७] जिनविजयजी भी तीसरी शताब्दी मानते हैं। मुनि कल्याणविजयजी तथा डॉ. वी. एम्. कुलकर्णी भी इसी मत के हैं।[३८] परन्तु डॉ. चन्द्र ने वह काल ४७३ ईसवी का बताया है।[३९] हमारा मत है कि विमलसूरि नाइल कुल के बतलाये गये हैं, नाइल कुल, नाइली साहा, नाइलगच्छ और नागेन्द्र कुल सब समान अर्थ प्रकट करते हैं। उस कुल का काल तीसरी शताब्दी होने से ग्रंथ रचना का काल तीसरी शताब्दी है। पं. लालचंद गांधी ने भी इसी मत का समर्थन किया है।[४०]

विमलसूरि का परिचय

अन्तर्साक्ष्य से हम उनके बारे में जानते हैं। वे नाइल कुल वंश विभूषण विजय के शिष्य थे तथा राहू के प्रशिष्य थे। उन्होंने अपने विरोधियों के दर्शनों का भी गहरा अध्ययन किया था।[४१] विमलसूरि ने पूर्वों के[४२] अनुसार नारायणों तथा बलदेवों का चरित्र सुनकर राघवचरित्र लिखा। उन्होंने हरिवंश चरिय की भी रचना की थी पर आज वह रचना अप्राप्य है।

पउमचरियं के अनुसार वे श्वेतांबर तथा दिगंबर दोनों जैन संप्रदायों की

---

३६. पंचेव या वाससया, दुसमाए तीसवरी ससंजुता।
वीरे सिद्धिभुवगए, तओ निबद्धं इमं चरियं।। ११८।१०३ प. च. वि.

३७. मॉडर्न रिव्ह्यू–दिसंबर १९१४।

३८. पउमचरियं वि. प्रस्तावना पृ. १० भाग १, १९६२ ई.

३९- जर्नल ऑफ द ओ इ बडोदा, जून १९६४, डॉ. चन्द्र।

४०. जैनयुग खंड १ भाग २, पृ. ६८–६९, पं. लालचंद गांधी, १९८१

४१. राहू नामायरिओ ससमय परसमयगहिय सब्भावो।
विजओ य तस्स सीसो नाइल कुल वंस नंदियरो ।।८।११७
सीसेण तस्सरइयं राहवचरियं तु सूरिविमलेणं।
सोऊण पुव्वगये नारायण–सीरिचरियाहूं ।।८।११८
प. च. वि. ८।११७–११८।

४२. भगवान महावीर का ज्ञान १२ अंगों में गणधरों के द्वारा रचा गया है। उनमें १२ वें अंग दृष्टिवाद सूत्र के अन्तर्गत १४ पूर्व ग्रंथ थे। जिनमें विभिन्न विषयों का ज्ञान था। आज वह लुप्तप्राय है।

मान्यताएँ प्रकट करते हैं। इससे यह सूचित होता है कि वे दिगंबर और श्वेतांबर इन दो पंथों में जैन संप्रदाय का विभाजन हुआ उसके पूर्वकाल में थे पर उनका नागिल या नागेन्द्रगच्छ श्वेतांबर सम्प्रदाय का प्रभाव सूचित करता है।

(२) चतर्मुख स्वयम्भू

द्वितीय रामकथा के लेखक चतर्मुख स्वयम्भू हैं। कर्णाटक के एक साहित्यिक घराने में ये पैदा हुए। इनकी माता का नाम पद्मिनी और पिता का नाम मारुतदेव था। तीन पीढियों से इस घराने में साहित्य साधना की परंपरा चली जा रही थी। कवि स्वयम्भू ने दो विवाह किये। इनकी पत्नियां पढी लिखी ही नहीं पर पति की साहित्य साधना में सहायक भी थीं। कवि के कई पुत्र तथा शिष्य थे। उनमें त्रिभुवन प्रमुख था उसने पिता से साहित्य परंपरा पायी। धनंजय और धवल के आश्रय में उन्होंने पउमचरिउ, अरिट्ठनेमिचरिउ और स्वयम्भू छन्द की रचना की। वे स्वयं विद्वान थे और जीवन काल में ही उन्होंने यश और कीर्ति पाई थी। कविराज चक्रवर्ति, छन्दश्चूडामणि आदि उनकी उपाधियाँ थीं। छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्यशास्त्र तथा व्याकरणशास्त्र के वे वेत्ता थे। स्वयम्भू का काल प्रायः आठवीं शताब्दी है। उनके तीनों ग्रन्थ अधूरे रहे थे जिनको उनके पश्चात् त्रिभुवन स्वयम्भू ने पूर्ण किया। प्रबन्ध कौशल तथा प्रकृति चित्रण में वे सिद्धहस्त थे।

स्वयम्भू लोकभाषा के कवि थे। अपने ग्रंथ को वे रड्डा छन्दोबद्ध रचना कहते थे। उनका जलक्रीडावर्णन द्रष्टव्य है।

(३) आचार्य हेमचन्द्र सूरि

तृतीय जैन रामकथा के लेखक आचार्य हेमचन्द्र सूरि हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरि का त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र संस्कृत रचना है। अणहिल पुरपाटण के चालुक्य वंशीय राजा सिद्धराज शैव थे फिर भी उन्होंने अपने दरबार में आचार्य हेमचन्द्र सूरि का बडा आदर किया था। राजा सिद्धराज की अभिलाषा थी कि वह विद्वद्प्रेमी और विद्या के आश्रयदाता राजा भोज के समकक्ष बने। इसलिए उन्होंने काश्मीर तथा अन्य देशों से विभिन्न ग्रंथों की सामग्री आचार्य को उपलब्ध करा दी। संस्कृत – प्राकृत व्याकरण, कोष, काव्य, काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र आदि की रचना करके हेमचन्द्र ने अणहिल पुरपाटण को राजा भोज की धारानगरी बना दिया। हेमचन्द्र के प्रभाव के कारण पाटण बरसों तक प्रसिद्ध विद्याधाम और अहिंसा धर्म का आश्रयस्थान बना।

सिद्धराज के पश्चात् उनका भतीजा राजा कुमारपाल हेमचन्द्र सूरि का शिष्य एवं श्रावक बना। हेमचन्द्र सूरि ने संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

डॉ. वी. एम्. कुलकर्णी जी हेमचन्द्र सूरि के बारे में इस प्रकार लिखते हैं– " संस्कृत साहित्य में उनका ऊंचा सन्माननीय स्थान है। संस्कृत एवं प्राकृत के व्याकरणकार, शब्दकोशकार, काव्यशास्त्र और छन्दशास्त्र के रचयिता के रूप में सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उनका बडा गौरवपूर्ण स्थान है। उनके विद्धत्तापूर्ण ग्रन्थ मौलिक नहीं होने पर भी उनकी विश्वकोशात्मक अतिव्यापक विस्तृत परम्परा का दर्शन इनके ग्रन्थों में होता है। सर्व क्षेत्रों की विस्मयकारी उपलब्धियों के कारण उनके सहधर्मियों ने उन्हें " कलिकालसर्वज्ञ " की उपाधि प्रदान की। आचार्य हेमचन्द्र कवि से भी अधिक प्रकाण्ड विद्वान, नीतिशास्त्रज्ञ, सफल उपदेशक, राजनीतिज्ञ तथा महायोगी थे।"[४३]

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि हेमचन्द्र सूरि ने अपने को एकसाथ सफल कवि, इतिहासकार, व्याकरणकार एवं विश्वकोशकार की परम्परा में एक विद्वान के रूप में प्रमाणित किया है।

श्री हेमचन्द्राचार्य की एक और विशेषता है उनकी समन्वयवादिता एवं हृदय की उदारता। श्रेष्ठ जैनाचार्य होनेपर भी वे राजा सिद्धराज के साथ सोमनाथ के दर्शन के लिए गये थे। सोमनाथ को हाथ जोडते हुए उन्होंने स्तुति की है " जनम के बीजांकुरों की निर्मिति करनेवाले रागादि विकारों का जिन्होंने निर्मूलन किया है उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जिन आदि चाहे जिस नाम से जानिए। मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। "[४४]

" त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र " उनकी रचनाओं में सबसे विस्तृत एवं

---

४३. He has a place of honour in general Sanskrit Literature as a compiler of useful and important works on grammar, lexicography, poetics and metrics. His learned books are not distinguished by any originality, they rather display a truely encyclopedia tradition and an enormous amount of reading, besides a practical sense which marks them very useful account of astounding many sideness of his literacy achievements. He earned from his coreligionists the title of Kalikal Sarvadnya.

Dr. V. M. Kulkarni—Ram Story in Jain Literature. 1962. (Manuscript) page 415.

४४. भव-बीजांकुर-जनना रागद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।–हेमचंद्र,
वीतरागस्तोत्र।

प्रसिद्ध रचना है, जिसके सातवें पर्व के रूप में जैन रामकथा है। इस कथा में भी जैन और अ-जैन रामकथा का कुछ समन्वय है, फिर भी उसमें उन्होंने अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है।

(४) चौथी रामकथा के रचयिता आचार्य जिनसेन के शिष्य गुणभद्र हैं। गुणभद्र कर्णाटक के निवासी थे। अपने गुरु के द्वारा रचित आदि पुराण में १६२० श्लोकों की रचना कर उन्होंने उसको पूर्ण किया और १११७ श्लोकों का उत्तर पुराण रचकर रामचरित्र गूंथा।

इनकी रामकथा की यह विशेषता है कि वह विमल सूरि की जैन रामकथा और वाल्मीकि की जैनेतर रामकथा से भी भिन्न है। वाल्मीकि ने सीता को अयोनिजा बताया है, विमलसूरि ने उसका जन्म जनक राजा के विदेहा रानी से बताया है, तो गुणभद्र सीता को रावण की मन्दोदरी से प्राप्त पुत्री के रूप में मानते हैं। उनकी रचना का आधार अज्ञात है फिर भी वे विमलसूरि तथा संघदासगणि की रचनाओं से परिचित थे। यह कथा शायद किसी "परमेश्वर" की गद्यकथा से ली गई होगी जिसका उल्लेख जिनसेन ने अपने आदि पुराण में किया है। सीता का रावणपुत्री का रूप तिब्बती रामायण में भी मिलता है। इससे इस मान्यता को बल प्राप्त होता है कि संभवतः यह किसी रामविषयक लोककथा का रूप रहा होगा। इसपर श्री नाथुराम प्रेमी जी का तर्क है कि – "हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से वहुत पहले विमल सूरि ही के समान किसी अन्य आचार्य ने भी जैनधर्म के अनुकूल, सोपपत्तिक और विश्वसनींय एवं स्वतंत्र रूप से रामकथा लिखी होगी और वह गुणभद्र को गुरुपरम्परा से प्राप्त हुई होगी।[४५]

अबतक ये जैन रामकथाएँ विशेष अनुशीलन का विषय इसलिए नहीं बनी क्योंकि इन जैन रामकथाओं के बारे में प्रायः उन्हें धार्मिक कहकर टाल दिया गया। दूसरे उसके वैविध्य को देखकर उसके अध्ययन की उपेक्षा की गई व हमने इसीलिए इन चारों कथाओं का अनुशीलन करने का प्रयास किया है। अब हम ऊपर उठाये गये दो प्रश्नों को समझने का प्रयत्न करेंगे।

जैन रामकथा में धर्म प्रचार की मान्यता :

जैन रामकथा को केवल धर्म प्रचार का साधन कहना सरासर अन्याय है। इस प्रकार का आरोप वाल्मीकि या तुलसी की रचनाओं पर भी किया जा सकता है। दोनों रामकथाओं में धर्म प्रचार की इतनी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है जिससे उनमें धर्म प्रचार का लक्ष्य सामने आ जाता है। पर यथार्थता से यह बात सिद्ध

---

४५. पं. नाथुराम प्रेमी–जैन साहित्य और इतिहास, पृ. २८२ सं. १९९९।

नहीं होती। रामकथा धर्मपुरुष की कथा है। पर युग में धर्मपुरुष की जीवनी की किरणें इसी प्रकार जगमगाती रहती आयी हैं और उनसे वह युग आलोकित होता रहता है। उस युग के आचरण, विचार, संस्कार, मान्यताएँ, दर्शन आदि का स्वरूप अवश्य ही उस धर्मपुरुष की जीवनी से प्रकट होते रहे। यों कहना चाहिए कि वह पुरुष उस युग पर छा जाता रहा और युग भी उसके अनुरूप बनता रहा है। यह भी हमें सोचना चाहिए कि रामकथा केवल वैदिक परम्परा की ही मात्र कथा नहीं है" वालमीकि की काव्यप्रतिभा से प्रस्फुटित होने पर भी वह स्वतंत्र रूप से बौद्ध जैन वर्णित रामकथाओं के साथ विदेशों में पहुंची हुई कथा है इसलिए उसमें दिखाई देनेवाला वैशिष्टय इष्ट एवं वांच्छनीय है।

रामकथा का वैविध्य इष्ट एवं उपादेय है।

तिब्बती रामायण, तुर्कस्थान की खोतानी रामायण, हिन्देशिया का रामायण कावित, सेरत काम, रे आम केर रामायण आदि रचनाओं में रामकथा की विविधता, विशेषता और व्यापकता एवं विचित्रता आदि बातें सामने आती हैं और प्रतीत होता है कि रामकथा का यह वैविध्य वास्तव में उसकी गरिमा को बढाता है। यह संशयातीत है कि किसी भी कथा का इतने व्यापक क्षेत्र में प्रसार होना महत्त्वपूर्ण एवं गौरवकी बात है। इसका प्रमुख कारण उस कथा की अपने ढंगसे किया गया विकास है। यह विकास केवल महाकाव्य की दृष्टि से तथा काव्य की दृष्टि से ही उपादेय नहीं है अपितु भारत की विविधता में पाई जानेवाली एकता को जानने के लिए भी परमावश्यक है।

जैन रामकथाओं की उपेक्षा के कारण :

जैन संस्कृति हिन्दु संस्कृति का विद्रोही बालक है।

इस प्रकार की मान्यता के कारण जैन संस्कृति के बारे में जैनेतर विद्वानों में अज्ञान बढता रहा। आधुनिक अनुसंधान से ये बातें गलत सिद्ध होने पर भी विद्वानों ने उनकी उपेक्षा ही की है। हमारा प्रयत्न इस उपेक्षा को दूर करने का है।

जिस समय पशु बलि का जोर शोर से समर्थन होता था उस समय पशुबलि के विरोधक और आत्मविद्या के समर्थक जनक तथा याज्ञवल्क्य आदि जैन संस्कृति के समीप पहुँचे हुए प्रतीत होते हैं। डॉ. राधाकृष्णन तो यहाँतक कहते हैं "हम निश्चयपूर्वक यह कह सकते हैं कि जैन धर्म यदि वैदिक धर्म से प्राचीन नहीं है तो कम से कम वह वैदिक धर्म के समान पुराना तो है ही।"[४६]

---

४३. We may make bold to say that Jainism, the religion of Ahimsa is probably as old as Vaidic religion if not older.
Dr. S. Radhakrishnan—Cultural Heritage of India. Vol. I. page 185, 1930.

एक कारण यह भी दिया जाता है कि जैन रामायण में रामचरित्र एवं पात्रों के बारे में मिलनेवाली भिन्नता उपलब्ध होती है। जिससे आवेश के कारण पाठक के मन में इस प्रकार की बातें आती हैं। जैसे —

(१) हमारी वाल्मीकि रामकथा को जैनियों ने विपरीत रूप दिया है।

(२) राम प्रभु और अवतार हैं पर उनका महत्त्व इन्होंने घटाकर उसे जैन मुनि बनाया है।

(३) एक पत्नीव्रती राम को ८००० पत्नियों का पति बताया है तथा ब्रह्मचारी हनुमान को गृहस्थी बना दिया है।

(४) लक्ष्मण को नर्क में डाल दिया है।

(५) यज्ञयाग एवं ब्राह्मणधर्म के विपरीत अहिंसापूर्ण जैन धर्म का प्रचार किया है।

इस प्रकार की मान्यताओं के कारण जैन रामायण को समझने के लिए आवश्यक धैर्य का सम्पूर्ण अभाव हमें दिखता है और फिर जैन धर्म मूलक अज्ञान के कारण इन भावनाओं से उत्तेजना इतनी बढती है कि इनके अध्ययन की उपेक्षा की जाती है।

वास्तव में जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति ही है और उसके स्रोत प्राचीन काल में भी उपलब्ध होते हैं।

(१) रायबहादुर ए. चक्रवर्ती ने भारतवर्ष के मूल निवासियों के बारे में लिखा है–

"यहाँ के उन मूल निवासियों के लिए वेदों में जो शब्द आये हैं उनमें से एक घृणित शब्दों का वाची "दस्यु" एवं "दास" है। उन लोगों ने आर्यों का प्रतिरोध किया इसलिए शत्रुओं का निन्दनीय वर्णन आर्यों के द्वारा किया गया। तथाकथित "दस्यु" लोगों का धर्म, संस्कृति और वर्ण पृथक् था। उनका वर्ण श्याम था। वे यज्ञबलिविहीन थे। वैदिक क्रियाकाण्ड को नहीं मानते थे। उनकी देव विषयक अपनी मान्यताएँ भी भिन्न थीं। व्रत और आचारों आदि में भी आर्यों से उनकी काफी भिन्नता थी। वे वैदिक देवताओं का तिरस्कार करते थे। इस प्रकार आर्यों के देवताओं, यज्ञों तथा धार्मिक विचारों का प्रकट रूप में निषेध करने के कारण वे अयज्वन्, अकर्मन्, अदेव्य, अन्यव्रत, देवपियु, "अनोस" आदि कहलाये। इन मूल निवासियों की भाषा अस्पष्ट या संस्कृत से विरुद्ध होने से मृध्रवाक् कहलाई। यह भाषा प्राकृत थी जिसके माध्यम से वे अपना धार्मिक साहित्य प्रचारित करते थे। यह भाषा प्राचीन तमिल भाषा के अधिक सन्निकट

है। टोलकप्येयम नामक ग्रन्थ से इन सारी बातों का समर्थन मिलता है।" [४७]

इस अवतरण से इतना तो अवश्य प्रमाणित होता है कि आर्यों के आगमन के पूर्व ही प्रचलित इन प्राकृत भाषाओं का भारतीय संस्कृति और धर्म की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये भाषाएँ आर्यों का विस्तारस्थान छोड सारे भारत में परिव्याप्त थी इसलिए भारतीय संस्कृति के समस्त पहलुओं को समझने में जैन संस्कृति तथा उसके प्राकृत वाङ्मय की उपेक्षा करने से ज्ञानार्जन में बाधा पहुँचेगी।

प्रो. चक्रवर्ती महोदय के इस लेख के अलावा भी आज ऐसे साधन उपलब्ध हुए हैं कि जो जैन संस्कृति को कम से कम वैदिक संस्कृति के साथ साथ पनपती हुई बताने में समर्थ हैं।

(२) मोहन-जो-दडो तथा हडप्पा की खुदाई से उपलब्ध सामग्री में जैन परम्परा की प्राचीनता पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री मिली है जिसे विद्वानों ने अपनी मान्यता प्रदान की है। डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार मुहर नं ४४९ में "जिनेश्वर" शब्द पढते हैं। [४८]

(३) रायबहादुर रामप्रसाद चन्दा का कथन है कि "प्लेट ११ एफ. जी. डी. पी. १५९ में खुदी हुई आकृति की अवस्था इण्डस के मुहरोंपर खडे हुए देवताओं जैसी है। तत्कालीन इजिप्शियन शिल्पों में प्रकट प्राचीन राजवंशों में (III IV) दोनों तरफ लटकते हाथोंवाली मूर्तियाँ थीं। ये इजिप्त की मूर्तियाँ और ग्रीक मूर्तियाँ उसी प्रकार के हाव भाव बताती हैं फिर भी इण्डस मुहरों पर की खडी आकृतियों में विशेषता के रूप में जो त्यागभावना दिखाई देती है उसका इसमें संपूर्ण अभाव है। तीन से पांच नंबर की जी एच आकृति से अभिव्यक्त जिनेंद्र के सामने ही बैल का चिह्न है वह आकृति ऋषभदेव की है। [४९]

इससे प्राचीन भारतीय संस्कृति से जैन संस्कृति कितनी संबद्ध थी इसका दिग्दर्शन होता है।

(४) मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई में महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व की सामग्री के साथ शिलालेख भी मिले हैं। उसमें एक खड्गासनधारी देवमूर्ति के आसनपर लिखा हुआ है–

---

४७. Rai Bahadur A Chakravarti–Yesterday and to-day : Glimpses of Ancient India, 1925, page 59.

४८. सुमेरचन्द्र दिवाकर–जैनशासन, पृ. २०३, ई. १९४७

४९. रायबहादुर रामप्रसाद चन्दा–"जैन विद्या" लाहोर, वाल्युम १ पृ. १।

" यह अर तीर्थंकर की प्रतिमा सं. ७८ में देवों के द्वारा निर्माणित स्तूप की सीमा के भीतर स्थापित की गई। "[५०]

जिस स्तूप में से यह मूर्ति निकली उसके बारेमें म्युझियम रिपोर्ट में लिखा है-

यह स्तूप इतना प्राचीन है कि इस के लेख की रचना के समय स्तूप आदि का वृत्तान्त विस्मृत हो गया होगा। लिपि की दृष्टि से यह लेख इण्डोसिथियन शक अर्थात् १५० इसवी सिद्ध होता है। इसलिए ईसवी के अनेक शताब्दियों पूर्व यह स्तूप बनाया गया होगा। इसका कारण यह है कि यदि इसकी उस समय रचना की गई होती तो इसके निर्माताओं का भी नाम उसपर अवश्य मिलता।[५१]

(५) मोहें-जो-दारो एवं हडप्पा की खुदाई में से प्राप्त मूर्तियों में मथुरा की मूर्ति में पाया जानेवाला ऋषभदेव का सूचक बैल चिह्न देखकर फरलॉंग साहब का कथन है कि--

" सम्पूर्ण ऊपरी विभाग अर्थात् पश्चिम, उत्तर और मध्य प्रदेशों में अज्ञात प्राचीन काल से तुरानियनों का राज्य था। रूढि के अनुसार वे द्रविड कहलाते थे। वे साँप, नाग आदि की पूजा करते थे। पर प्राचीन भारत के ऊपरी विभाग में अति प्राचीन काल से एक बडा सुव्यवस्थित धर्म विद्यमान था। उसका अपना ऊँचा तत्वज्ञान एवं नीतिधर्म था। वह अति उग्र तपश्चर्या का समर्थन करनेवाला था और उसका ही नाम जैन धर्म था। इससे ही आगे चलकर ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म को अध्यात्मवादी स्वरूप स्पष्ट रूप से प्राप्त हुआ। आर्यों के गंगा या सरस्वती नदियों तक पहुँचने के पूर्वकालीन इतिहास काल के बहुत समय पूर्व ही जैनियों के बाईस बोधी श्रमण एवं तीर्थंकर हुए जिनके द्वारा धर्मोपदेश दिया

---

५०. पं. सुमेरचंद जैन–जैनशासन पृ. २४७ (सन १९६२ ई.)

५१. The stup was so ancient that at the time when the inscription was inscribed, its original had been forgotten on the evidence of its character. The date of the inscription may be referred with certainty to the Indo–Scythian era and is equivalent to A.D. 150. The stup must therefore have been built several centuries before the beginning of christian era, for the name of its builder would assuredly have been known if it had been erected during the period when the Jains in Mutra carefully kept record of their donation.

–Museum Report 1890–91.

जैन शासन–सुमेरुचंद्र दिवाकर पृ. २७९

गया है और तेईसवें पार्श्वनाथ इसवी पूर्व आठवीं शताब्दी में हुए थे इसलिए जैन धर्म के मूल स्रोत का पता लगाना असम्भव है। ५२

(६) प्राचीन उत्कल याने उडिसा प्रान्त में पुरी जिले में उदयगिरी जैन मंदिर का हाथी गुंफावाला शिलालेख जैन रामायण संस्कृति अर्थात जैन संस्कृति की प्राचीनता की दृष्टि से असाधारण एवं महत्त्वपूर्ण है। इस लेख में "नमो अरिहंताणं, नमो सव्वसिद्धाणं" वाक्यों के द्वारा जैन धर्म का असंदिग्ध बोध होता है। उसमें लिखा गया है कि महामेघवाहन महाराजा खारवेल मगध देश के अधिपति पुष्यमित्र से भगवान वृषभदेव की मूर्ति वापस ले आये। तीन सौ वर्ष पूर्व मगधाधिपति नन्दनरेश उस मूर्ति को अपने साथ कलिंग से ले गये थे। यह लेख अबतक के उपलब्ध शिलालेखों में अति महत्त्वपूर्ण है।

(७) यहाँ हम गुजरातके एक महान साहित्यिक प्रल्हाद चन्द्रशेखर दीवाणजी का एक अभिप्राय अपने अभिमतार्थ प्रस्तुत करना उचित समझते हैं।

"जैन कथाओं के विषय में कुछ विद्वानोंने इस प्रकार की मान्यता प्रचलित की है कि जैन धर्माचार्यों ने हिन्दु इतिहास और पुराण ग्रन्थों से महापुरुषों के नाम और उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ लेकर उन्हें जैन परम्परा के अनुकूल परावर्तित किया है। उनके वैज्ञानिक ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। पर उनके ग्रन्थों के अध्ययन से मुझे प्रतीत हुआ है कि यह मान्यता सत्य से परे है। उन ग्रन्थों के रचनाकारों ने अपने प्राचीन ग्रन्थों से उपलब्ध जानकारी को

---

५२. All upper, western, northern, central India was then 1500 to 800 B. C. and indeed from unknown times ruled by Turanians conventionally called Dravids and given to trees, Serpents, Phalikworship, but there was also existing throughout upper India an ancient and highly organised religion, philosophical ethical and severely ascetical viz. Jainism. Out of which, clearly developed the early ascetical features of Brahmanism, and Buddhism. Long before the Aryas reached the Ganges or even Saraswati Jains had been taught by some twenty two Bodhas, Saints or Tirthankaras prior to historical 23rd Bodha Parshva of 8th or 9th century B. C. It is impossible to find the beginning of Jainism.

Prof. Forlong–Short Studies in the Science of Comparative Religion. Page 243–44.

जैन शासन–सुमेरचंद दिवाकर, पृ.२९४

नामनिर्देश के साथ प्रस्तुत किया है।"[५३]

दीवाणजी महोदय का यह अभिमत हमें जैन साहित्य के प्रति की गयी उपेक्षा हटाने में सहायक होगा तथा जैन संस्कृति की प्राचीनता एवं उपादेयता से भारतीय संस्कृति के साथ संबद्ध करनेमें लाभकारी होगा।

जैन रामकथा लेखकों की जानकारी और उनकी प्राचीनता पर विचार करने के बाद इन सारी रामकथाओं के तीन स्वरूप हमारे सामने आ जाते हैं --

(१) पौराणिक रामकथा का स्वरूप

(२) लोकगाथा का रामकथावाला स्वरूप

(३) काल्पनिक एवं ऐतिहासिक रामकथावाला स्वरूप

इन तीनों स्वरूपों की परंपराएं जैनेतर रामकथाओं में और जैन रामकथाओं में भी उपलब्ध हो जाती हैं। हमें केवल जिन चार प्रातिनिधिक जैन रामकथाओं का अनुशीलन करना है उनमें भी ये तत्त्व कैसे प्राप्त होते हैं इसे सम्यक् अध्ययन कर देखना है। अतएव मूल रामकथाओं के स्रोतों पर विचार करते हुए हम द्वितीय अध्याय में उसका विचार करेंगे।

□ □ □

---

५३. જૈન ગ્રન્થોંવિષે એવી સામાન્ય માન્યતા કેટલાક વિદ્વાનોએ ફેલાવી છે કે જૈન સાધુઓએ હિન્દુ ઈતિહાસ, પુરાણના ગ્રન્થોમાંથી મહાન પુરૂષોના અને તેમના જીવનના મુખ્ય મુખ્ય બનાઓ ઊપાડી લઈને તેને જૈન સ્વરૂપ આપેલું છે અને તેથી તેમના પૌરાણિક ગ્રન્થો ઈતિહાસની દૃષ્ટિએ કઇ ઊપયોગી થઈ પડે તેવા નથી. પરંતુ તેમના જે થોડા ગ્રન્થોનો મેં અભ્યાસ કીધો છે તે ઊપરથી મને લાગે છે કે એ અભિપ્રાય સત્યથી વેગળો છે. એ ગ્રન્થોના કર્તાઓએ પોતાને જે પ્રાચીન ગ્રન્થોમાંથી માહિતી મળેલી તેના નામનિર્દેશ કિધેલા છે.

—દીવાણજી—હેમચંદ્રની કૃતિઓ—હેમસારસ્વત પૃષ્ઠ ૨૮૫, સન ૧૯૫૪.

अध्याय २

जैन रामकथाओं के मूल स्रोत

जैन रामकथाओं के मूल स्रोतों के विवरण के पूर्व जैनेतर प्रातिनिधिक रामायण के मूल स्रोतों पर भी संक्षेप में विचार करेंगे जिससे हम जैन रामकथा स्रोतों की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

वैदिक रामकथा परंपरा के स्रोतों का स्वरूप

(१) वाल्मीकि रामायण और उसके स्रोत :

आदि कवि वाल्मीकि काव्य के मूल स्रोत का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। वेद जैसे प्राचीन ग्रंथों में रामकथा का सम्पूर्ण अभाव होने से आधार ग्रंथ ही नहीं है। इसीलिए डॉ. कामिल बुल्के का यह कथन है – "वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा रामकथा सम्बन्धी गाथाएँ प्रसिद्ध हो चुकी थी इसकी समस्त विस्तृत वैदिक साहित्य में कोई सूचना नहीं मिलती।[1]" इससे वाल्मीकि रामायण प्राचीनतम रचना प्रमाणित होती है।

डॉ. बलदेव उपाध्याय इस तथ्य का समर्थन करते हुए कहते हैं – " प्रत्येक प्रतिभाशाली कवि की लेखनी से प्रसूत कतिपय ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं। जिनसे स्फूर्ति एवं प्रेरणा लेकर बाद के कविगण अपने काव्यों को सजाया करते हैं। ऐसे काव्य को उनके व्यापक रूप में प्रभावपूर्ण होनेके कारण 'उपजीव्य काव्य' संज्ञा प्रदान की जाती है। आदि कवि की वाणी पुण्यसलिला भागीरथी है जिसमें अवगाहन कर पाठक तथा कवि अपने आपको पवित्र ही नहीं मानते प्रत्युत उसकी रसमयी काव्यशैली के हृदयंगम स्वरूप को समझने में कृतकार्य मानते हैं। काव्य तथा नाटकों के विषयों की सूचनाओं का संकेत देने में रामायण एक अक्षुण्ण स्रोत है।[2]

इससे भी हम वाल्मीकि रामायण के लिए कोई स्रोत नहीं सोच सकते।

---

१. डॉ. कामिल बुल्के–रामकथा (द्वि. सं.) पृ. २६, १९६२

२. बलदेवप्रसाद उपाध्याय–संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. ६५।

डॉ. शान्तिकुमार व्यास ने भारतीय संस्कृति एवं साहित्यपर रामायण के प्रभाव को अंकित करते हुए लिखा है " भारतीय संस्कृति के आधे से अधिक हिस्से को वाल्मीकि रामायण ने प्रेरित किया है ।[3] इससे वाल्मीकि रामायण समस्त कवियों के लिए अनोखा प्रेरणादायक रहा ।

महाराष्ट्रीयजी ने इस बारे में अपना अभिमत इस प्रकार प्रकट किया है ' हमारे वाङ्मय में आदि कवि के रूप में महर्षि वाल्मीकि को प्रतिष्ठा मिली है। वैसे वेद काव्य के रूप में प्रसिद्ध है, अथवा उनको रामायण पूर्वकाल में छन्दोबद्ध ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त थी फिर भी काव्य संज्ञा जिसे प्रदान की जाय इस प्रकार ग्रन्थ भाषा में उपलब्ध नहीं थे। इसलिए वाल्मीकि को आदि कवि यह संज्ञा मिली होगी । राम ने सीता का त्याग किया और उसे वाल्मीकि के आश्रम में लवकुश नाम के पुत्र पैदा हुए और जब उनकी आयु बारह वर्ष की हो गई तभी सम्भवतः इस काव्य की रचना हुई । "[४]

महाराष्ट्रीय जी के इस कथन में एक नई बात मिलती है ।

"काव्य संज्ञा जिसे प्राप्त प्रदान की जाय इस प्रकार के ग्रन्थ भाषा में उपलब्ध नहीं थे ।" इसलिए काव्य संज्ञा पा सकने की क्षमता का पहला रामकथा का ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। इसमें हम कह सकते हैं कि रामकथा के मूल सूत्रों का अस्तित्व इससे पूर्व विद्यमान अवश्य रहा होगा किन्तु काव्य की कसौटी पर वे उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकते थे ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषाशास्त्री तथा ध्वनिशास्त्र के प्राध्यापक डॉ. चाटुर्ज्या का कथन है कि-"ऑस्ट्रिक और द्रविडों में आर्यों के यहाँ के आगमन के पूर्व (ई. पूर्व १५००) देवताओं और वीरों की दंतकथाएँ प्रचलित थीं। ये कथाएँ आर्य भाषा में बहुत समय के बाद आयीं जिनमें आर्य देवता और मान्यताओं के अनुसार सुधार या परिवर्तन हुआ और वे आर्यों के देवों एवं वीरों के रूप में बदल गये । पुराणों की कथाएँ इसी प्रकार पैदा हुई । रामकथा तो तीन स्वतंत्र

---

३. शान्तिकुमार नानुराम व्यास-रामायण कालीन संस्कृति पृ. २९४,१९६५ ई.

४. महाराष्ट्रीय-रामायण समालोचना प्रथम खंड, पृ. ९, सन १९२७ ई. " आमच्या वाङ्मया-मध्ये आदिकवि म्हणून महर्षि वाल्मीकींना मान मिळालेला आहे. वेद ही जरी काव्ये आहेत किंवा रामायणापूर्वी जरी छन्दोबद्ध ग्रंथ होते तरी काव्य संज्ञेला पात्र असा ग्रन्थ भाषेत पूर्वी नसल्यामुळे वाल्मीकींना आदिकवि असे म्हणत असावेत असे वाटते. रामाने सीतेचा त्याग केल्यानंतर तिला वाल्मीकींच्या आश्रमात लव-कुश हे दोन पुत्र झाले. त्या सुमारास केव्हा तरी हे काव्य निर्माण झाले आहे. "

कथाओं का सम्मिश्रण-सी लगती है[५], जिनका ऐतिहासिक और समय की दृष्टि से कोई पारस्परिक संबन्ध नहीं है।

१. अयोध्या का षड्यंत्र और राम का निर्वासन
२. सीतापहरण और उसकी पुनःप्राप्ति
३. वानर राजकन्या (तारा) की घटना

इस अवतरण से हम इस तथ्य का संकेत पाते हैं कि या तो सीता से प्राप्त रामकथा के अंश पर कवि वाल्मीकि के जागृत भावालोक से इस महाकाव्य की रचना हुई होगी अथवा तद्युगीन किसी प्रचलित एक या अनेक कथाओं के सम्मिश्रण से वाल्मीकि ने रामकथा की रचना की होगी।

वाल्मीकि रामायण के स्रोतों पर विचार कर लेने पर हम रामचरित मानस के स्रोतों के बारेमें विवेचन करेंगे।

(२) रामचरित मानस के स्रोत :

तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में ही स्रोतों का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है -- " नाना पुराणनिगमागम सम्मतं यत्।
रामायणं निगदितं क्वचिदन्यतो पि ।। [६]"

गोस्वामीजी ने लिखा है कि उन्होंने अपनी रामकथा पुराण, निगम, आगम और क्वचित अन्य स्थानों से भी ली है।

---

५. Myths and Legends of Gods and Heroes current among Austrics and Dravidians long attending the period of Aryans advent in India (1500 B. C.) appear to have been rendered in the Aryan language in late and garbled or improved version according to themselves to Aryan Gods and Heroes' Worlds and it is these myths and legends of Gods sages which we largely find in Puranas. The Rama legend looks a blend of three distinct stories without any historically put together at different times.
(1) Ayodhya intrigue and banishment of Ram.
(2) Abduction of Sita and her recovery by Ram.
(3) Episode of Monkey Princess.
Dr. Chaturjya—History and Culture of the Indian People—1925—Past Vedic Age.

६. रा. च. मा. प्रारम्भिक श्लोक ७ वाँ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदासजी के समय में रामकथा के जितने ग्रन्थ उपलब्ध थे उन सबको रामचरित मानस का स्रोत हम मान सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण तथा उससे संबद्ध वैदिक परंपरा की रामकथाओं का भी उसपर प्रभाव रहा होगा। साथ ही साथ जैन, बौद्ध या अन्य अवैदिक रामकथाओं से भी उन्होंने लाभ उठाया होगा।

श्री रामनरेश त्रिपाठीजी का कथन है –– " तुलसीदासने मानस में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक से अधिक सहायता ली है। इसके सिवा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन चुनकर उन्होंने मानस में उनका रूपान्तर कर दिया है। संस्कृत कानन में विचरण करके तुलसीदास रूपी भ्रमर ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार कर हिन्दु जाति को प्रदान किया है उसकी तुलना संसार के किसी भी दान से नहीं की जा सकती।"[७]

यहाँ पर केवल हिन्दु ग्रन्थों का ही उल्लेख आया है। संस्कृत पुस्तकों का उल्लेख संदिग्ध-सा लगता है। पर डॉ. विद्या मिश्रा ने अपने मन्तव्य में बडी स्पष्टता रखी है – उनका कथन है कि "संस्कृत के ललित काव्यों में उपलब्ध बौद्ध एवं जैन साहित्य में उपलब्ध तथा देशविदेशों में प्राप्त रामसाहित्य तुलसी के पूर्व विद्यमान था। फिर भी तुलसी ने सब प्रेरणा पाकर मौलिक उद्भावना कर नवीन निर्माण कला का प्रदर्शन किया"[८] हम कह सकते हैं कि तुलसी की रामकथा लोककथा साहित्य के स्रोतों से अनुप्राणित हुई थी। पर साथ ही में उसमें पौराणिक स्रोतों का भी समावेश है।

अबतक वैदिक परम्परा की रामकथा के स्रोतों का स्वरूप हमने स्पष्ट किया फिर भी रामकथा के स्रोतों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। उनपर भी कुछ दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। हमारा मन्तव्य है कि यह बात प्राय: सर्वसम्मत है कि रामकथा अतिप्राचीन काल से मौखिक रूप में प्रचलित रही है और उसका प्राचीन रूप विभिन्न कवियों द्वारा उद्भावित होनेके कारण अपने अपने युग में अभिव्यंजित रामकथा में युगीन प्रसंग और कथाओं के सूत्र जोड दिये गये होंगे। इसीलिए मूल कथा में कई रामकथाओं के स्रोत आकर घुलमिल गये होंगें।

वेबर रामकथा को दो भिन्न आख्यानों का एकत्रीकरण तो मानते हैं पर उसका समर्थन अलग ढंग से करते हैं। आपके मत से रामकथा के मूलस्रोत दो हैं। पहला है दशरथ जातक और दूसरा होमर का इलियड। दशरथ जातक में

---

७. राम नरेश त्रिपाठी – तुलसीदास और उनका काव्य, पृ. ४२।

८. डॉ. विद्या मिश्रा – वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस पृ. ४२, सन १९६३ ई.।

सीतापहरण के कथानक का अभाव है, उसे वे रामकथा का मूल रूप मानते हैं। और सीतापहरण की तथा युद्ध कथा को हेलन के अपहरण की कथा मानते हैं।[९]

डॉ. हर्मन याकोबी भी रामकथा के प्रधान दो स्रोत मानते हैं। उनका कहना है कि रामायण का एक भाग जो अयोध्या में घटा और दूसरा जो दण्डकारण्य में घटा–ये दो भिन्न आधार हैं जिनके संयोग से रामकथा ने इस प्रकार का सम्मिलित रूप धारण किया। उनका कथन है कि किसी राजकुमार के घर से निर्वासन के आधार पर राम की अयोध्या की घटना घटी और कृषि की अधिष्ठात्री होने पर भी जिस सीता का वेदों में कहीं भी अधिष्ठान नहीं था वह रामकथा में सीता के रूप में परिणत हो गई। वे रामायण के पात्रों को वैदिक साहित्य के देवताओं का प्रतिबिम्ब मात्र समझते हैं।[१०]

हमारा अभिमत है कि दशरथ जातक के रचना काल में प्राप्त रामकथा का रूप ही उसमें प्रतिबिम्बित है और आगे चलकर रामकथा के विकास के साथ उस समय की यहाँ की कोई अतिप्रिय लोक कथा का अंश सीतापहरण एवं युद्ध के रूप में जुड गया होगा। हेलन की कथा से इसका कोई संबन्ध नहीं है।

रामायण के विषय में ये सारी मान्यताएँ रामकथा के स्रोत की विभिन्नता की ओर संकेत करती हैं। प्रसिद्ध विद्वान श्री. दिनेशचंद्र सेन भिन्न प्रकार से दो मूलस्रोत मानते हैं। एक तो उत्तर भारत में प्रचलित दशरथ जातक तथा दूसरा दक्षिण भारत में प्रचलित रावणसंबंधी आख्यान।[११]

इन विभिन्न मान्यताओं से यह प्रतीत होता है कि वाल्मीकि की मूल रामायण का स्वरूप तो हम नहीं जान पाते किन्तु आज जो वाल्मीकि की रामायण है वह प्राचीन रामकथा और मध्ययुगीन कथाओं के समन्वय से बनी हुई है। इसलिए उससे सम्बन्धित सारी कथाएँ उसका स्रोत मानी जायेगी। तुलसीदास की रामकथा के स्रोत के रूप में उनके समय में उपलब्ध सम्पूर्ण रामकथा साहित्य ही रहेगा।

वैदिक रामकथा के स्रोतों का इतना विवेचन करने पर अब हम जैन रामकाव्य के स्रोतों पर विचार करेंगे।

जैन और जैनेतर रामकथा के स्रोतों के स्वरूप का विचार करते हुए निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने आते हैं—

१) पौराणिक स्रोत इस बात का अभिप्राय स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक

---

९. ए. वेबर–ऑन दी रामायण–पृ. ११, १८७०। कामिल बुल्के–रामकथा पृ.।१२

१०. डॉ. कामिल बुल्के–रामकथा (दूसरा संस्करण) पृ. १०७, सन १९६२ ई.

११. डॉ. कामिल बुल्के–रामकथा (दूसरा संस्करण) पृ. ११३, सन १९६२ ई.

जीवन स्थिर, अत्याचार से मुक्त हो तथा लोकमंगल और साधुओं की सुरक्षा का वातावरण सिद्ध करने में वह सहायक बने। चरित्र नायक भगवान के शौर्य, वीर्य, तेज, बल, कांति और धैर्य से संपन्न होने से दिव्य गुणों का प्रादुर्भाव और संतुलित जीवन की स्थापना करता है तथा धर्माचरण का प्रश्रय देता है।

२) लोककथा के स्रोत जनमानस के अन्तःकरण से उभरकर सामने आते हैं इसलिए लोकादर्शों और लोकपरंपरा के सांस्कृतिक और दैनंदिन जनव्यवहार के संबंधों को वे लोककथा के माध्यम से मौखिक और ग्रांथिक परंपरा के स्वरूपों में हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं।

३) जहाँ पुराण और लोककथा ऐतिहासिक बन जाती हैं वहाँ पर उसे समस्त जीवनव्यापिनी पद्धति और विचार व्यवस्था आचरण और जीवन व्यवहार में उतरती है यही उसके चिंतन के सिद्धान्तों का स्वरूप ग्रहण कर एक दार्शनिक मत या जीवन दर्शन बन जाती है। दार्शनिक स्रोतों का प्राय: यही स्वरूप जैन और जैनेतर रामकथा में हमें उपलब्ध हो जाता है।

डा. इरावती कर्वे का कहना है कि – "कुश लवों के द्वारा मौखिक परंपरा से लोककथा का माध्यम बनकर जो रामकथा आख्यान सामने आया वह इस बात को स्पष्ट करता है कि एक जाति का नाम ही कुशीलव था जो इस प्रकार के आख्यानों को मौखिक रूप से गाकर प्रस्तुत किया करती थी।"[१२]

जैन रामकथा में भी इन तीनों स्वरूपों की झाँकी मिल जाती है जो जैन रामकथा के स्रोतों का परिशीलन करने में हमें सहायक होगी। अब हम उसी का अध्ययन यहाँ पर करने जा रहे हैं।

जैन परम्परा का सबसे पहला रामकाव्य पउमचरिय है। इसकी रचना विमलसूरि ने की है। अपनी रचना में विमलसूरि ने अपनी प्राकृत रामकथा का स्रोत इसप्रकार कहा है --

"नामावली में निबद्ध इस पद्य की सम्पूर्ण कथा जो आचार्य परम्परा से मुझे प्राप्त हुई है उसे यथानुक्रम मैं संक्षेप से कहूंगा।"[१३]

इस गाथा से हमें मानना होगा कि विमल की कथा का स्रोत आचार्य एवं गुरु परम्परा से प्राप्त पद्म कथा है।

---

१२. डॉ. इरावती कव–महाराष्ट्र टाईम्स पूर्ति–४.५.१९७०

१३. नामावली निबद्धं, आयरियपरंपरागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्विं समासेण॥
—पउमचरियं १।८

इसमें स्रोत के रूप में अन्य स्थान पर विमलसूरि ने कहा है--

" महावीर जिन ने यह महान अर्थवाला राम चरित्र पहले कहा था। बाद में इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) ने धर्म के आशयों से पूर्ण यह चरित्र अपने शिष्यों से कहा। पुनः वह सारा साधु परम्परा से लोक में प्रकट हुआ। अब विमलने सुन्दर वचनों के साथ उसे गाथाबद्ध किया।

ग्रन्थ के अंत मे विमल सूरि ने अपने स्रोत का उल्लेख इस प्रकार किया है। " उसके शिष्य विमल सूरि ने पूर्व ग्रन्थों में आये हुए नारायण तथा हलधर के चरित्रों को सुनकर यह राघवचरित्र रचा है।"[१४]

पहले हम इन तीन गाथाओं में स्रोतों के बारेमें जो कुछ कहा है उसका पृथःकरण करेंगे।

(१) पहली गाथा में कहा है कि नामावली में बद्ध यह कथा आचार्य परंपरा से प्राप्त हुई है।

(२) पहले जिन महावीर ने अपने शिष्य इन्द्रभूति से कही। इंद्रभूतिने धर्म का आशय समझाने की दृष्टि से अपने शिष्यों से कही। इस प्रकार जैन साधुपरम्परा से होती हुई यह विमल सूरितक आई। विमलने उसे सुन्दर वचनों के साथ प्रस्तुत किया। अन्तिम गाथा में विमलसूरिने कहा है कि पूर्व ग्रंथों में आये हुए नारायण तथा हलधर के चरित्रों को सुनकर मैंने यह राघव चरित रचा है।

इस प्रकार रचयिता अपने काव्य का श्रेय आ. भगवान महावीर के कथन को आचार्य परम्परा से प्राप्त कथा को तथा पूर्वाचार्यसे ग्रथित राघव चरित्र को देता है और उसके स्रोतों पर प्रकाश डालता है।

अब हम विद्वानों के द्वारा जैन रामकथा के स्रोतों पर प्रचलित विचारों का परामर्श लेंगे।

जैन रामकथाओं के मूल स्रोतों के संबंध में प्रचलित विचार :

विद्वानों ने जैन रामकथाओं का अनुशीलन करते हुए स्पष्ट किया है कि पउमचरियं ही जैन रामकथाओं का आधार है और रविषेण, स्वयम्भू, शिलांका-

---

१४. एयं वीरजिणेण रामचरियं सिट्ठं महत्थं पुरा,
पच्छा खण्डलभूइणा उ कहियं सीसाण धम्मासयं।
भूओ साहु परंपराए सयलं लोए ठियं पायडं,
एत्ताहे विमलेण सुत्तसहियं गाहा निबद्धं कयं॥ —पउम चरियं ११८।१०२
सीसेण तस्स रइयं, राहवचरियं तू सूरि विमलेण।
सोऊण पुव्वगए, नारायण सीरिचरियाइं। पउम चरियं ११८।११८

चार्य, भद्रेश्वर, हेमचन्द्र, धनेश्वर, देवविजय तथा मेघविजय आदि रामकथा लेखकों ने पउमचरियं के ही आधार पर अपनी कथाएँ लिखी हैं। इनमें रविषेण ने विमलसूरि का अनुसरण किया और केवल दिगंबर संप्रदाय की मान्यताओं का उसमें अन्तर्भाव किया। स्वयम्भू तो स्पष्ट कहते हैं कि पउमचरिय की रचना में मैंने रविषेण का अनुसरण किया है। इस विषय में डा. वी. एम्. कुलकर्णीजी का मन्तव्य दृष्टव्य है। यथा --

' रविषेण ने यह नहीं कहा कि उनका पद्मपुराण विमल सूरि के पउमचरियं पर आधारित है पर उसका तीसरा अध्याय सम्पूर्णतया इस बात को स्पष्ट करता है। स्वयम्भू ने तो स्वयं कह दिया है कि मैंने पउमचरिय की रचना करते समय रविषेण का अनुसरण किया है। शिलांकाचार्य ने तो अपनी रचना के अंत में कहा है कि " इस प्रकार मैंने राम तथा लक्ष्मण का चरित्र पउमचरियं के अनुसार कहा है। " भद्रेश्वर ने स्रोत का उल्लेख नहीं किया पर उसने केवल पउमचरियं की कथा ही नहीं किन्तु उसके वाक्य या शब्दसमूह भी ग्रहण कर लिये हैं। हेमचन्द्र की रचना भी पउमचरियं पर आधारित है। देवविजय ने हेमचंद्र के अनुसरण का स्वीकार किया है। मेघविजय ने तो हेमचन्द्र की रचना का ही संक्षेप किया है।

गुणभद्र का प्रमुख आधार वाल्मीकि की रामकथा है और उसने दशरथ जातक और संघदास गणि के कुछ अंशों का अनुसरण किया है। इसके अतिरिक्त जैन परंपरा की कथा का कुछ अंश है जिससे गुणभद्र की रचना स्वतंत्र मानी जाती है। पुष्पदन्त ने अपना रचना-स्रोत नहीं प्रकट किया पर फिर भी वे गुणभद्र का ही अनुसरण करते हैं। कृष्णदास की रचना भी इन्हीं का अनुसरण करती है। संघदास, हरिसेन की रचनाएँ वाल्मीकि रामायण या रामोपाख्यान का अनुसरण करती हैं। " [१५]

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि जैन रामकथाओं के दो स्रोत हैं--विमल-सूरि का पउमचरियं और गुणभद्र का उत्तर पुराण। इनके स्रोत याने सम्पूर्ण जैन रामकथाओं के स्रोत माने जा सकेंगे।

डा. कुलकर्णी जैसे कुछ विद्वान विमलसूरि के पउमचरियं को वाल्मीकि रामायणको प्रदान किया गया जैन स्वरूप ही मानते हैं। विमलसूरि की रचना के ही अवतरणों से वे अपनी बात का समर्थन करते हैं, जो उपस्थित की गई शंकाओं के रूप में हैं।

उनका कथन है कि " पउमचरियं में राजा श्रेणिक द्वारा शंकाएँ प्रकट की गई हैं कि " वानरों के द्वारा वीर राक्षसों का संहार किस प्रकार हुआ। यदि

---

१५. डॉ. वी. एम्. कुलकर्णी--ओरिजन अंड डेवलपमेंट ऑफ जैन कथा, पृ १, सन १९६२ ई।

रावण इन्द्र के समान अति बलशाली था तो वानरों एवं तिर्यंचों (पशुओं) द्वारा कैसे पराजित हुआ ? सुवर्ण देह मृग को रामने वन में क्यों मारा ? सुग्रीव, और सुतारा के लिए रामने वाली को क्यों मारा ? स्वर्ग में जाकर वहाँ युद्ध में इन्द्र को पराजित करके जंजीरों से बांधकर उसे कारागृह में रावण कैसे डाल सका ? सभी शास्त्रों का ज्ञात कुम्भकर्ण छः मास कैसे सोया करता था ? बन्दर समुद्र पर सेतु कैसे बाँध सके ? इस प्रकार कुशास्त्रों के उपदेशकों ने सत्यसे विपरीत रूप में पद्मचरित की प्रसिद्धि की है इसलिए मैं पद्मकथा (जैनशास्त्र की) सुनना चाहता हूँ।" [१६]

(१) वाल्मीकि रामायण ही जैन कथा का स्रोत है ?

श्रेणिक राजा ने अपनी शंका प्रकट करने के लिए जो कुछ कहा उसमें वाल्मीकि रामकथा की ओर स्पष्ट संकेत होने के कारण जैन रामकथा का स्रोत वाल्मीकि रामायण ही बतलाया जाता है।

(२) एक तर्क यह दिया जाता है कि अगर महावीर के मुख से जैन राम-कथा कही जाती तो सारी रामकथाएँ उसका ही अनुकरण करती। जब अपने धर्मप्रमुख के कथन से भिन्न एक से अधिक जैन रामकथाओं का अस्तित्त्व है तो वह कथन अविश्वसनीय बन जाता है।

(३) एक अन्य तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि विमलसूरि ने पद्म के स्थान पर कहीं कहीं राम शब्द का प्रयोग किया है। इन्द्र विद्याधरों का राजा होने पर भी उसके लिए 'सुरपति', 'सुराधिप' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। वाल्मीकि रामायण में ये शब्द इन्द्र देव के लिए प्रयुक्त हैं। इसलिए इन शब्दों का प्रयोग वाल्मीकि रामायण जैन रामकथा का स्रोत है इसी मान्यता की पुष्टि होती है।

(४) तीसरी शताब्दी में विमल सूरि ने पउमचरियं रचा। उनके पूर्व वाल्मीकि ने अपने रामायण में वानर और राक्षसों का अतिरंजित और अति-शयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। विमलसूरि ने इस अतिरंजनापूर्ण अविवेकी अति-शयोक्ति से वानरों और राक्षसों को मुक्त किया है। यही इसकी आधुनिकता है।

(५) अंतिम तर्क यह दिया जाता है कि यदि रामकथा में रावण कैकेई तथा वाली के चरित्र आदर्श रूप में प्रस्तुत होकर मूलकथा से विश्वसनीय एवं प्रामाणिक रूप से जुड़े हुए होते तो उस मूल रूप से हटकर वाल्मीकि ने रामचरित्र को अन्य अनुचित रूप में क्यों चित्रित किया होता ?

---

१६. पउमचरियं वि. २।१०५।१९६२ ई।

जैन रामकथा के स्रोतों पर विचार कर लेने के बाद यह बात सामने आती है कि ऊपर जो तर्क उठाये गये हैं उनको जैन रामकथा परंपरा से किस प्रकार समर्थन या विरोध प्राप्त होता है उसे देखने का अब हम प्रयत्न करेंगे ।

कुछ जैन रामकथाओं का स्रोत कुछ अंशों में वाल्मीकि रामायण भी है यह स्पष्ट करना यहाँ पर हम आवश्यक समझते हैं। निम्नांकित रचनाओं पर वाल्मीकि रामकथा के प्रभाव का स्वरूप इस प्रकार है--

(१) वसुदेव हिण्डी –

रामनिर्वासन में मंथरा की घटना, रामविरह से दशरथ की मृत्यु. भरत के द्वारा राम की पादुकाओं को सिंहासनाधिष्ठित करना, शूर्पणखा की घटना, सुवर्ण मृग की घटना, वालीवध, सेतुबन्ध, बिभीषण का रामपक्ष में जाना तथा रामराज्या-रोहण आदि का वर्णन वसुदेवहिण्डी में वाल्मीकि रामकथा के अनुसार है । फिर भी अन्य घटनाएँ ऐसी भी हैं जो वाल्मीकि से भिन्न होकर जैन परंपरा के अनुकूल हैं ।

(२) स्वयंभू का पउमचरिय--

पउमचरिय में काव्यका विभाजन वाल्मीकि के अनुसार पाँच काण्डों में किया गया है । चार काण्डों के नाम वाल्मीकि की रामकथा के अनुसार हैं ।

(३) शीलांकाचार्य का चौपन्न महापुरुष चरित्र :

इस रचना में सुवर्णमृग का प्रसंग, और वालीवध का प्रसंग वाल्मीकि राम-कथा के अनुसार है। रावण को "भुवनतावगो" (भुवन पीडक) दूसिओ, कलूसिय चटितो, विज्जाणव्विओ, खलो आदि विशेषणों का प्रयोग वाल्मीकि के प्रभाव को प्रकट करता है।

(४) गुणभद्र का उत्तर पुराण --

जनक के यज्ञ की रक्षा के प्रसंग में राम को सीता प्रदान की गई। इसके कुछ अंश जैन परम्परा के अनुरूप और अन्य अंश जैन तथा जैनेतर दोनों पर-म्पराओं से भिन्न अभिव्यंजित होते हैं ।

(५) हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र

७ वें पर्व में सीता का अपहरण होने पर किसी जंगली जानवर द्वारा वह मारी गई ऐसा समझकर रामने घर आने पर उसका श्राद्ध किया। यह घटना वाल्मीकि रामायण के प्रभाव को स्पष्ट करती है।

(६) बृहत्कथा कोष

इसमें उपलब्ध रामकथा वाल्मीकि के अनुसार है ।

अबतक हमने वाल्मीकि रामायण के प्रभाव को बतलाकर जैन रामकथा को जो समर्थन प्राप्त हुआ उसे बताया। अब हम जैन परंपरा किस प्रकार अपनी अलग परंपरा स्पष्ट करती है उसे देखने का प्रयास करेंगे ।

जैन मान्यता :

इस प्रकार से वाल्मीकि रामायण का थोडा बहुत प्रभाव परवर्ती जैन राम कथा साहित्य पर होते हुए भी जैन रामकथा की परम्परा का रूप अपनी अलग परंपरा को भी स्पष्ट करता है ।

विमलसूरि के कथनानुसार पउमचरियं का स्रोत महावीर का कथन एवं पूर्वाचार्यों से प्राप्त परंपरा ही है। पूर्वोक्त प्रचलित मान्यता की पुष्टि में दिये गये प्रमाण इस प्रकार हैं --

विमल सूरि के कथन में निम्नलिखित बातें आती हैं --

(१) यह कथा पूर्वों के अनुसार कही गई है।

(२) आचार्य परंपरा से यह (मौखिक रूप में) प्राप्त हुई है।

(३) पहले यह कथा नामावली में ही बद्ध थी पर इसका विस्तार नहीं था।

(४) उसको विमलसूरि ने सुन्दर शब्दों में विस्तार के साथ निबद्ध किया।

पूर्वानुसार कथन :

जैन धर्म के विस्तृत साहित्य में मूल साहित्य अंग साहित्य कहा जाता है। भगवान महावीर के मुख से सूत्र रूप से निर्गत और गणधरों के द्वारा जिसमें अर्थ विस्तार किया गया है वे "अंग" कहे जाते हैं। ये अंग बारह हैं।

बारह अंग [१७] – १. आयारांग, २. सुयगडांग, ३. ठाणांग, ४. समवायांग
५. भगवई, ६. णायाधम्मकहा, ७. उवासगदसा,
८. अंतगडदसा, ९. अनुत्तरोववाई, १०. पण्हवागरणं
११. विवागसुत्त, १२. दिट्ठिवाय।

इन बारह अंगों में दिट्ठिवाय सूत्र के अन्तर्गत १४ पूर्व थे।[१८] उनका विवेचन इस प्रकार है।

---

१७. पं. बेचरदास दोशी–जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ. २७, सन १९६५ ई.

१८. पूर्व–भगवान महावीर की वाणी १२ अंगों में उनके प्रमुख शिष्य गणधरों के द्वारा विस्तारित की गई। १२ अंगों के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के रूप में चौदह विभाग हैं, जो पूर्व के नाम से प्रसिद्ध हैं।

पूर्वनाम	पदसंख्या
१. उत्पाद	एक करोड
२. अग्रायणीय	छियानवे लाख
३. वीर्य प्रवाद	सत्तर लाख
४. अस्तिनास्तिप्रवाद	साठ लाख
५. ज्ञानप्रवाद	एक कम एक करोड
६. सत्यप्रवाद	एक करोड छः लाख
७. आत्मप्रवाद	छब्बीस करोड
८. कर्मप्रवाद	एक करोड अस्सी हजार
९. प्रत्याख्यानप्रवाद	चौरासी लाख
१०. विद्याप्रवाद	एक करोड दस लाख
११. अवन्ध्य	छब्बीस करोड
१२. प्राणायु	एक करोड छप्पन लाख
१३. क्रिया विशाल	नव करोड
१४. लोक बिन्दु सार	साढे बारह करोड

जैन परम्परा के अनुसार इन पूर्वों का ज्ञान भगवान महावीर के बाद क्रमशः लुप्त होता चला गया। पूर्वधर मुनियों के अभाव में वह विस्मृत होता गया। किन्तु मौखिक परम्परा से चली आई हुई नारायण हलधर की कथा का परंपरा से प्राप्त रूप तीसरी इसवी तक अस्तित्व में रहना असंभव नहीं जान पडता। इन्ही को लेकर विमलसूरि पउमचरियं की रचना करने को प्रस्तुत हुए।

जैन रामकथा में विविधता क्यों ?

अब यह प्रश्न उठ खडा होता है कि एक ही स्रोत से निकली हुई यह राम कथा अन्यान्य आचार्यों के द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार से क्यों लिखी गई ? यहाँ पर विमलसूरि के प्रयुक्त दो शब्दों की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

१. नामावलीयबद्धं   २. सुत्तसहियं।

"नामावलीयबद्धं" के द्वारा नारायण तथा बलदेव की नामावलीबद्ध रूपरेखा ही चली आ रही थी। नारायण अर्थात् वासुदेव जो तीन खण्ड के स्वामी होते हैं और बलदेव वासुदेव के बडे भाई एवं उसके सहायक होते हैं। प्रति वासुदेव वासुदेव के विरोधी हैं जिन्हें मारकर वासुदेव तीन खण्ड के स्वामी बनते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल में ऐसे ९ वासुदेव, ९ बलदेव और ९ प्रतिवासुदेव हुए हैं जिनके चरित्र जैन परंपरा के त्रैसठ शलाका पुरुष चरित्र में उपलब्ध हैं। लक्ष्मण वासुदेव हैं और राम बलदेव हैं। कृष्ण के भाई बलराम बलभद्र होने से राम का

प्रयोग भ्रम उत्पन्न कर सकता है इसलिए वैदिक परंपरा में राम यह अभिधान इतना प्रख्यात होने पर भी जैन परंपरा ने राम को "पद्म" के नाम से ग्रहण किया। लक्ष्मण एक ही होने से उसका नाम दोनों परंपराओं में समान है। भगवान महावीर के मुख से राम, लक्ष्मण और रावण इनके चरित्र की जो अति संक्षिप्त रूपरेखा प्राप्त की गई थी वह भी सभी प्रकार से समान है। सीता के विषय में हमें विविधता मिलती है किन्तु राम, लक्ष्मण और रावण के पारस्परिक संबन्धों में कहीं भी कोई अन्तर नहीं आया है। यदि वासुदेव और प्रतिवासुदेव दोनों मित्र बन गये होते, अथवा सहोदर बने होते या वासुदेव का बलदेव के साथ युद्ध होता तो हम कहते कि कथानक में भिन्नता आ गई है। महावीर के कथन में प्रतिवासु-देव की मृत्यु वासुदेव के द्वारा ही होती है। सारी जैन रामकथाओं में लक्ष्मण के द्वारा ही रावण की मृत्यु का वर्णन किया गया हैं इसलिए अन्य विविधता होने पर भी जैन रामकथा महावीरवाणी के अनुसार ही है। परवर्ती जैन रामकथा के रच-यिताओं ने अपने अपने युग में प्राप्त परंपरागत कथाओं की रचना की इसलिए उनपर समवर्ती अन्य प्रभावी लोककथाओं का प्रभाव दिखाई देता है। विमलसूरि ने उस कथा को सुन्दर वचनों मे अभिव्यक्त किया। उसका यह विस्तार विमल की प्रतिभा का ही महत्त्वपूर्ण अंग है।

इस विस्तार में तीन तत्त्वों का समन्वय दिखाई देता है।

१. इतिहासतत्त्व २. लोककथातत्त्व ३. दर्शन एवं संस्कृति तत्त्व

(१) इतिहासतत्त्व में कवि ने अपनी गुरुपरंपरा से प्राप्त कथा को ग्रहण किया।

(२) उसके विस्तार में लोककथा से प्राप्त अंशों को गूँथा।

(३) उसका ग्रथन करते समय अपनी संस्कृति एवं दर्शन के अनुसार उसकी रचना की। यही परंपरा इतिहास के साथ जैन पौराणिक स्रोत के स्वरूप को भी ग्रहण कर लेती है और उसी तरह यह लोककथा के स्रोतों के स्वरूप को स्पष्ट करती है।

वाल्मीकि ने जिस प्रकार महाकाव्य की रचना की उसी प्रकार विमल ने नामावलीबद्ध कथा को प्राकृत भाषा में महाकाव्य के रूप में निबद्ध किया और उसे साहित्यिक एवं काव्य की भाषा का स्वरूप प्रदान कर अपनी काव्यप्रतिभा का चमत्कार दिखाया। भारतीयों के लिए यह सर्व गौरव एवं आदर का विषय है।

विमलसूरि का कथानक, चरित्रचित्रण और लक्ष्य वाल्मीकि रामकथा से इतना भिन्न है कि उसको रामकथा का जैन रूप कहना असंभव ही लगता है। इसलिए वाल्मीकि रामायण पउमचरियं का स्रोत नहीं हो सकता। वाल्मीकि महाकाव्य अपने विस्तार के कारण लोकादर को प्राप्त हुआ उसी तरह विमल ने

अपनी कथा का विस्तार करने की प्रेरणा उनसे ग्रहण की हो, इस दृष्टि से यदि हम कहेंगे कि उनपर वाल्मीकि का ऋण है तो उसे स्वीकार करना ठीक होगा किन्तु यह तो एक ऐसी सामान्यसी प्रक्रिया है जो युगानुरूप सर्वत्र ही होती रहती है।

अंग ग्रन्थों में रामकथा का अभाव क्यों ?

अन्तकृत दशा का अर्थ है संसार एवं जन्ममृत्यु का अंत। जिन आत्माओं ने जन्ममृत्यु के चक्र को समाप्त किया है जैन परम्परा में उनका चरित्र वर्णन अन्तगडदशा में किया गया है।

इस सूत्र में आज आठ वर्ग उपलब्ध हैं उनमें चौथे में वाली आदि दस मुनियों की कथा है और पांचवें वर्ग में पद्मावती आदि दस अंतकृत्स्त्रियों की कथा है। उन कथाओं के ये सारे पात्र कृष्ण के ही कुटुंबीजन थे। इसलिए अंतगडदसा में कृष्ण की कथा आयी है। द्वितीय वर्ग में भी अपहृत देवकीपुत्रों की कथा और भगवान नेमिनाथ का एतद्विषयक स्पष्टीकरण आदि बातों का वर्णन है।[१९]

इस प्रकार कृष्ण से संबंधित चरित्रों के कारण ही कृष्ण कथा यहाँ आई है अन्यथा जैन मान्यता के अनुसार कृष्ण वासुदेव होनेके कारण नरकवास उसके लिए सुनिश्चित है। इसलिए अंतगड दसा में उसकी कथा के लिए स्थान नहीं था, पर उसकी कथा के लिए "णायाधम्म कहा" (ज्ञाताधर्म कथा) में स्थान था। ६ ठे अंग ज्ञाता धर्म कथा में भगवान महावीर के मुख से प्राप्त, धर्मकथाएँ हैं। उनमें आदर्श पुरुषों, नगरों, उद्यानों, चैत्यखण्डों, राजाओं और धर्माचार्यों की इहलौकिक एवं पारलौकिक तथा भोग परित्याग आदि विभिन्न विषयों पर कथाएँ थीं। राम बलराम होने के कारण उनकी कथा भी इसी में अपेक्षित एवं अनिवार्य थी। पर इसका बहुतसा अंश लुप्त हो गया है। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई का कथन है कि जैन आगम साहित्य के वाङ्मयप्रकार में धर्मकथानुयोग का एक अलग विभाग ही मिलता है और "ज्ञाता धर्मकथा" इस विभाग का निर्देशक है। शास्त्र ग्रन्थों के अनुसार कई करोड धर्म कथाएँ उसके अन्तर्गत थीं। पर समय के प्रभाव से वे लुप्त हो गई। अब केवल १९ अध्याय ही उपलब्ध हैं और वे भी मूलरूप में उपलब्ध नहीं है।[२०]

श्री देसाई के इस कथन से इस बात की पुष्टि ही होती है कि ज्ञाता धर्म कथा की असंख्य कथाएँ लुप्त हो गई जिनमें रामकथा का भी समावेश रहा हो।

इसके लिए एक अन्य प्रमाण दिया जाता है। महावीर निर्वाण के बाद

---

१९. पं, बेचरदास दोशी–जैन साहित्यका बृहद् इतिहास पृ. २३७, १९६५ ई.

२०. मोहनलाल दलीचंद देसाई–जैन साहित्यनो इतिहास, पृ. २४, १९३३।

दूसरी शताब्दी में बारह वर्षीय अकाल पडा। उस समय पाटलीपुत्र में श्रमणसंघ इकठ्ठा हुआ और जिसको जितना ज्ञात था उतना श्रुत संचय करके अंग ग्रन्थों की मौखिक रचना की गयी। इसके बाद २९१ वे वर्ष में फिर दूसरा अकाल पडा। जैन संघ ने वज्रस्वामी और स्कंदिलाचार्य के नेतृत्व में श्रमणसंघ को सम्मिलित करके उसी प्रकार श्रुतज्ञान का संचय किया गया। ऐसा ही एक प्रयत्न महावीर निर्वाण के ९८० वर्षबाद वल्लभीपुरमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की प्रमुखता में हुआ। इस प्रसंग पर देवर्धिगणिने जितना ज्ञान मौखिक रूप में वहां उपलब्ध हुआ था उसे ग्रन्थ में लिखित रूप प्रदान किया।[२१] इसी बात को स्पष्ट करते हुए पं. बेचरदास दोशीने लिखा है --

" बीच में अनेक अकाल पडे इससे धर्मशास्त्रों को कंठाग्र रखना विशेष कठिन प्रतीत होने लगा। अतएव कुछ धर्मश्रुत अंश नष्ट हुआ अथवा उसके ज्ञाता न रहे। जो धर्म श्रुत को भक्तिभाव से सुरक्षित रखनेवाले थे उन्होंने उसे ग्रन्थ का स्वरूप देकर सुरक्षित रखा। भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष बाद देवर्धिगणिक्षमाश्रमण प्रमुख स्थविरों ने श्रुत को जब पुस्तकबद्ध कर व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया तब वह अंशतः लुप्त हो चुका था।" [२२]

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि णायाधधम्मकहा की असंख्य कथाएँ समय के प्रवाह में लुप्त हो गई हो और रामकथा उनमें से एक हो जिससे अंगों में आज उसका अस्तित्व प्रायः नहीं प्रतीत होता है।

पउमचरियं में उपलब्ध राम, सुरपति, और सुराधिप ये शब्द वाल्मीकि के प्रभाव को या उनकी रामकथा के प्रभाव को कतइ नहीं प्रकट करते। इस विषय में हमारा अभिमत है कि जो लोग इस प्रकार की बात करते हैं वे कवि की सामान्य प्रवृत्ति की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते क्योंकि जिनका शब्दभंडार समृद्ध होता है ऐसे कवि अपनी सहज प्रवृत्ति से एकार्थवाची अनेक शब्दों का प्रयोग करते हैं। एक ही शब्द का बारबार प्रयोग न करने की प्राचीन कवियों की प्रवृत्ति हमें विमलसूरि में भी दिखाई देती है। इसी कारण से विमलसूरि ने इन्द्र-वाचक प्रचलित प्राकृत या संस्कृत शब्दों का इन्द्र विद्याधर के लिए प्रयोग किया है।

यहाँ इस सन्दर्भ में यह भी कहना अनुचित नहीं होगा कि इन्द्रवाचक शब्द विमलसूरि को वाल्मीकि से नहीं प्राप्त हुए हैं बल्कि वे जैन अंगों में ही उन्हें उपलब्ध हुए हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म के अवसर पर जब इन्द्र उपस्थित होकर उनका जन्मोत्सव करता है तब इन्द्रवाचक शब्द जैसे शक्र, सुरपति, सुराधिप आदि का प्रयोग होता है।

---

२१. मोहनलाल द. देसाई–जैन साहित्यनो इतिहास–प्रस्तावना १९३३ ई।

२२. पं बेचरदास दोशी–जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भा. १ पृ. ९, सन १९६६ ई.।

" राम " शब्द का प्रयोग या राघव शब्द का प्रयोग भी इसी प्रकार से उचित समझा जायगा। एक अन्य बात महत्त्वपूर्ण यह है कि वैदिक परम्परा राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार मानती है। उनके अनुसार कृष्ण के समान ही राम का भी महत्त्व है । परन्तु जैन परम्परा कृष्ण की योग्यता लक्ष्मण को ही देती है न कि राम को। यहाँ पर कृष्ण वासुदेव है और बलराम बलभद्र है तथा जरासंध प्रतिवासुदेव इसी प्रकार लक्ष्मण वासुदेव है, राम बलभद्र है और रावण प्रतिवासुदेव। कृष्ण के सन्दर्भ में आया हुआ बलभद्र बलराम होने से और शास्त्र में उसे राम की संज्ञा भी रहने से " राम " को पद्म के नाम से अभिहित किया गया है। बलराम के कारण " राम " शब्द बलभद्र वाचक हुआ और राम बलभद्र होने से उसी शब्द का प्रयोग बलभद्र की पुनरावृत्ति न होने की दृष्टि से किया गया है।

अतिरंजित, अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं को असंगत ठहराना आधुनिकता है। वानर, राक्षस, कुम्भकर्ण आदि के विषय में वैदिक रामकथा की अतिरंजित या अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं को जैन रामकथा असंगत मानती है। इसलिए वैदिक रामकथा को प्राचीन कहना समुचित सिद्ध नहीं होता। बुद्धिवादी एवं तर्क संगत बातों का अस्तित्व हर युग में होता है। कभी वह दबा हुआ होता है तो कभी प्रकट इसलिए उसको आधुनिक नहीं कहा जाता।

एक और बात यह है कि सत्य वास्तव में प्रचलित रूप में रहता है। कालान्तर से वह सत्य किंवदन्तियों और अतिरंजितता तथा अतिशयोक्ति की तह में दब जाता है और अतर्क्य एवं चमत्कृतिजन्य बातें चारों ओर फैल जाती हैं। इसी क्रम से फैली हुई वैदिक रामकथा की अतिरंजित बातों को प्राचीन परम्परा की सत्य बातें सिद्ध करना और उस पर आधुनिकता की मुहर लगाना उचित नहीं है।

कैकेई, रावण, वाली आदि का चरित्र :

यह तर्क कुछ आश्चर्यजनकसा प्रतीत होता है। कवि अपनी इच्छा के अनुसारही पात्रों की सृष्टि करता है। वाल्मीकि ने कैकेई, रावण या वाली को खल के रूप में चित्रित किया इसमें मूल कथा के विश्वसनीय पात्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने तो रामविरोधी सारे पात्रों को खल के रूप में चित्रित किया है। भक्ति-काव्य में यह अनिवार्य है कि राम भगवान का अवतार है इसे बताया जाय। दुष्टों के दमन के लिए ही तो वे अवतार लेते हैं जिनका दमन राम को करना है वे दुष्ट हैं अत: उनके सहायक को भी दुष्ट कहना बिलकुल स्वाभाविक है।

जैन रामकथा में राम न तो अवतार हैं, न भगवान। वे तो एक सात्त्विक भाव से युक्त क्षत्रिय राजा हैं। बुद्धि और बल तथा शक्तिशाली बलदेव एवं श्रेष्ठ हैं। इसलिए उनका चरित्र तर्क एवं बुद्धिसंगत होना अनिवार्य है।

स्वयम्भू की रामकथा का स्रोत रविषेण और विमलसूरि की जैन रामकथा ही है अतः उसका अलग विवेचन यहाँ पर नहीं किया गया है।

तीसरी रचना गुणभद्र का उत्तर पुराण है जिसकी विशेषताओं को देखते हुए उनके स्रोतों का संक्षिप्त विवेचन यहां पर किया जा रहा है।

गुणभद्र का उत्तर पुराण :

वास्तव में गुणभद्र की रचना विमलसूरि की रचना से भिन्न होने पर जैन परम्परा की कुछ बातें उसी के अनुसार उसमें भी आ गई हैं। गुणभद्र की कथा उनके कथनानुसार अपनी गुरु परम्परा से ही प्राप्त है। उन्होंने अपने गुरु का नाम कवि परमेश्वर बताया है जिनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

गुणभद्र ने सीता को रावण की पुत्री और मन्दोदरी से उत्पन्न बताया है जो संघदासगणि के वसुदेव हिण्डी ग्रंथानुसार है। उसने दशरथ को वाराणसी का राजा बताया है और रामलक्ष्मण के पराक्रम से निश्चित हो जाने पर ही वह अयोध्या में आया। यहां भी वसुदेव हिण्डी का प्रभाव प्रतीत होता है। परन्तु गुणभद्र की रामकथा की निम्नलिखित घटनाएँ उन्हें वाल्मीकि से प्रभावित सिद्ध करती हैं।

वाल्मीकि के वेदवती के अनुसार ही मणिमति रावण को शाप देती है। उसने रावण के पारिवारिक नामों में कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और बिभीषण को गिनाया है जो वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हैं। सुवर्ण मृग की घटना तथा वालीवध भी वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। हनुमान सीता की खोज में जाते समय राम से अंगूठी ले जाते हैं। लंका में प्रवेश करते समय वे मक्खी का रूप धारण करते हैं। सीता के सामने आते समय वे वानर का रूप धारण करते हैं। लंका दहन तथा रावण के बागों का ध्वंस कर वे लौटते हैं। रावण विद्या की साधना करते हैं तो हनुमान उसमें बाधाएँ उपस्थित करते हैं।

इन सारी घटनाओं से वाल्मीकि रामायण का प्रभाव प्रतीत होता है और स्रोत के रूप में उसने वाल्मीकि रामायण को भी ग्रहण किया है।

(४) चौथा त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व ७ वाँ, आचार्य हेमचन्द्र सूरि की रचना है यह रचना पउमचरियं से सम्पूर्णतया प्रभावित है फिर भी इसमें कवि ने अपनी मौलिकता प्रदान की है।

सीता के गर्भवती होने पर राम की अन्य पत्नियों के मन में ईर्ष्या पैदा हुई और ईर्ष्यालु रामपत्नियों ने रावण के पैरों का चित्र बनाने के लिए सीता से कहा। लाचार होकर उनके आग्रहवश सीता ने रावण के पैर चित्रित किये। तब उस चित्र को बता कर राम की पत्नीयों ने राम के मनमें शंका पैदा की। लोगों

में भी वह बात फैल गई । इस प्रकार रामपत्नियों के शंका निर्माण करने का प्रबल कारण इस घटना से हेमचन्द्र ने प्रस्तुत किया है ।

पउमचरियं पर आधारित यह रचना इतिहासतत्त्व, लोककथातत्त्व तथा दर्शन एवं संस्कृति तत्त्व इन तीनों तत्त्वों के समन्वय से युक्त है । चारों जैन प्रातिनिधिक रामकथा रचनाओं के स्रोतों का यह विवेचन हमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत करता है । –

महत्त्वपूर्ण तथ्य :

(१) वाल्मीकि रामकथा सब से प्रथम आर्य रामकथा है । राम काल अति प्राचीन होने से केवल वाल्मीकि की महिमा बढाने के लिए आज की रामकथा को रूपकात्मक ढंग से बताया जाता है कि यह वाल्मीकि ने रची है । वास्तव में उसका रचनाकाल इसवीपूर्व तीसरी शताब्दी है ।

(२) वाल्मीकि रामायण आर्य रामायण है और आर्यों के यहां आने के पूर्व यहाँ पर रामकथा के बीज विद्यमान थे । रामकथा का अति संक्षिप्त रूप भी उपस्थित रहा होगा जिसे वाल्मीकि ने अपनी प्रतिभा के बल पर विकसित किया होगा ।

(३) आजकी जैनेतर रामकथा वाल्मीकि कथा के कुछ अंशों के साथ समन्वित स्वतंत्र और दो या तीन अन्य कथाओं का संमिश्रण है । इन सारी रामकथाओं का पारम्परिक, ऐतिहासिक या अन्य तरह से कोई संबंध नहीं है ।

(४) रामकथा के उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय रूप में जो अन्तर है वही रामकथा की विविधता को सिद्ध करने का पर्याप्त प्रमाण है ।

(५) रामकथा का विस्तार और वैविध्य रामकथा को विकृत नहीं करता प्रत्युत उसका विकास एवं प्रसार करता है ।

(६) जैन रामकथा वाल्मीकि की रामकथा का परावर्तित रूप नहीं है किन्तु वह प्राचीन परम्परा से प्राप्त किसी सूत्र का विकसित रूप है ।

(७) शायद आज की वाल्मीकि रामकथा और जैन रामकथा के स्रोतों के रूप में कोई अति धुँधला सूत्र विद्यमान रहा होगा जिसे दोनों कवियों ने अपनी अपनी प्रतिभा, परम्परा और युगीन लोककथाओंके अनुसार पल्लवित किया होगा ।

(८) पूर्वों में से प्राप्त कथा को विमलसूरि ने काव्य की भाषा में बिस्तारित किया । आज पूर्वों का अधिकांश अंश विलुप्त हो जाने से उसका प्रमाण हम नहीं दे सकते फिर भी इससे यह नहीं माना जा सकता कि अंग साहित्य या

पूर्वों में रामकथा का अभाव होने से प्राचीन काल में जैन परम्परा में रामकथा का पूर्णतः अभाव रहा होगा ।

(९) कृष्ण का नाम अंग साहित्य में अंतगडदसा में उल्लेखित है वह कृष्ण के वैदिक साहित्य में प्राप्त महत्त्व के कारण नहीं है अपितु अंतगड दसा के विषय के अनुसार कृष्ण के कौटुंबिक जनों का वहाँ वर्णन आने के कारण है। राम का चरित्र वहाँ अप्रस्तुत होने से नहीं आया है ।

(१०) परवर्ती जैन रामकथाओं में जैन परंपरा के साथ वाल्मीकि रामकथा का भी अंश ग्रहण किया गया है इस दृष्टि से जैन रामकथा वाल्मीकि कीं अवश्य ऋणी है ।

(११) रामकथा के स्रोतों का स्वरूप स्पष्ट होने पर हम कह सकते हैं कि जैन रामकथा में वाल्मीकि रामकथा का जिस प्रकार प्रभाव दिखाई देता है उसके अतिरिक्त उस कथा की अपनी निजी जैन विशेषताएँ भी हैं जो उसकी अपनी परंपरा के स्रोतों से मिला देती है ।

डा. वी. एम. कुलकर्णीजो के इस कथन को हम अपनी सहमति प्रदान करते हैं कि (पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण) इन दो महाकाव्यों में खास समानता बहुत ही कम है और विमलसूरि अपने पूर्व कवियों का कथा और शैली में अंधानुकरण करनेवाले नहीं हैं ।[२३]

(१२) पउमचरियं की कथा वाल्मीकि से भिन्न है इसलिए उसका स्रोत भी भिन्न हो सकता है । पउमचरिउ की रचना पउमचरियं के आधार पर की गई है जिससे उसका स्रोत पउमचरियं है । हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र पर शीलांकाचार्य के चौपन्न महापुरुष चरित्र का प्रभाव दीख पडता है पर वास्तव में वह पउमचरियं के ही आधार पर रचा गया है। संस्कृत भाषा में उसकी रचना हुई है यह उसपर आदि रामायण का ही प्रभाव है। गुणभद्र का उत्तर पुराण केवल वाल्मीकि रामकथा पर आधारित नहीं है। वह पउमचरियं से भी भिन्न कथावस्तु प्रस्तुत करता है फिर भी उसकी कथा के स्रोत के रूप में जैनेतर रामकथा को भी हम स्रोत मान सकते हैं। सुवर्णमृग की घटना तथा यज्ञरक्षा का उल्लेख इसके प्रमाण हैं ।

इतना विवेचन कर लेने के बाद अगले अध्याय में हम जैन और जैनेतर रामकथा की कथावस्तु का अध्ययन करने का प्रयत्न करेंगे ।

---

23. It is however clear that such a striking resemblance between the two epics are very rare and that Vimal is not a slavish imitator of his predessors in the point of fiction and style.
Dr. V. M. Kulkarni—Story of Ram in Jain Literature, 1962
Manuscript page 218

अध्याय ३

जैन तथा अन्य रामकथाएँ

वाल्मीकि की रामकथा

राजा दशरथ की मनोव्यथा और पुत्रकामेष्टि यज्ञ :

अयोध्या नगरी में दशरथ राजा शासन करते थे। उनके तीन रानियाँ थीं कौशल्या, सुमित्रा और कैकेई। परन्तु पुत्र के अभाव में वे अति दुःखी रहा करते थे। अतः पुत्रप्राप्ति के लिए उन्होंने पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने का शुभ संकल्प किया। ऋषि ऋष्यश्रृंग के नेतृत्व में पुत्रकामेष्टि यज्ञ संपन्न हुआ। अनुष्ठान से तुष्ट होकर यज्ञ पुरुष ने राजा को पायस दिया। उस पायस के भक्षण से रानियाँ गर्भवती हुईं और कौशल्या से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण और कैकेई से भरत और शत्रुघ्न पैदा हुए।

इस अवसर पर देव, गन्धर्व, सिद्ध गण भी एकत्रित हुए थे। सभी ने मिलकर वहाँ रावण के नाश का दृढ संकल्प किया।

विश्वामित्र की माँग :

कुछ समय के पश्चात् विश्वामित्र ऋषि राजा दशरथ के दरबार में पधारे और उन्होंने यज्ञरक्षार्थ राम, लक्ष्मण की मांग की। विश्वामित्र के शाप के डर के कारण राजा ने अनिच्छा से राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ यज्ञरक्षार्थ भेजा। उन्हें लेकर विश्वामित्र सरयू तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने रामलक्ष्मण को बला और अतिबला ये दो विद्याएँ दीं। रास्ते में ताटका राक्षसी मिली। गुरु की आज्ञा से उसका वध किया। संतुष्ट होकर ऋषिने राम को विविध शस्त्रास्त्र दिये। कुछ समय के बाद वे सिद्धाश्रम पहुँचे और यज्ञ की रक्षा के लिए उन्होंने सुबाहु आदि राक्षसों का संहार किया।

सीता स्वयंवर :

इसी समय मिथिलानगरी में राजा जनक ने अपनी कन्या सीता का स्वयंवर घोषित किया। विश्वामित्र रामलक्ष्मण के साथ वहाँ पहुंचे। रामने धनुर्भंग कर

कर सीता के साथ विवाह किया। दशरथ के चारों पुत्रों के विवाह वहां संपन्न हुए। विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण वहाँ से उत्तर पर्वत की ओर चले। रास्ते में धनुर्भंग की वार्ता से क्रुद्ध बने परशुराम से भेंट हुई। राम से प्रभावित बन परशुराम प्रसन्न हुए और उन्होंने राम को वैष्णव धनुष्य प्रदान किया। राम लक्ष्मण अयोध्या लौटे।

राजा दशरथ का निश्चय :

दशरथ पुत्र भरत और शत्रुघ्न अपने मामा अश्वपति नरेश के पास गये। इसी बीच राजा दशरथ ने राम के राज्याभिषेक की अभिलाषा प्रकट की। मन्त्रीगण, सामन्त और वाशिष्टादि की सम्मति पाने पर रामराज्याभिषेक की घोषणा की गई। इस घोषणा को सुनकर अयोध्यानिवासी हर्षित हुए।

कैकेई का कोप :

अयोध्यानगरी की सजावट अनोखी थी। कैकेई की दासी मन्थरा ने प्रासाद की छत से इस सजावट को देखा। राम के राज्याभिषेक की वार्ता मिलते ही वह, आगबबूला हो गई। प्रमुदित कैकेई को मन्थरा ने अपने कपटजाल में फँसा लिया अब कैकेई ने मन्थरासे मार्गदर्शन लिया और वह क्रोधागार में चली गई। राजा दशरथ कैकेई के महल में आया। कैकेई की अनुपस्थिति देख वह क्रोधागार में गया। कैकेई के क्रोध को शान्त करने के तथा उसे समझाने के उसके सारे प्रयास विफल रहे। अन्त में राजा ने कैकेई के पूर्वदत्त दो वरदानों का देना स्वीकार कर लिया। कैकेई का क्रोध शान्त हुआ। उसने दोनों वरदानों की उसी समय मांग की। उसने प्रथम वरदान से भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा और दूसरे से राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास। यह सुनकर राजा शोकाकुल हो गया पर कैकेई ने उसे प्रतिज्ञा पालन का महत्त्व समझाया।

राम की पितृभक्ति :

कैकेई को राजा दशरथ द्वारा दिये गये वरदानों की सूचना पाकर राम दशरथ के पास आये। उन्होंने शोकसन्तप्त राजा को ढाढस बँधाया और वनगमन को प्रस्तुत होने के लिए वे माता के पास गये। राम के वनगमन की बात सुनते ही कौशल्या मूर्च्छित हो गई। राम ने माताओं को समझाया पर यह जानकर लक्ष्मण क्रोधित हुए। दशरथ, कैकेई और भरत की उन्होंने घोर निन्दा की पर राम ने उन्हें शान्त किया। राम, लक्ष्मण और सीता वनगमन को उद्यत हुए। उन्होंने राजवस्त्र तजकर वल्कल धारण किये।

अयोध्या की प्रजा का प्रेम :

राम को वनगमन करते देख अयोध्या की प्रजा व्याकुल होकर राम के पीछे पीछे चली। प्रथम रात्रि तमसा नदी के तीर पर सबने विश्राम किया।

रामने मंत्री सुमंत से रथ को शीघ्र लौटाने कहा। अयोध्यावासी दुःखी होकर अयोध्या लौट गये।

सुमन्त को लौटा हुआ देख दशरथ आदि का दुःख बहुत ही तीव्र हुआ। रोष में कौशल्या ने दशरथ राजा को कटूक्तियाँ सुनाईं। राम के विरह में मग्न राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिया। इससे सारा राजनिवास शोकमग्न हो गया।

भरत का आगमन :

राजा दशरथ की अंत्येष्टि क्रिया के लिए भरत को बुलाया गया। मंत्रियों ने उनसे अयोध्या का राजपद संभालने की प्रार्थना की। भरत ने उसका विरोध किया और राम को वापस अयोध्या लाने के लिए वे वन में गये। सैन्य के साथ चित्रकूट पहुँचे। लक्ष्मण ने सेना को आते हुए देखा। भरत की दुष्टता की आशंका से वह उनसे लडने तैयार हुआ, पर रामने उन्हें शान्त किया। पिता की मृत्यु की वार्ता भरत ने साश्रु नयनों से रामसे कही और रामको अयोध्या लौटने का आग्रह किया। राम भरत को समझाने में सफल हुए और भरत राम की पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटे।

राम कुछ समय तक अत्रि ऋषि के आश्रम में रहे जहां अत्रिपत्नी देवी अनुसूया ने सीता को सतीधर्म सिखाया।

राम का दण्डकारण्य में प्रवेश :

ऋषिमुनियों का दर्शन करके राम आगे बढे। उन्होंने दण्डकारण्य में प्रवेश किया। ऋषियों ने राम का हार्दिक स्वागत किया। रास्ते में विराध ने सीता का अपहरण किया पर रामने उसे परास्त किया और राक्षसों का संहार करने की प्रतिज्ञा की। दस वर्ष तक राम लक्ष्मण और सीता पंपा सरोवर के तट पर रहे। अगस्त्य ऋषि ने श्री राम का स्वागत कर उन्हें वैष्णवास्त्र प्रदान किया।

पंचवटी में श्री राम :

पंपा सरोवर से आगे बढकर राम पंचवटी में पहुँचे। वहाँ वे जटायु से मिले। राम, लक्ष्मण और सीता पंचवटी में कुटी बनाकर रहने लगे।

एक दिन पंचवटी में रावण की बहन शूर्पणखा आई। राम, लक्ष्मण का रूप देखकर वह उनपर आसक्त हुई। उसे निशाचरी जानकर राम के संकेत से उसके नाक–कान काटकर लक्ष्मण ने उसे विरूप बनाया।

राक्षसों से वैर :

शूर्पणखा अपने पति खर के पास गई। उसकी उस दशा से क्रुद्ध खर ने राम

को मारने के लिए राक्षसों को भेजा । रामने उन सब का संहार किया । यह वार्ता पाते ही खर ने १४००० राक्षसों की सेना के साथ राम पर चढाई की । रामने खर, त्रिशिरा आदि राक्षसों को मृत्यु के घाट उतारा जिससे अन्य राक्षस सैनिक भाग खडे हुए । तब रोती चिल्लाती शूर्पणखा रावण के पास गई । उसने रावण को भर्त्सना की और साथ ही सीता के सौन्दर्य का बढाचढा कर वर्णन किया । रावण उत्तेजित हुआ । उसने मारीच को कांचनमृग बन राम के आश्रम के चारों ओर विचरने के लिए कहा । सुवर्णमृग देखकर सीता की इच्छा के कारण रामने उसका पीछा किया । लक्ष्मण सीता के साथ रहा । राम का बाण लगते ही मारीच चिल्लाया " हा । लक्ष्मण " राम को संकटापन्न जानकर सीता ने लक्ष्मण को उनकी सहायता के लिए जाने को विवश कर दिया । लक्ष्मण ने उसकी बात नहीं मानी । तब सीता ने लक्ष्मण को कटु वचनों से सबोधित किया । सीता के उन कटु व्यंग वाग्बाणों से लक्ष्मण कुटी छोडकर राम की सहायता के लिए वन में चले गये । इसी वक्त रावण ने परिव्राजक के भेंस में आकर सीता का हरण कर लिया । सीता आक्रन्दन करने लगी । उसका वह आक्रन्दन सुनकर जटायु रावण से उलझा, पर रावण ने उसे घायल किया । तब अपहृत सीता ने अपने आभूषण रास्ते में बिखेर दिये जो वानरों के हाथ लगे ।

सीता की खोज

मारीच को मार कर राम लक्ष्मण लौटे तो कुटिया शून्य दिखाई दी । गोदावरी के तटपर वे सीता की खोज करने लगे । जटायु से उन्हें रावण का वृत्तान्त मालूम हुआ । रास्ते में कबन्ध को विद्ध किया । उसने राम को सुग्रीव की ओर जाने की सलाह दे, दिव्य शरीर धारण कर स्वर्गगमन किया ।

सुग्रीव से मैत्री

पंपासरोवर के तीर पर राम विरह से व्याकुल हुए । तब उसकी सुग्रीव से भेट हुई । हनुमान ने उस मुलाकात का आयोजन किया था । वाली के भय से सुग्रीव चिन्ताक्रान्त था । उसने राम को सीता की खोज करने का आश्वासन दिया और रामने उसे वालीवध का वचन दिया । सुग्रीव ने वाली को युद्ध के लिए ललकारा । वाली और सुग्रीव का रूप समान होने से राम असंमजस में पड गये । दूसरी बार सुग्रीव ने वाली को आव्हान किया उस वक्त सुग्रीव के गले में माला थी । एक वृक्ष की ओट से रामने बाण मारा और वाली घायल हुआ । उसने इस कपट के लिए राम की कटु आलोचना की । वाली की मृत्यु हुई । रामने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया और वालीपुत्र अंगद को युवराजपद दिया । राज्याभिषेक के पश्चात् सुग्रीव विलास में मग्न होकर राम कार्य भूल गया । तब क्रुद्ध होकर

लक्ष्मण ने उसे फटकारा। सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए वानरों को चारों और भेजा। दक्षिण दिशा में आये हुए वानर हताश होकर स्वयंप्रभा के आश्रम के पास मरणान्तक ठहरने का संकल्प कर बैठे। वहाँ उनकी संपाति से भेंट हुई। उसने अपनी दूरगामिनी दृष्टिद्वारा सीता का पता बतलाया। तब हनुमान ने लंका की ओर प्रस्थान किया।

हनुमान का लंकागमन :

हनुमान सीता की खोज में मैनाक पर्वत पर आये। वहाँ रहनेवाली सागर निवासिनी सिंहिका का वध कर वे आगे बढे। समुद्रपर से उड्डाण करके वे समुद्र-तटपर पहुंचे और मध्यरात्रि के समय लंका में प्रविष्ट हुए। लंका की अधिष्ठात्री ने उन्हें रोका। उसपर विजय प्राप्त कर हनुमान लंकानगरी की परिक्रमा करने लगे। सीता की खोज में वे अतिव्यस्त रहे। अन्त में अशोक वाटिका में एक प्रासाद में उन्हें शोकाकुल सीता के दर्शन हुए। रावण ने सीता को बार बार समझाने के निष्फल प्रयास किये। अन्त में क्रुद्ध होकर कुरूप राक्षसिनियों को उसके पास नियुक्त कर वह चला गया।

हनुमान की सीता से भेंट :

रावण ने सीता पर राक्षसिनियों का पहरा रखा था। उनमें त्रिजिटा नाम की राक्षसिनी थी जो सीता के प्रति बडी सहानुभूति रखती थी। एक दिन उसने सीता को अपना स्वप्न सुनाया और कहा कि इस स्वप्न से रावण के अध:पतन की सूचना मिलती है।

हनुमान अशोक वन में आया। सीता को अकेली देख उसने राम की मुद्रिका प्रदान की। मुद्रिका देख सीता राम की याद में रो पडी किन्तु राम की मुद्रिका से उसे आश्वासन भी प्राप्त हुवा। राम की क्षेम कुशल पूछी और अपनी क्षेम कुशल की सूचना के लिए अपनी चूडामणि हनुमान को दी।

लंका से विदा होते समय हनुमान ने लंका में उत्पात मचाया जिससे रावण ने हनुमान को पकडने किंकर, प्रहस्तपुत्र, जम्बुमाली, दुर्धर, विरुपाक्ष, यूपाक्ष, प्रघस, भासकर्ण, तथा अक्षयकुमार आदि को भेजा। हनुमान ने उन सब को मौत के घाट उतारा। यह वार्ता सुनते ही रावण पुत्र इन्द्रजित आया उसने ब्रह्मास्त्र से हनुमान को बान्धकर रावण के सामने प्रस्तुत किया। रावण उसको मारना ही चाहता था पर बिभीषण के आग्रह से केवल पूंछ जलाने में सम्मत हुवा। हनुमान ने लंका जलायी। सीता तो नहीं जली इस आशंका से हनुमान एक वार उसे सकुशल देखकर प्रमुदित मन से राम के पास लोटे। मधुवन में पहुँचते ही वानर हर्षातिरेक से नाचने लगे। वानरों के साथ हनुमान राम के पास गये। राम के

आगे चूडामणि रखी और सारा वृत्तान्त कथन किया। शोकाकुल राम सीता के समाचार बडी उत्सुकता के साथ सुनने लगे।

राम की कृतज्ञता :

हनुमान ने सीता की खोज की इससे राम बार बार उनकी प्रशंसा करने लगे। साथ ही साथ उन्होंने कृतज्ञभाव भी प्रकट किये।

राम सीता की मुक्तता के उपाय सोचने लगे। समुद्रोल्लंघन सबसे बडी बाधा थी। फिर भी विजयमुहूर्त में वे सेना के साथ निकले और महेन्द्राचल पर पहुंचे। समुद्र की उत्ताल तरंगें आकाश से बातें करना चाहती थीं। अब क्या करें ? हतोत्साह होकर सीता की विरहाग्नि में वे जलने लगे। राम समुद्रतटपर आसन पर आसीन हो बैठे। तीन दिन बीत गये। इधर रावण को हनुमान की करतूत की आशंका हुई। उन्होंने सभा का आयोजन कर मंत्रियों से मंत्रणा की। सब रावण की हां में हां मिलाते थे। पर विभीषण ने युद्ध का विरोध किया। उसने सीता को सौंपकर राम से मित्रता करने के लिए रावण से आग्रहपूर्वक कहा। विभीषण का वही आग्रह बार बार सुनकर रावण आपे से बाहर हुआ और उसने विभीषण को अपमानित किया। विभीषण अपने चार साथियों के साथ रामचन्द्रजी से जा कर मिले। (राम ने उसका राज्याभिषेक भी किया।)

तीन दिन बीतने पर भी समुद्र ने मार्ग नहीं दिया। तब राम क्रुद्ध हो गये। उन्होंने समुद्र पर शरसंधान किया। भयभीत सागर ने राम को मार्ग का निर्देशन किया। नलादि ने सेतु बनाया और सेना दक्षिण तटपर पहुँच गयी।

युद्ध :

राम और रावण को सेनाएँ एक दूसरे के सामने खडी हो गई। अब रणभेरियाँ बजने लगीं। रावण के पितामह माल्यवन्त और माता ने उसे रण से परावृत्त करने का प्रयास किया पर वह निष्फल रहा। रावण राक्षसवीरों की मृत्यु से क्षुब्ध हुआ। तब वह खुद लडने आगे बढा पर रामसे पराजित होने से वह लज्जित होकर वापस लौटा। तब रावण के सारे पुत्र समर में आये। पर वे सब के सब मारे गये। कुम्भकर्ण भी मारा गया। मेघनाद ने युद्ध क्षेत्र की ओर प्रयाण किया और ब्रह्मास्त्र से लक्ष्मण को मूर्च्छित किया किया। हनुमान द्रोणागिरी को उखाडकर ले आए। लक्ष्मण को औषधि दी गई। मेघनाद यज्ञ करने लगा। विभीषण ने उसमें विघ्न लाकर उसे असफल किया।

अंत में रावण समरागण में आया। वह लडते लडते मूर्च्छित हो गया। रामने घोर युद्ध के बाद उसका वध किया।

सीता का अग्निदिव्य :

राम ने विभीषण को राज्यपद दिया और सीता को लाने का आदेश दिया । पर सीता के पावित्र्य के बारेमें संदेह प्रकट किया। सीता ने अग्नि में प्रवेश कर अपनी पवित्रता का प्रमाण दिया । तब राम सुसज्जित पुष्पक विमान में बैठकर सीता के साथ अयोध्या पहुँचे। अयोध्या की जनता खुशी से फूली न समाई। १००० वर्ष तक राम ने राज्यशासन किया। राज्याभिषेक के बाद रामचन्द्र ने ऋषियों को यज्ञ में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया ।

एक दिन गुप्तचरों ने सीता के पावित्र्य के विषय में विपरीत लोकमत की सूचना रामचन्द्र को दी। रामचन्द्र ने लोकापवाद के कारण गर्भवती सीता को लक्ष्मण के साथ वन में भेज दिया । सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोडा गया। वहाँ उसने बालकयुगल को जन्म दिया ।

एक बार शत्रुघ्न उस आश्रम परसे जा रहे थे। वे वाल्मीकि के दर्शनार्थ आश्रम में आये । वहाँ सीता के पुत्रों से उसने राम की कथा सुनी ।

एक दिन वाल्मीकि रामपुत्र लव-कुश के साथ राम के यज्ञ में पधारे । पुत्रों की पहचान पाने पर रामने उन्हें सीता को भी साथ लाने की विनंती की । दूसरे दिन सीता वाल्मीकि के साथ वहाँ आयी । वाल्मीकि ने सीता के निष्कलंक होने का समर्थन किया। पर सीता राम के साथ न रही। वह पृथ्वीमाता के उदर में अन्तर्हित हो गई। राम अति शोकाकुल हो गये ।

लक्ष्मण ने शरयू में योगाभ्यास से शरीर छोडा तब राम शरयू तट पर पहुँचे और ब्रह्माद्वारा लाये गये करोडों विमानों में बैठकर वानरों के साथ वैकुण्ठ चले गये ।

वाल्मीकि की रामकथा की तरह तुलसी की रामकथा नाना पुराण, निगम' आगम और अपने गुरु से सुनी हुई कथासूत्रों से गूंथी गयी है। अतः उसका विस्तृत वर्णन न देकर हम जैन रामकथा के कथावस्तु की जानकारी करने का प्रयत्न करेंगे ।

जैन रामकथा

यह रामकथा भगवान महावीर ने अपने शिष्य गौतम इन्द्रभूति को और इसी गौतम ने श्रेणिक राजा को सुनाई जो इस प्रकार है–

एक दिन राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर की पर्षदा में उपस्थित होकर पूछा, "हे भगवन् ! जैनेतर शास्त्रों में रामकथा भिन्न रूप से बतलाई जाती है

जसमे मेरे मन में शंकाएँ उठती हैं। कृपया आप उनका निवारण करें। मेरी शंकाएँ इस प्रकार हैं–

धरती को कछुआ धारण करता है पर कछुए को कौन आधार देता है? राम के उदर में तीनों लोक व्याप्त हैं तो रावण उनकी सीता को लेकर कहाँ ले गया? स्त्री के लिए सुग्रीव ने भाई की हत्या क्यों कराई? क्या बन्दर पहाड उठा सकते हैं? क्या रावण के दस मुख और बीस हाथ थे? क्या वह सुरपति को बांधने में समर्थ था? कुम्भकर्ण छः मास कैसे सोता था? उसे करोडों भैंसों का भी भोजन क्यों अपर्याप्त होता था? जिस विभीषण ने परस्त्री अभिलाषी रावण का वध कराया उसने माँ के समान मन्दोदरी को कैसे ग्रहण किया? जैन शास्त्रों में इन सारी शंकाओं का समाधान रामकथा के रूप में कैसे कराया गय है?"

राजा श्रेणिक की इन जिज्ञासापूर्ण शंकाओं को इन्द्रभूति गौतम ने जैन रामकथा के माध्यम से समझाया।

रामकथा का आरम्भ

इस कथा के आरम्भ में उन्होंने प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का चरित्र सुनाकर रामकथा की पृष्ठभूमि तैयार की। ईक्ष्वाकु वंशीय भगवान ऋषभदेव के वंश से ही आगे चलकर राक्षस, वानर, विद्याधर, हरिवंश आदि वंश उत्पन्न हुए थे।

भगवान ऋषभदेव ने बाल्यकाल में "इक्षु" हाथ में लिया था तब से उनका कुल इक्ष्वाकु कहलाया जिस कुल में राजा दशरथ और राम आदि पैदा हुए। उसी ऋषभ के पौत्र नमि व, विनमि द्वारा विद्याधर वंश की स्थापना हुई जिसमें रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण और चन्द्रनखा का जन्म हुआ। और उसी विद्याधर कुल से जो वानर द्वीप गये वे श्रीकंठ सुग्रीवादि वानर कहलाए। इस प्रकार जैन रामकथा का स्वरूप बिलकुल बदल गया है। न तो केवल राम आर्य हैं और न रावण अनार्य और न वानर पशु।

महाराक्षस वीर राजा थे। इसलिए उनका द्वीप "राक्षस द्वीप" बना और वहाँ के सारे विद्याधर राक्षस के नाम से पहचाने गये। राजा अमरप्रभु ने वानरों के प्रति पूज्यभाव प्रकट करने के लिए अपने मुकुट, छत्र, ध्वज, आदि पर वानरों के चित्र अंकित किये।

इतना विस्तृत कुल वृत्तान्त शायद ही किसी अन्य रामायण में मिलता है। राक्षस और वानर नाम सार्थक हो कर उनको स्वाभाविकता और औचित्य भी यहाँ प्राप्त हो जाता है।

रावण का जन्मवृत्त :

लंका से निर्वासित होकर पाताल लंका में राज्य करनेवाला रत्नाश्रव राजा विद्यासिद्धि के हेतु पुष्पवन में गया। वहाँ उसे ध्यानमग्न देखकर प्रसन्न चित्त बने हुए व्योमबिंदु नामक विद्याधर ने उसे अपनी पुत्री कैकसी अर्पित की। रत्नाश्रव विद्या सिद्धि के साथ कैकसी को प्राप्त कर पाताल लंका में लौटा। जब कैकसी का गर्भ बढने लगा तब एक रात को उसने गर्भ की योग्यतासूचक स्वप्न देखा। उसने देखा कि हाथी के गण्डस्थल को पकडकर किसी सिंह ने उसके मुख में प्रवेश किया है। सूर्य और चन्द्र उसके होठों में चिपक गये हैं। स्वप्न की सूचना के अनुसार कैकसी के तीन पुत्र हुए। पहला रावण, दूसरा भानुकर्ण और तीसरा विभीषण, उसके एक पुत्री भी हुई जिसका नाम चंद्रनखा रखा गया।

दशमुख नाम की सार्थकता :

एक दिन रावण खेलते हुए भंडार गृह में गया। वहाँ रावण के एक पूर्वज तोयदवाहन का देवाधिष्ठित नवरत्नों का हार था। उसकी रक्षा एक विषैला नाग फनफनाते हुए किया करता था। कौतूहलवश बालक रावण ने उस हार को उठाया और अपने हाथ से ही उसे अपने गले में धारण किया। हार पहनकर अपने माता पिता के सामने आया। उस हार के नवरत्नों में उसका मुख प्रतिबिंबित हो रहा था मानो असली दस मुखों की माला ही दिखलाई दे रही थी। इसप्रकार प्रतिन बिंबित नौ और एक मूल मिलाकर उसके दस मुख ज्ञात हुए अतः वह दशान-कहलाया।

इस घटना के द्वारा रावण के "दशानन" नामकी स्वाभाविकता और सार्थकता प्रकट हुई। रावण की वीरता और चतुराई क्रमशः वृद्धिगत होती गई।

रावण की वीरता से प्रसन्न कैकसी एक दिन उदास हो गई। उसको अपना पूर्व वैभव याद आया। वह लंका की महारानी बननेवाली थी किन्तु रत्नश्रवा को प्राण बचाने के लिए लंका का राज्य छोड पाताल लंका में आसरा लेना पडा और लंका के महाराजा वैश्रवण बने। एक दिन माता कैकसी ने अपनी हृदय-व्यथा रावण के आगे प्रकट की। किस प्रकार लंका से भागना पडा और पाताल लंका में आसरा लेना पडा। यह वृत्तान्त सुनकर रावण आगबबूला हो गया। और उसका बदला लेने की उसने प्रतिज्ञा की। लंका पर चढाई करने के पूर्व रावण ने आत्मबल के साथ विद्याबल तथा शस्त्र बल बढाना चाहा। इसलिए उसने विद्याओं को साधने का निश्चय किया। अपने दोनों भाईयों को साथ ले वह वन में चला गया और सारी विद्याएँ सिद्ध करने की साधना में जुट गया। रावण और उसके भाइयों ने विद्याओं में सिद्धि प्राप्त की।

विद्याओं में सिद्धि प्राप्त करके वह लौटा। तब मंदोदरी अपने पिता के साथ उससे मिली, रावण का रूप और बल देखकर मंदोदरी उसपर मुग्ध हो गई। रावण भी उसकी ओर आकर्षित हुआ जिससे उन दोनों का विवाह संपन्न हुआ।

अब रावण ने लंका पर चढाई की और लंकाधिपति वैश्रवण को पराभूत किया और स्वयम् लंका का राजा बन बैठा।

वाली और रावण का संघर्ष :

लंकाधिपति रावण अब सम्राट बन गया। उसने अपनी बहन चन्द्रनखा का विवाह खर के साथ किया। वह अपने आधीन सब राजकुलों को लाने में भी सफल रहा पर केवल एक किष्किधा के राजा वाली ने उसकी सत्ता मानने से इन्कार कर दिया। वाली ने रावण के दूत को भी अपमानित किया। गुस्से से आगबबूला होकर रावण चतुरंग सेना के साथ वाली का दर्प चूर करने निकला। पर बली वाली ने ही रावण का घमंड तोड दिया। उसको अपने बल बगल में दबाकर उसने जम्बुदीप की प्रदक्षिणा की और उसे जमीन पर पटक दिया। इससे लज्जित होकर रावण झुंझलाता रहा। वाली राजमुकुट अपने भाई सुग्रीव के सिर पर रख स्वयं मुनि बनने के लिए अरण्य में चला गया। तब सुग्रीव रावण का आज्ञांकित बन गया।

वाली मुनी वहाँ से निकल कर अष्टापद पहाड पर पहुँचे। वे तपस्या में लीन हुए। वाली के सामने रावण का बल फीका रह गया। उससे मन ही मन वाली से बदला लेने के भाव रावण के अन्तःकरण में दृढ होते गये।

एक बार रावण अष्टापद के ऊपर से विमान में जा रहा था कि विमान रुका। वह न तो पीछे हटता था न आगे बढता था। इसके कारणों की जाँच की गई। नीचे पहाड पर वाली मुनि तपस्या में मग्न थे। इसी कारण विमान उनके ऊपर से आगे न बढ सका। इससे रावण की क्रोधाग्नि भडक उठी। उसने सोचा कि जरूर वाली ने जान बूझकर यह कार्य किया है। उसे कडी से कडी सजा देने के लिए वह प्रस्तुत हुआ। उसने अपनी समस्त विद्याओं को आवाहन कर उनके बल से अष्टापद पहाड के नीचे एक विवर बनाया और वह पर्वत के निचले विवर में घुसा। अपनी समस्त शक्ति लगाकर उसने उस पहाड को उखाडने का प्रयास किया। रावण के बल के प्रभाव से पूरा पहाड काँप उठा।

वाली मुनि यह उत्पात होने पर भी निर्भय एवं निश्चल थे। उन्होंने अपने ज्ञानचक्षुओंसे उसका कारण खोजा। रावण की इस हरकत से वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपने पैर का अंगूठा दबाया। तपोबल के कारण पहाड नीचे धँसने लगा। घमंडी रावण का दर्प चूर हो गया। वह भयकातर होकर जोर से चिल्लाया और

रूदन करने लगा। इस रोदन की प्रक्रिया के स्वरूप उसका "रावण" यह नामाभिधान सार्थक सिद्ध हुआ। करुणासागर वाली मुनि ने उसे बचा लिया। तब पश्चात्तापदग्ध रावण वाली मुनि के चरणों में गिर पडा। और वहाँ स्थित ऋषभ पुत्र चक्रवती भरत द्वारा निर्मित जिन मंदिरों में पूजादि करता हुआ वह अपने घर वापस लौटा।

रावण का व्रत ग्रहण :

रावण ने अपने देवेन्द्र के समान वैभव का प्रदर्शन करनेवाले इन्द्रादि सब विद्याधर राजाओं का मद चूर कर दिया। वह मंदराचल पर्वत के शिखरों पर स्थित जिन मंदिरों की प्रदक्षिणा करने निकल पडा। वहाँ से निकलते हुए उन्हें अनन्तरथ मुनि के दर्शन हुए। उनकी वाक्सुधा से सिंचित जन समूह विविध प्रकार के व्रतों और नियमों की दीक्षा लेने को तैयार हुए। रावण एक भी व्रत लेने नहीं उठा। तब धीर गंभीर स्वर में मुनि बोले, "अरे, मनुष्य होकर भी तुम इस प्रकार बैठे हो ? हे दशमुख। मोहांधकार को छोडकर व्रत नियम को ग्रहण करो।"

रावण ने बहुत सोचा। व्रत ग्रहण में वह अपने को असमर्थ ही पाने लगा। फिर भी संकोचवश वह उठ खडा हुआ और बोला कि 'हे देव। जो सुन्दर स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसको जबरदस्ती से अपनी पत्नी नहीं बनाऊँगा।'

रावण ने सीता का अपहरण किया था पर जबरदस्ती से उसे अपनी पत्नी न बनाने का कारण यहाँ पर हमें मिल जाता है।

हनुमान जन्म

आदित्यपुर के राजा प्रल्हादराज और रानी केतुमती के पुत्र पवनंजय कुमार थे। राजा महेंद्र की पुत्री अंजना के रूप और गुण देखकर पवनंजय उसपर लट्टू हो गये थे। जब राजा प्रल्हादराज इस बात से परिचित हुए तब उसने राजा महेन्द्र से पवनंजय के लिए अंजना की माँग की। महेन्द्र ने अपनी सम्मति प्रकट की और तीसरे दिन विवाहमुहूर्त सुनिश्चित किया।

अंजना के विरह में जलते हुए पवनंजय अपने एक मित्र के साथ अंजना से मिलने चुपचाप उसके महल में गये। सखियों के साथ मनोविनोद में अंजना मग्न थी। पवनंजय के आगमन से वह बेखबर थी। मनोविनोद में सखियों में से एक ने कहा सचमुच तुम्हारा जन्म सफल है क्योंकि तुम्हें पवनंजयसा पति मिला है। पर दूसरी सखी ने इसका प्रतिवाद किया, वह बोली, "स्वामी, विद्युतप्रभ की तुलना में पवनंजय में ऐसा कौनसा गुण है ? विद्युत्प्रभ और पवनंजय में वही अन्तर है जो समुद्र और गोपद में है, सूर्य और खद्योत में है।"

यह सुनकर पवनंजय अपमानित होगया। सखी की बात सुनकर भी अंजना चुप ही रही। इससे वह मारे क्रोध से काँपने लगा। खड्ग निकाल कर वह मित्र से बोला, "मैं अभी इस पापिनी का सर उडाता हूँ।" मित्र ने उसे शान्त किया और समझा बुझाकर वह उसे वहाँ से ले गया। फिर भी पवनंजय का क्रोध शान्त न हुआ। ब्याह कर उसने उसे तज दिया। सती अंजनाने बारह वर्षतक विरह की असह्य वेदनाएँ सही।

एक बार वरुण पुत्रों ने खर-दूषण को पराजित कर कैद किया। रावण ने उन पर चढाई की तब प्रल्हादराज को भी उसने सेना के साथ बुलाया था। अपने पिता के स्थान पर पवनंजय सेना लेकर जाने को तैयार हुआ। तब उसके मन में अंजना से मिलने का विचार पैदा हुआ। उसे तिरस्कारने के लिए ही वह महल में गया। वहाँ आँखों से आंसू टपकाती हुई अंजना बोली, "नाथ। मेरे प्राण सदा आपकै ही साथ रहते हैं। अत: आपके जानेपर वे भी आपके साथ ही रहेंगे।"

पवनंजय उसे धिक्कार कर निकला पर उसकी करुन मुद्रा बार बार उसकी आंखों के सामने आने लगी। पहले पडाव से वह रात को अंजना के महल में चुपचाप गया। उसने पछतावा प्रकट किया। और अंजनाने उसें सान्त्वना प्रदान की। दोनों ने विलास क्रीडा में सारी रात व्यतीत की। प्रभात होने से पूर्व पवनंजय वहां से निकला और प्रयाण के पूर्व अपनी सेना से आकर मिला। उस रात पति संगत से अंजना गर्भवती हुई। क्रमश: अंजना का गर्भ बढने लग।। तब सास ने उसे कलंकिनी समझा। अत: वह घर से बाहर निकाल दी गई। वह जंगल में मारी मारी भटकने लगी। इस भयानक दशा में जंगल में ही एक गुम्फा में हनुमान का जन्म हुआ।

इस प्रकार रावण से संबंधित कथा के अनन्तर प्रत्यक्ष रामकथा यहां से शुरू हो गई थी।

दशरथ का निर्वासन :

लंका का सम्राट रावण अपने भाईयों के साथ राज्यशासन चला रहा था कि एक दिन बाहर के उद्यान में सागरबुद्धि मुनिराज पधारे। बिभीषण उन्हें वंदन करने के लिए गया। ज्ञानी मुनिराज को देखकर उसने उनसे पूछा, "हे भगवान, जयलक्ष्मी के प्रिय रावण का जीवन और राज्य वैभव कितने समय तक अविचल रहेगा?"

मुनि बोले–" अयोध्या के दशरथ राजा के दो धनुर्धारी पुत्र होंगे। विदेहराज जनक की पुत्री सीता का विवाह उनमें से एक–पद्म से होगा। उसी सीता को लेकर जो महासमर होगा उसमें रावण मारा जायगा।

यह सुनकर बिभीषण क्रुद्ध हुआ और रावण की मृत्यु की जड राजा दशरथ और जनक को वह मारने के लिए उद्युत हुआ। दोनों राजाओं को नारद के कथन से यह ज्ञात हुआ। तब दोनों राजाओं ने अपनी अपनी लेपमयी मूर्ति की स्थापना करवाई और वे निकल गये। आगबबूला होकर बिभीषण उन्हीं मूर्तियों को साक्षात दशरथ और जनक समझा। उनके सिर काटकर ले आया और वह निश्चिन्त हो गया।

कैकेई स्वयंवर :

बिभीषण से अपनी जान बचाते हुए दशरथ और जनक भ्रमण करते करते कैकेई के स्वयंवर में पहुंचे। कैकेई ने राजा दशरथ के ही गले में पुष्पमाला पहनाई। तब उपस्थित राजसमूह क्रुद्ध हुआ और उन्होंने उनपर धावा बोल दिया। कैकेई ने राजा दशरथ को ढाढस बंधवाया और खुद सारथी बन वह धुरापर बैठी। राजा दशरथ ने अपनी शरवृष्टि से सबको भगा दिया और कैकेई की वीरता पर रीझकर उसने उसे दो वर देने का आश्वासन दिया। चतुर कैकेई बोली, "समय आनेपर मांगूंगी।" राजा दशरथ को चार पुत्र हुए। अपराजिता से पद्म (रामचंद्र), सुमित्रा से लक्ष्मण तथा कैकेई से भरत और शत्रुघ्न।

जनक राजा के सीता नाम की एक कन्या और भामंडल नाम का एक पुत्र था। पूर्व जन्म का वैर साधकर किसी विद्याधर ने भामण्डल का अपहरण कर लिया था।

जनक की सहायता :

बर्बर, पुलिंद, शबर और म्लेंच्छों के आक्रमण से बचने के लिए राजा जनक ने दशरथ से मदद लेनी चाही। इसपर दशरथ राजा ससैन्य निकलना चाहता ही था कि पद्म ने उन्हें रोका और स्वयम् लक्ष्मण को साथ ले वह जनक की मदद के लिए निकल पडा। उन्होंने दुष्मनों को मार भगाया और राजा जनक को भयमुक्त कर दिया। रामलक्ष्मण के पराक्रम से राजा जनक प्रभावित हुए।

नारद का अपमान :

एक दिन सीता अपने महल में ही थी कि नारदजी पधारे। उनकी वह विचित्र वेशभूषा देख सीता डर के मारे मूर्छित हो गई। उससे खीझकर अनजान दासियों ने नारदजी को धक्के देकर बाहर निकाला। अपमान से संतप्त बने नारदजी ने यौवनप्राप्त सीता का चित्र पटपर अंकित किया। भामंडल को वह चित्र बताया। भामंडल सीता पर मुग्ध हुआ जिससे सीता पर संकटपरम्परा आ पडी। भामंडल का अभिभावक पिता जनक से मिला और उसने वज्रावर्त और सागरावर्त नाम के दो दुर्जेय धनुष्य दिये जो उसकी डोरी प्रत्यंचापर चढायेगा उसीसे

सीता का विवाह करना तय हुआ। पद्म ने दोनों धनुष्योंपर डोरी चढ़ाई और राम सीता का विवाह संपन्न हुआ। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के भी विवाह बडे ठाट-बाट से हुए। शशिवर्धन राजा के अठारह कन्याएँ थीं। उनमें से आठ कन्याओं का विवाह लक्ष्मण के साथ हुआ और बाकी क्रमश: भरत, शत्रुघ्न से ब्याह दी गई।

दशरथ की प्रतिज्ञापूर्ति :

राजा दशरथ ने अपने पूर्वजन्म की कथा सत्यभूति मुनि से सुनी। वे संसार से विरागी हुए। कंचुकी की वृद्धावस्था की दुर्दशा देख उन्होंने प्रव्रज्या लेने का अपना संकल्प घोषित किया। अयोध्या के सिंहासन पर राम को स्थापित करने का संकल्प भी सुनिश्चित हुआ। बचपन से ही भरत विरागी था। राजा का दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प सुनकर विरागी भरत ने भी उनके साथ प्रव्रज्या ग्रहण करने की मनीषा प्रकट की।

रानी कैकेई असमंजस में पड गई। पति और पुत्र दोनों के वियोग के आतंक से वह दुखी हुई। उसने पुत्र को न खोने के लिए राजा से पूर्वप्रदत्त वरों की मांग की। राजा ने वरदान देना स्वीकार किया। तब कैकई ने राजा से कहा कि अयोध्या का राज्य भरत को दिया जाय। दशरथ राजा ने कैकेई की मांग स्वीकार की। उसने राम को बुलाया। रामने भरत के राजपद को अपनी स्वीकृति दी। पर भरत अपनी उपस्थिति में राज्य का स्वीकार नहीं करेगा इसलिए रामने वनमें जाने की घोषणा की। भरत अति दुखी हुआ। उसने राज्य का उत्तरदायित्व वहन करने से इन्कार किया। किन्तु राम और दशरथ दोनों ने समझा बुझाकर उसे राजा बनने पर बाध्य किया।

माता से विदा

वनप्रस्थान करते समय रामचन्द्र अपनी माताओं से मिलने गये। माताओं को शोकाकुल देख रामने उन्हें ढाढस बंधवाया। अपराजिता तो मूर्छित ही हो गई। जब वह होश में आई तब रामने कहा कि हे माता, इस प्रकार की अधीरता तुम्हें शोभा नहीं देती। क्षत्रिय कन्या और ईक्ष्वाकूकुलभूषण मेरे पिता की गरिमा की क्या इसी प्रकार रक्षा होगी ?"

लक्ष्मण का प्रत्याघात

भरत के राज्याभिषेक की वार्ता सुनकर लक्ष्मण आगबबूला हो उठे। उन्होंने कहा, "राम के जीते जी दूसरा कौन राजा बन सकता है ? मैं आज ही भरत को कैद कर सारा राज्य राम के चरणों में समर्पित करूंगा।"

रामचन्द्र ने लक्ष्मण को समझाया और अपनी माताओं की आज्ञा लेकर

लक्ष्मण भी रामचन्द्रजी के साथ जंगल की ओर निकल पडे। उस समय सीता भी उनके साथ निकल पडी।

भरत का दुःख

राजा दशरथ ने मुनि व्रत ग्रहण किया। राम का वनवास सुनकर भरत मूर्छित हो गये और जमीन पर गिर पडे। होश में आने पर वे अपराजिता से मिले। उन्होंने दुःखपूर्वक कहा कि हे माता, मुझे राज्य की अभिलाषा नहीं है। मैं अभी जाकर रामलक्ष्मण को लेकर आता हूं। राम को लौटाने की अभिलाषा से कैकेई भी साथ गई।

राम को देख भरत उनके चरणों में गिर पडा और वापस लौटने को प्रार्थना की। उसने अन्त में गिडगिडाते हुए कहा, "यदि आप नहीं लौटेंगे तो दशरथ कुलका नाश हो जाएगा। कैकेई ने भी राम को समझाने का प्रयास किया। पर रामचन्द्र अपने वचन पर दृढ रहे। उन्होंने भरत को समझाया। अपने हाथों उसका राज्याभिषेक कर कैकेई के साथ उसे अयोध्या लौटा दिया। राम अब आदिवासियों की बस्ती में से आगे बढने लगे।

आगे बढते हुए वे वज्रकर्ण के राज्य में पहुँचे। यहाँ सब वीरान देखकर लक्ष्मण ने एक मुसाफिर से नगर के वीरान होने का कारण पूछा। उसने कहा कि वज्रकर्ण राजा अपने धर्म पर अडिग था और वह बिना जिन देव के किसी को नहीं मानता था। वह सिंहोदर राजा का सामन्त था। सिंहोदर राजा के पास यह बात किसी तरह पहुँची। जिससे वह क्रोधित होकर उसने वज्रकर्ण पर चढाई की। नगरवासियों को किले के भीतर लेकर वज्रकर्ण उनकी रक्षा करता है। इसलिए नगर वीरान हुआ है। यह सुनकर सिंहोदर राजा को पराजित कर लक्ष्मण ने वज्रकर्ण की सहायता की और उसे अपना मित्र बना लिया।

रास्ते में लक्ष्मण ने कल्याणमालिनीकी मदद की। उसके पिता म्लेंच्छों के कारागृह में बंदी थे। लक्ष्मण ने म्लेंच्छों को परास्त कर उसे मुक्त किया और उसे राज्य–सिंहासन पर अधिष्ठित किया। कल्याणमालिनी से लक्ष्मण का ब्याह हुआ।

इस तरह दुष्टों का दमन और पोडितों की सहायता करते हुए वे दण्डकारण्य में पहुँचे। कुतूहलवश वे जंगल में घूमते हुए वंशस्थल पर पहुँचे। वहाँ उसने देखा कि एक तेजस्वी खड्ग जगमगाता हुआ आकाश में विद्यमान था और नीचे उतर रहा था। वह विद्यासिद्ध सूर्यहास खड्ग था। उसका साधक बांस के जमघट में ध्यानमग्न था।

वासुदेव की शक्ति से संपन्न लक्ष्मण ने वह खड्ग ग्रहण किया और कुतूहल

वश उसे बांस के झुंडपर चलाया। बांस खण्ड टूट पडे पर साथ ही साथ खडग से खून की धारा यकायक बह निकली। लक्ष्मण चौंके और देखा तो वहां एक दैदीप्यमान सिर कटकर धड से अलग पडा हुआ था। सूर्यहास खड्ग पाने के लिए विद्या साधनेवाले शम्बुक का कटा हुआ वह सिर था।

चंद्रनखा का कोप

लक्ष्मण पछताते हुए स्वस्थान पर पहुँचे। उनकी बात सुनकर सीता देवी अशुभ के भय से कांप उठी। शम्बुककुमार रावण का भानजा था। वह चंद्रनखा और पाताल लंकापति खर का पुत्र था। खड्ग पाकर अपने कार्य में सफलता पाने का सौभाग्य आज अपने पुत्र को प्राप्त होगा इस हर्ष से विभोर होकर आई हुई शम्बुक माता चन्द्रनखा ने क्या देखा ? बारह वर्ष और चार दिन की साधना में मग्न अपने पुत्र का कटा हुआ सिर। वह देख भयकातर हो वह बेहोश हो गई। मूर्छा हटते ही वह शोक करने लगी। अपने दु:खी मन को उसने संभाल लिया और संतप्त हो कर उसने प्रतिज्ञा की कि जिसने खरनन्दन की यह नृशंस हत्या की है उसके प्राण यदि वह न हरण कर ले तो वह अग्नि प्रवेश करेगी।

इस तरह क्रुद्ध होकर वह वनमें पहुँच गई। वहाँ उसे राम लक्ष्मण दिखाई पडे। उनके रूप सौन्दर्य से मोहित होकर वह कामपीडा से परिव्याप्त हुई। पुत्र शोक को भूलकर उन्हें पाने की चेष्टा में वह रत हुई। उसने अपना असली रूप छिपाकर सुन्दर रूप धारण किया और जोर जोर से रोने लगी। सीतादेवी का ध्यान उसकी ओर गया। वह अपने पति से बोली, " नाथ। देखो न यह लडकी क्यों रो रही है ? "

रामने उससे पूछा तब उस मायाविनी ने कहा, "मैं राह भूलकर यहाँ आ गई हूँ। मैं चाहती हूँ कि आपमें से कोई मेरा वरण करे। " रामने लक्ष्मण की ओर संकेत किया। लक्ष्मण ने उसे मायाविनी और पिशाचिनी कहा। तब लज्जाहीन बनकर बोली, " अरे पापियों, जिस तरह तुमने मेरे पुत्र को मारकर यह खड्ग लिया है उसी तरह तुम तीनों भी मारे जाओंगे। " सन्तप्त चन्द्रनखा बिलखती हुई पाताललंका में चली गई और खर-दूषण के पास पहुंची। उसके विलाप और शोकाकुल दशा से खर-दूषण विचलित हूए। पुत्र वध की बात सुनकर वे क्रोध से लाल पीले बन गये। आग में घी डालने के लिए उसने अपना वक्षस्थल बताया जो उसके हाथों से क्षतविक्षत था। अपनी पत्नी की यह बुरी दशा देखकर खर सेना के साथ निकला और दूषण को रावण के पास भेजा।

सीतापहरण :

राक्षस सेना को देखकर लक्ष्मण सावधान हुआ और उनसे लडने को निकला।

उन्होंने राम से कहा "आप सीता देवी की रक्षा कीजिए। यदि मुझे आपकी सहायता की आवश्यकता उत्पन्न हुई तो मै सिंहनाद करूंगा जिसे सुनकर आप तुरन्त चले आवें।

युद्ध छिड गया। रावण भी आ पहुंचा। सीता को देखकर उसमें मोह का उन्माद जाग उठा। कामबाणों से आहत होकर उसका मुख विकारों से क्षीण बन गया। सीता का अपहरण करने की उसने ठान ली। उपाय सोचने के लिए उसने अवलोकिनी विद्या का चिन्तन किया। विद्या उपस्थित हो गई और उससे लक्ष्मण ने राम को बताई हुई सिंहनाद की बात रावण ने जान ली। तुरन्त ही उसने सिंहनाद किया। लक्ष्मण का ही यह सिंहनाद है ऐसा समझकर राम लक्ष्मण की सहायता के लिए तुरन्त निकल पडे। इसी बीच रावण ने सीता का अपहरण किया। उसका विमान आकाशमें से जा रहा था तब सीता का आक्रंदन सुनकर जटायू ने रावण पर आक्रमण किया। रावण ने खड्ग से उसे घायल कर दिया। दक्षिण समुद्र के तटवर्ती एक विद्याधर ने सीता का विलाप सुना। रावण ने उसे विशालनन्दन वन में रखा। सीता ने यह **निश्चय** किया कि "जब तक मैं राम की वार्ता न सुन लूं तब तक मैं निराहार ही रहूंगी।

सीता विहीन आवास को देखकर राम शोकाकुल हो गये और वनमें सीता को खोजने निकले। जटायु से उन्हें सीता की खबर मिली। रास्ते में एक मुनि-द्वारा राम की सान्त्वना की गई पर उसका वियोग दाह कम न हो सका।

खर की सेना को भगाकर क्रुद्ध लक्ष्मण ने खर को मार गिराया। दूषण को भी उसने रथ विहीन कर दिया। विराधित के आग्रह वश राम लक्ष्मण तमलेकार नगर में पहुंचे। चन्द्रनखा भागकर रावण के पास पहुंच गई और खर दूषण के मृत्यु की वार्ता रावण को सुना दी।

लंका में सीता :

रावण ने सीता को जबरदस्ती से अपहरण किया यह जानकर वह बेचैन बनी। सीता को लौटाने के लिए मंदोदरी ने रावण को समझाने की कोशिश की। वह बोली "परस्त्री की कामना कल्याणप्रद नहीं है।" पर रावण सीता का मोह न छोड सका। रावण ने मंदोदरी को सीता को समझाने के लिए भेजा। सीता ने निभर्त्सना कर उससे कहा, "राम के बाण से वे जरूर आहत होंगे।" विभीषण भी सीता से मिले। परदे की ओट में खडी होकर सीता ने अपनी आप बीती सुनाई। सीता के प्रति सहानुभूति के कारण विभीषण ने रावण को समझाने की पूरी कोशिश की। पर वह भी विफल रहा। रावण सीता को समझाने की चेष्टा में भी असफल रहा। लंका पर आई हुई आपत्ति को हटाने की दृष्टि से

मंत्रिमंडल में विचार-विमर्श हुआ और विभीषण ने आशाली विद्या को बुलवा कर नगर के चारों ओर परिक्रमा करवाई।

सुग्रीव की सहायता :

राम और लक्ष्मण सीता की खोज में किष्किधा नगरी पहुंचे। सुग्रीव राम से मिला और अपनी विपदापूर्ण गाथा सुनाई। सहस्रगति विद्याधर सुग्रीव का रूप धारण कर उसका राज्य तथा पत्नी हथियाकर उनपर कब्जा जमा बैठा था। उसको मारने के लिए उसने रामसे सहायता माँगी।

सुग्रीव की बात सुनकर राम के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति पैदा हुई। उसने उसे राज्यपर बिठाने का आश्वासन दिया तब सुग्रीव ने प्रतिज्ञा की कि सातवें दिन यदि सीता देवी का वृत्तान्त वह न ला सका तो वह चिता में प्रवेश करेगा। दोनों सुग्रीवों में अब द्वंद्व युद्ध हुआ। तब विशाल वैतालिका की विद्या ने मायावी सुग्रीव को प्रकट कर दिया और रामने शरसधान कर उसे वध किया। अब सुग्रीव राजा बना। सुग्रीव अपने राज्योपभोग में और रानी के साथ क्रीडासक्त हुआ। इस तरह राम कार्य को वह भूल गया। तब लक्ष्मण ने कोटीशिला उठाकर अपनी वासुदेव शक्ति का उसे परिचय दिया और सुग्रीव ने लज्जित एवं भयभीत होकर तुरन्त ही सीता को खोजने का प्रयास शुरू किया। सीता की खोज में वानर वीर चारों ओर भेजे गये।

दक्षिण तटवर्ती विद्याधर से वार्ता मिली कि रावण ने उसका अपहरण किया है। सुग्रीव ने राम से सीता की बात कही और जाम्बुवंत को हनुमान को लाने के लिए भेजा। हनुमान श्री शैलनगर के राजमहल में थे।

हनुमान का लंकागमन :

दूतने हनुमान को रामलक्ष्मण की अब तक की सारी घटनाएँ बतला दीं। वासुदेव पद की कसौटी पर खरे उतरने की बात भी बतलाई और विज्ञप्ति की कि "देव सुग्रीव ने आपको याद किया है।" आपके बिना सुग्रीव की सेना सुशोभित नहीं हो सकती।

हनुमान अपनी सेना के साथ सुग्रीव के पास पहुंचे। हनुमान का हार्दिक स्वागत कर रामने उसे आधे आसन पर बिठाया। सीता का पता लाने का कार्य उसे सौंपा। पहचान के लिए रामने हनुमान को अपनी अंगूठी दी और सीतादेवी की चूडामणि लाने को कहा। हनुमान सीता की खोज में निकला। रास्ते में हनुमान के नाना की नगरी महेन्द्र नगरी पडी। अपनी माँ का प्रतिशोध लेने की उसने ठानी और नगरी पर धावा बोल दिया। दोनों में धमासान युद्ध हुआ। हनुमान ने राजा प्रल्हादराज और उनके बेटे को कैद किया और बाद में अपना

परिचय दिया। राजा ने पश्चात्ताप किया और सेना के साथ रामचन्द्रजी से मिलने का तय किया।

हनुमान लंका में प्रवेश करनेवाले ही थे कि आसाली विद्या युद्ध करने के लिए आ गई। हनुमान उसके पेट में फैल गये जिससे उसका पेट विदीर्ण हो गया। हनुमान ने अश्वसेन को मार कर लंकानगरी का सारा गर्व भी खण्डित किया। लंका सुंदरी ने हनुमान को पति के रूप में वरण किया। रातभर उसके महल में रहकर प्रातःकाल में उन्होंने लंका में प्रवेश किया। सीधे वह बिभीषण के घर पहुंचा। उसने आलिंगन देकर उसका स्वागत किया और सबकी कुशलता पूछी। तब हनुमान बोले, "सब कुशल है पर राम-लक्ष्मण के क्रुद्ध होने से केवल रावणकी कोई कुशल नहीं है। आपके होते हुए भी राक्षसवंश का नाश निकट आ गया है।"

यह सुनकर बिभीषण का मन डोल उठा। उसने हनुमान को बताया कि रावण को समझाने के सारे प्रयत्न किस प्रकार असफल रहे हैं। अन्त में उसने आश्वासन दिया कि अगर युद्ध छिड गया तो वह राम से जा मिलेगा।

सूर्यास्त के समय हनुमान नन्दन-वन में पहुँचा। हजारों सखियों से घिरी हुई सीता देवी उसने देखी। शोक सन्तप्त सीता देख उसने आदर और दुख से उन्हें मन ही मन प्रणाम किया और आकाश में अपने को अन्तर्निहित कर नीचे अंगूठी डाल दी। हर्षाविभूति होकर सीता ने अंगूठी उठाई और वह परम हर्ष-विभोर हो गई। संरक्षिका ने रावण को सन्देश भेजा कि सीता आज हर्षविभोर है। रावण ने तुरन्त ही मन्दोदरी को भेजा। सीता ने मंदोदरी को दुत्कार कर कहा, "मैं चाहती हूं कि रावण अपने दुष्कार्य की निन्दा करें और श्रीराम के चरणों में गिरकर उन्हें मुझे सौंप दे इसी में उसकी कुशल है।"

सीता के इस आचरण से हनुमान के मन में उसके प्रति आदर बढा। मन्दोदरी के घोर उपसर्ग से भी वह विचलित नहीं हुई। तब हनुमान वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने रामदूत के रूप में अपना परिचय दिया। हनुमान रावण का सहायक होकर भी रामकार्य के लिए आया इससे क्रुद्ध मंदोदरी ने हनुमान को स्वामीद्रोही और कृतघ्न कहा। रामप्रशंसा और रावण की निन्दा हनुमान से सुनकर क्षुब्ध हो वह अपने महल की ओर गई।

हनुमान ने राम लक्ष्मण का सारा वर्तमान सुनाया और बिभीषण के द्वारा सीता के भोजन का सुप्रबन्ध कराया। अन्त में सीता से प्रार्थना की कि "माँ मेरे कन्धे पर चढ जाओ मैं आपको जहाँ राघवसिंह हैं वहाँ ले जाऊँगा।"

"कुलवधू के लिए यह ठीक नहीं है" ऐसा कहकर सीता ने जाने से इन्कार किया। "अपने कुलधर पति के साथ जाना ही ठीक है। दशानन के वध

के बाद जय जय शब्दों के साथ मैं अपने पति के घर जाऊंगी।" सीता का यह कथन सुनकर हनुमान चूडामणि लेकर उद्यान से निकले।

जाने के बाद रावण को मजा चखाने की हनुमान की इच्छा थी। इसलिए वे रावण के उद्यान में घुस गये। उन्होंने छोटे मोटे पेड जड से उखाड डाले। उद्यान रक्षक दौडे आये तब हनुमान ने उनको गिराकर आहत किया। रानी मन्दोदरी ने हनुमान की चुगली की तब रावण ने क्रुद्ध होकर बडे बडे अनुचरों को भेजा पर हनुमान के सामने कोई भी टिक न सका। इस प्रकार उद्यान और सेना को उद्ध्वस्त कर वे आगे बढे ही थे कि रावण पुत्र अक्षयकुमार ने उसे रोका। धमासान लडाई में अक्षयकुमार को जान से हाथ धोना पडा।

विभीषण का प्रयास :

इस अवसर पर विभीषण ने फिर विज्ञप्ति की कि सीता लौटा दीं जाय पर रावण न माना। अब इन्द्रजीत आगे बढा। नागपाश से उसने हनुमान को बाँध लिया और रावण के आगे उसे खडा किया। रावण ने हनुमान को समझाने की कोशिश की। तब हनुमान बोले, "सीता देवी सामान्य नारी नहीं है वह आपके कुल का नाश करनेवाली हैं। उसके द्वारा लंका का विनाश और जन्मजन्मान्तर का अकल्याण होगा।"

अब रावण अपनी भूल को समझ गया था पर वह अपनी जिदपर अडा हुआ था। लोग कहेंगे कि रावण ने मारे भय के सीता को लौटा दिया। इसी आशंका से उसने सोचा कि "मैं राम को पराजित करने के बाद ही सीता को लौटा दूंगा।" इस प्रकार सोचकर हनुमानका सिर मुंडवाकर उसे गधेपर बिठाने को कहा। पर हनुमान जो उछले तो राजमहल और पाँचसों घरों का ध्वंस कर रामचन्द्रजी के सम्मुख आ खडे हुए। सीता की चूडामणि देख राम हर्षित हुए और सीता की स्मृति से उनकी आँखों से आँसू लुढक पडे। हनुमान से सीता का सारा इतिवृत्त ज्ञात होते ही राम अपनी सेना के साथ आगे बढे। समुद्र राजा ने सेना को रोका तब वह नल द्वारा पराजित किया गया। उसने अपनी चार कन्याएँ लक्ष्मण को ब्याह दी। और एक बार विभीषण ने सीता को लौटाने का प्रस्ताव रखा तो रावण ने उसे लंका से निकाल दिया। विभीषण अपनी सेना के साथ राम से हंसद्वीप में जा मिला। सीता का भाई भामण्डल भी अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए उपस्थित हुआ। लडाई में सुग्रीव और भामण्डल नागपाश से बद्ध हुए। तब लक्ष्मण ने उन्हें मुक्त किया पर लक्ष्मण को रावण की शक्ति लगी तब द्रोण मेघ की कन्या विशल्याने चिकित्सा कर लक्ष्मण को शक्तिमुक्त कर दिया। विशल्या का उसी के साथ ब्याह भी हुआ।

रावण वध :

रावण ने अन्तिम बार संधि का प्रस्ताव रखा। राज्य का एक अंश और सुस्वरूप ३००० कन्याओं को वह इस शर्तपर देने को राजी हुआ कि राम सीता को त्याग दे और कुम्भकर्ण, मेघवाहन और इन्द्रजीत को भी मुक्त करे पर रामने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। रावण ने बहुरूपी विद्या को सिद्ध कर लिया और वह सीता से आ मिला। वहाँ उसने राम का वध करने की धमकी दी पर सीता अपने पथपर अटल रही। अन्तिम लडाई में लक्ष्मण ने रावण का वध किया तथा मेघवाहन, इन्द्रजित आदि को कैद से मुक्त किया। विरागी बनकर वे आत्मकल्याण के मार्ग पर चल पडे। मन्दोदरी चन्द्रनखा आदि ८००० स्त्रियों ने भी आत्मकल्याण का मार्ग ग्रहण किया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि कर सीता के निर्मल शील का प्रमाण दिया। वे छः साल तक लंका में ठहरे। यहाँ पर पूर्व नियोजित सारी कन्याओं के साथ लक्ष्मण का विवाह संपन्न हुआ।

उत्तर काण्ड

सीता–निर्वासन

इस प्रकार रावण विजय कर राम सीता के साथ अयोध्या लौटे और उनका राज्याभिषेक हुआ। रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक होने के बाद एक दिन प्रजा के अग्रणी दरबार में उपस्थित हुए। उन्होंने प्रजा में गर्भवती सीता के बारे में जो चर्चाएँ चल पडी थीं उनका प्रतिवृत्त रामको सुनाया। रावण के घर पर रही हुई सीता का स्वीकार प्रजा में अनाचार को बढावा देनेवाली बात बन सकती है ऐसी आशंका उन्होंने रामके सामने प्रकट की।

यह सुनते ही राम के सिर पर मानो वज्र आ गिरा। सीता उन्हें प्राणों से भी प्रिय थी। फिर भी राजा की मर्यादा का भी उन्हें ख्याल था। उन्होंने लक्ष्मण को बुला लिया और उनको सारी बातें कह सुनाईं।

सीता के प्रति आक्षेप सुनकर लक्ष्मण आगबबूला हो उठा। सीता को कलंकित ठहरानेवाले को कडी सजा देने की उन्होंने घोषणा की। रामने उन्हें समझाया और कृत्तान्तवक्त्र को बुलाकर कहा कि तुम सीता को सम्मेत शिखर आदि तीर्थ यात्रा को जाने के बहाने "सिंहरवा" जंगल में छोड़ आओ। कृत्तान्त वक्त्र को राम की आज्ञा का पालन करना ही पडा। वह गर्भवती सीता को ले जंगल की ओर निकला।

अनङ्गलवण और मदनांकुश जन्म

सिंहरवा जंगल में पहुँचने पर उसने सीता से सत्य बात कही। वह वृत्तान्त

सुनते ही सीता मूर्छित हो गई। होश में आने पर उसने बडा शोक किया। उस समय वहाँ संयोग वश आये हुए वज्रजंघ राजा, उसे बहन मानकर अपनी नगरी में ले गया।

श्रावण की पूर्णमासी के दिन सीता ने जुडवा शिशुओं को जन्म दिया। उनके नाम अनङ्गलवण और मदनांकुश रखे गये। पुत्र उम्र में बढने लगे। विद्या कला, शास्त्र और शस्त्र आदि में वे पारंगत बने।

तारुण्य प्राप्त अनङ्गलवण और मदनांकुश के विवाह का विचार वज्रसंघ के मन में आया। उसने पृथ्वीपुर के पृथुराजा के पास उसकी पुत्री सुवर्णमाला की माँग की। राजा ने उनकी बात मानने से इन्कार किया और उन बालकों के कुलशील पर भी कलंक लगाया। दोनों बालकों ने जब यह समाचार जाना तब उन्होंने पृथु पर चढाई की और उसे परास्त किया। उनका पराक्रम देख राजा ने शरणागति स्वीकार की और सुवर्णमाला का अंकुश के साथ ब्याह हुआ। अनङ्ग-लवण भी वज्रजंघ का जामात बना।

राम से संघर्ष

सीता से मिलने के लिए एक बार नारदजी पधारे। उन्होंने उन बालकों को रामचरित सुनाया। अपनी माता पर किये गये अन्यायों को सुन वे क्षुब्ध हो गये और सैन्य के साथ चढाई कर रामचन्द्रजी से बदला लेने का उन्होंने निश्चय किया। राम से समाचार सुनकर राजा जनक, विदेहा और भामण्डल की सेना के साथ पुंडरिक नगर में आकर अपने पोतों से मिले। अनङ्गलवण और मदनांकुश ने नगर को घेर लिया। अयोध्या के बाहर धमासान युद्ध हुआ और बालकों ने रामलक्ष्मण को परास्त किया। वहाँ नारद का आगमन हुआ। नारद ने बालकों का परिचय दिया। रामने दोनों को गले लगाकर प्यार से दृढालिंगन किया। उपस्थितों के आग्रह से सीता को लाने के लिए श्रीराम ने अनुमति दी।

सीता की प्रव्रज्या :

सीता को समझाकर लाने के लिए भामण्डल, हनुमान आदि गये। सीताने कहा, "महाशय, दुर्जनों ने मुझ पर किए हुए आक्षेपों से दग्ध मेरी काया अब क्षीरसागर के जल से भी शान्त नहीं हो सकेगी।" अन्त में उसे समझा बुझा कर अयोध्या लाया गया। सीता राम से मिलने के लिए लालायित हो उठी। पर रामने कहा, "मैं तेरी शुचिता एवं पवित्रता समझ सकता हूँ पर प्रजा की प्रतीति के लिए शुचिता के प्रमाण देने पर ही मैं तेरा स्वीकार करूंगा।" सीता अपनी पवित्रता को सिद्ध करने को उद्यत हुई।

एक बडा गहरा गढा खोदा गया जिसमें अग्नि प्रज्वलित की गई। सीता

उसमें कूद पडी। पर अग्निकुंड शीतल बन गया। उसमें से जल के फव्वारे उडने लगे। अब रामचन्द्र उसकी प्रशंसा कर उसे महारानी का स्थान देने लगे। किन्तु सीता अपने हाथ से केशों का लुंचन कर (साध्वी) आर्यिका बन गयी। इसके बाद उग्र तपसे उसे सम्पूर्ण ज्ञान (कैवल्य) प्राप्त हुआ। वह अच्युत देवलोक में इंद्र बनी।

राम और लक्ष्मण में घनिष्ट प्रेम था। जिसकी परीक्षा करने देवता आये। उन्होंने लक्ष्मण के सामने माया से दृष्य खडा किया कि राम मृत है और अन्तःपुर की सारी रानियाँ शोकाकुल हो उनके समीप बैठी हैं। राम की मृत्यु का वह करुण दृश्य देखते ही लक्ष्मण सिंहासन से गिर पडे और उनकी मृत्यु हो गई।। राम को लक्ष्मण की मृत्यु से आघात पहुँचा। वे विरागी बन गये। उन्होंने लक्ष्मण की देह को गाढ आलिंगन दे दिया। जटायु; कृतांतवक्त्र आदि ने उन्हें शान्त किया। सरयू के तीर पर लक्ष्मण का दहन हुआ, रामने असंख्य राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। कैवल्य ज्ञान से उन्हें मोक्षप्राप्ति हुई।

विमल सूरि ने पद्म चरियं में जो रामकथा कही वही कथा स्वयम्भू के द्वारा अपभ्रंश भाषा में कही गई है।

स्वयम्भू की रामकथा (पउमचरिउ)

प्रस्तावना : स्वयम्भू देव ने विमलसूरि की रामकथा परम्परा को सम्पूर्ण रीति से निभाया है। उन्होंने भी विमल सूरि के समान अपनी कथा के प्रारम्भ में ऋषभवन्दना की है। आचार्य और चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना करके नदी के रूपक के द्वारा रामकथा की निर्मिति और स्रोत के विषय में कथन किया है। इसके बाद ऋषभदेव का चरित्र वर्णन कर इक्ष्वाकु कुल का विवरण दिया है और राक्षस कुल और वानरकुल इन दोनों की उत्पत्ति एवं विकास का स्वरूप समझाया है।

रावण का जन्म, विद्यासाधना, उसका विवाह एवं दिग्विजय की कथा बतलायी है। वाली के साथ के उसके संघर्ष का भी वर्णन किया है। इसके बाद हनुमान के जन्म की कथा सुनायी गई है।

रावण वध की आशंका के कारण राजा दशरथ को मारने की बिभीषण ने प्रतिज्ञा की। वह ज्ञात होने पर अयोध्या छोडकर निकला हुआ दशरथ कौतुक मंगल में नगरमें पहुँचा। वहाँ स्वयंवर में कैकेई ने उसको वरमाला पहनाई है। ईर्ष्याग्रस्त राजाओं के साथ दशरथ को युद्ध करना पडा तब कैकेई ने उसका सारथ्य कर सहायता पहुँचाई। यहीं दशरथ ने उसे वर प्रदान किया। राजा दशरथ अयोध्या पहुँचे। उनके चार पुत्र क्रमशः सबसे बड़ी रानी कौशल्या से रामचन्द्र,

सुमित्रा से लक्ष्मण, कैकेई से धुरंधर भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। वे सकलकला में पारंगत बने।

एक बार राजा जनक पर म्लेंच्छों ने आक्रमण किया। राम लक्ष्मण ने उन की सहायता कर राजा जनक को प्रभावित एवं उपकृत किया। स्वयंवर में चन्द्र गति द्वारा प्रदत्त धनुष्य पर प्रत्यंचा चढ़ाकर रामने सीता से विवाह किया। शशिवर्धन की आठ कन्याओं का लक्ष्मण से विवाह हुआ।

कैकेई का क्रोध :

राजा दशरथ ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के निश्चय से राम को राज्याभिषेक करने का निश्चय किया। यह सुनकर कैकेई का अनुराग विद्वेष में परिवर्तित हो गया। वह आकर्षक एवं मोहक सजधज के साथ दरबार में आ उपस्थित हुई और उसने राजा से अपने पूर्व प्रदत वर की माँग की।

राम-लक्ष्मण का वनगमन तथा शेष सारी रामकथा पउमचरियं के अनुसार ही है।

एक बार नन्दवर्त के राजा अनन्तवीर्य ने भरत के ऊपर चढाई करने का निश्चय कर अपनी सहायता के लिए राजा महीधर को आमंत्रित किया। उस समय श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण वहीं उपस्थित थे। महीधर राजा ने उन्हें अनन्तवीर्य के आमंत्रण से ज्ञात कराया तब राम लक्ष्मण स्त्री का नारी वेष धारण कर आभूषण पहनकर हँसी मजाक करते हुए अनन्तवीर्य के दरबार में नर्तिका के रूप में गये। राम अपने गीत में यह भाव प्रकट करते कि, " सिंह के साथ कौन क्रीडा कर सकता है। जब तक भरत हाथ में शस्त्र नहीं उठाते और तुम्हें जीवित नहीं पकडते तब तक तुम उसकें चरणों में गिर जाओ। इससे क्रुद्ध अनन्तवीर्य खड्ग लेकर आया तो रामने उछलकर उसे पकड लिया। राम लक्ष्मण अब वहाँ असली रूप में प्रकट हुए। राजा अनन्तवीर्य ने अपनी भूल मान ली और उन्होंने प्रव्रज्या लेकर आत्मकल्याण साधा। वनमें वे तप करने लगे जहाँ कुलभूषण आदि मुनि उनसे मिले और उनसे उन्होंने धर्मोपदेश सुना।

इसके बाद की सारी कथा विमलसूरि की कथा के समान ही होने से यहाँ पर उसका विस्तार नहीं किया गया है। अब हम तीसरी कथा —— त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र की कथावस्तु का विवेचन करेंगें।

(३) आचार्य हेमचन्द्र की रामकथा

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

इस काव्य में आयी हुई रामचन्द्रजी के पूर्वजों की नामावली इस प्रकार है।

विजय राजा

- वज्रबाहु
- पुरन्दर
  - कीर्तिधर
  - सुकोशल
  - हिरण्यगर्भ
  - नघुष
  - सौदास
  - सिंहरथ
  - ब्रह्मरथ
  - चतुर्मुख
  - हेमरथ
  - शतरथ
  - उदयपृथु
  - वारिरथ
  - आदित्यरथ
  - मान्धाता
  - वीरसेन
  - प्रतिमन्यु
  - पद्मबन्धु
  - रविमन्यु
  - वसंततिलक
  - कुबेरदत्त
  - कुंथु
  - द्विरद
  - सिंहदशन
  - हिरण्यकशिपु

पुजस्थल

काकस्थल

रघु

अनरण्य

अनंतरथ — दशरथ

यह वंशावली पउमचरियं से कुछ भिन्नता रखती है। शायद इसपर जैनेतर रामकथा का प्रभाव हो।

कथावस्तु प्राय: पउमचरियं के अनुसार ही होने से उसका विस्तार नहीं किया है किन्तु हेमचन्द्र की कथा में सीता पर कलंक का बडा ही तर्कपूर्ण कारण प्रस्तुत किया है।

सीता की ईर्ष्या :

सीता के साथ राम अयोध्या आने पर कुछ समय व्यतीत हुआ और सीता गर्भवती बनी। सीता का यह सौभाग्य अन्य रानियों से न सहा गया। वे षड्यंत्र से सीता को बरबाद करने पर तुल गयी।

एक दिन सीता के पास वे सब गयी। बडे मार्दव एवं स्नेह का दिखावा कर उन्होंने उससे कहा "रावण के घर इतने दिन रही तो हमें इतना तो बताओ कि उसका रूप कैसा था ?" सीता ने सरलता से उत्तर दिया "मैंने तो केवल उसके पैर ही देखे हैं, मैं उसका रूप क्या जानूं ?" रानियों ने आग्रह किया कि सीता रावण के पैरों का चित्र बनाकर बतायें। अन्य रानियों के आग्रहवश सीता को रावण के पैरों का चित्र बनाना ही पडा। सीता द्वारा रावण के पैरों का चित्र प्राप्त होते ही रानियों का षड्यंत्र आगे बढ़ा। उन्होंने राम को वह चित्र बताया और कहा कि सीता का रावण के प्रति दृढ स्नेह है अन्यथा उसने यह चित्र क्योंकर निकाला होता ? इस प्रकार रामके कानों में जहर ऊंडेलकर भी रानियों को खुशी न हुई। उन्होंने उस चित्र की बात तेजी से लोगों में प्रचारित की। बेचारी सीता इस छल कपट से अनजान थी।

पर लोगों में यह बात इतनी फैल गई कि प्रकट रूप से उसकी चर्चा होने लगी। राजपुरुषों ने राम को इस चर्चा से परिचित कराया और तीर्थयात्रा के बहाने राम को गर्भवती सीता को निर्वासित करना पडा।

इस प्रकार हेमचन्द्र की रामकथा में बडी मौलिक सूझ दिखाई देती है। शेष कथा विमलसूरि के पउमचरियं की सी है।

गुणभद्र की रामकथा :

जैन रामकथा का एक अनोखा एवं नया रूप हमें गुणभद्र की कथा से प्राप्त होता है। गुणभद्र की रामकथा उनको कवि परमेश्वर से मिली। वे गुणभद्र के गुरु जिनसेन के गुरु थे।

गुणभद्र की जैन रामकथा :

राजा दशरथ का परिवार :– राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनके चार पुत्र थे। सुबाला नामक रानी से राम का जन्म हुआ। कैकेई से लक्ष्मण का जन्म हुआ। राजा दशरथ अपनी राजधानी वाराणसी को बदलकर साकेतपुर लाये। वहाँ भरत और शत्रुघ्न का जन्म किसी अन्य रानी के गर्भ से हुआ।

रावण को शाप

राजा अमितगति की पुत्री मणिमती इष्ट प्राप्त करने के लिए तपस्या करती थी। तब विद्याधर वंश के पुलस्त्य के पुत्र दशानन ने उसमें बाधाएँ उपस्थित कीं। तपोभंग से क्रुद्ध मणिमती ने शाप दिया कि अगर तपश्चर्या का कोई फल हो तो मैं दशानन की पुत्री बनकर उसकी मृत्यु का कारण बनूं।

मंदोदरी का पुत्री त्याग

मणिमती मरकर रावण की रानी मन्दोदरी की कुक्षी से पुत्री के रूप में पैदा हुई। पुत्री की कुण्डली ज्योतिषियों ने बनाई और कहा कि यह पुत्री पिता के कुल का नाश करनेवाली है।"

कुलनाश की आशंका से भयभीत होकर रानी ने मारिच को बुलाया और पुत्री को पेटिका में रख कर कहीं छोड आने की आज्ञा दी। पेटिका लेकर मारिच मिथिला देश में गया और वहाँ उसे किसी खेत में गाडकर वह लंका लौटा।

उस खेत को जोतनेवाले किसान के हल की नोक से उलझकर पेटिका ऊपर आई। किसान ने पेटिका खोली। सुन्दर अलंकृत बाला को देख कह उसे जनक राजा के पास ले गया। राजा जनक ने उसे अपनी कन्या के रूप में ग्रहण किया। और उसका लालनपालन किया।

सीता–विवाह

अपने राज्य में यज्ञ की रक्षा के लिए जनक ने राम-लक्ष्मण को आमंत्रित किया। राम की वीरता से मुग्ध होकर राम का सीता एवं अन्य सात कन्याओं के साथ विवाह किया। लक्ष्मण का विवाह पृथ्वीदेवी और १६ राजकन्याओं के साथ किया गया।

अब राम लक्ष्मण पिता की आज्ञा लेकर वाराणसी में ही रहने लगे।

रावण की सीता के प्रति आसक्ति :

एक दिन नारद दशानन से मिले। तब उनके मुख से सीता के रूप गुणों की प्रशंसा सुनकर रावण के मन में उसको पाने की अभिलाषा पैदा हुई। उसने संकल्प किया कि मैं सीता को अवश्य हरकर ले आऊंगा।

सीता की मनोभावना जानने के लिए एक दिन रावण ने शूर्पणखा को भेजा। सीता की पतिभक्ति और पातिव्रत्य को देख शूर्पणखा लौट आयी। उसने सीता का मन चलायमान होना असंभव बताया। तब रावण ने मरिची को भेजा और उसे स्वर्णमृग का रूप धारण कर राम को सीता से दूर ले जाने को कहा।

सीताहरण :

एक दिन राम और सीता चित्रकूट की वाटिका में विहार करने के लिए गये। यह मौका देखकर मारीच सुवर्णमृग के रूप में वहाँ टहलने लगा। इसलिए राम उसे पकडने पीछे दौडे। राम के वहाँ से हटते ही रावण राम का रूप धारण कर वहाँ आया। उसने सीता से कहा " मैंने मृग को महल में भेज दिया है। तुम पालकी में बैठकर चलो। सीता पालकी में बैठी। पर वह पालकी नहीं थी बल्कि रावण का पुष्पक विमान था। रावण सीता को ले गया। पर परस्त्री के स्पर्श से आकाशगामिनी विद्या नष्ट हो जाने की आशंका से उसने उसे स्पर्श नहीं किया।

दशरथ का स्वप्न

साकेतपुर में दशरथ को स्वप्न आया कि रावण ने सीता का अपहरण किया है। उसने ये समाचार राम को भेजे। राम इसपर सोच ही रहे थे कि सुग्रीव और हनुमान वाली के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए वहाँ आये। राम की व्यथा जानकर सीता की खोज करने का उन्होंने अभिवचन दिया।

हनुमान का लंकागमन

हनुमान लंका गये। उन्होंने सीता को राम का क्षेम कुशल बतलाया और सान्त्तवना देकर वे लौटे। लक्ष्मण ने वाली को मारकर सुग्रीव का संकट हटाया। अब राम वानरों के साथ रावण पर चढाई करने गये। उन्होंने विमान द्वारा सारी सेना लंका पहुँचाई।

वहाँ घमासान लडाई हुई। अन्त में लक्ष्मण के छोडे हुए चक्र से रावण का सिर उडा।

राम लक्ष्मण ने ४२ वर्ष तक दिग्विजय यात्रा की। दोनोंका सम्मिलित राज्याभिषेक साकेतपुर में हुआ। लक्ष्मण की १६००० रानियाँ थीं और राम की ८०००।

साकेतपुर का राज्य भरत शत्रुघ्न को देकर राम लक्ष्मण वाराणसी लौटे। सीता के विजयराम आदि आठ पुत्र थे।

लक्ष्मण की मृत्यु

लक्ष्मण एक असाध्य रोग की पीडा से मृत्यु को प्राप्त हुए। तब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीचन्द्र का राज्याभिषेक किया और सीता के पुत्र अजितजय को युवराज बनाया। राम, सुग्रीद अणुमान, बिभीषण आदि ५०० राजाओं के साथ दीक्षा लेकर वे मुनि बने। सीता ने भी अनेक रानियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। ३५० वर्ष का संयम पालकर राम को केवलज्ञान प्राप्त होता है। राम, अणुमान, अन्त में मोक्षगामी बने।

लक्ष्मण नर्क में गये हैं किन्तु वहाँ की आयु पूर्ण कर संयम धारण कर उन्हें भी मोक्ष प्राप्त होगा।

जैन और जैनेतर कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन चौथे अध्याय में किया गया है इसलिए यहाँ केवल जैनेतर रामकथा तथा जैन रामकथा इन दोनों में कथा, पात्र, चरित्र, व्यक्तित्व, दार्शनिक दृष्टिकोण, कथोपकथन शैली तथा प्रभाव आदि का पारस्परिक संबंध स्पष्ट करेंगे।

संस्कृत और जैन रामकथाओं का पारस्परिक संबंध :

वाल्मीकि रामकथा तथा जैन कथाओं की संक्षिप्त कथावस्तु को जान लेने पर अब हम वाल्मीकि तथा जैन राम काव्यों की कथा के पारस्परिक संबन्धो का विश्लेषण करेंगे।

सबसे पहले हमें इन रामकाव्यों की भाषा का विचार करना आवश्यक है। वाल्मीकि ऋषि थे। वैदिक संस्कृति के वे एक महान नेता भी थे। इस पृष्ठभूमि पर उनकी साहित्यिक भाषा संस्कृत याने देववाणी होना अनिवार्य था। देववाणी में लिखित यह भाषा केवल देववाणी संस्कृत के पठन पाठन के जो अधिकारी थे उन्हीं के लिए लिखी गई थी। तपस्वी वाल्मीकि ने जो भी रामचरित हस्तामलक-वत् साक्षात् देखा। उसका वर्णन उन्होंने स्वानुभूति के कारण यथातथ्य किया है। उन्होंने उस युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में राम का वर्णन किया है अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ पुरुष वर्णनपर देववाद या अवतारवाद की छाया अपने आप आ गई है।

पउमचरियं की जैन रामकथा की भाषा प्राकृत है जो उस काल की सर्व सामान्य जनता की भाषा थी, रामकथा तो लोगों में प्रसिद्ध थी पर पूर्व परंपरा से प्राप्त कथाबीज लोक में अधिक प्रचलित नहीं होने से जैन रामकथा साहित्य प्राकृत में ही अधिक है। संस्कृत जैन रामकथासाहित्य विद्वानों को इस की ओर

आकर्षित करने तथा जैनाचार्य या जैन श्रमण के रूप में दीक्षा ग्रहण किये हुए साधुओं के अध्ययनार्थ, संस्कृत विद्वानों की भाषा होने से विद्वत्ता के प्रकटनार्थ तथा वाल्मीकि रामायण से प्रभावित होने से निर्माण हुआ हैं।

संस्कृत जैनेतर रामकाव्य जिस भू-भाग में निर्माण हुआ तथा वह जहाँ पनपा उसी भूखण्ड में जैन रामकाव्य पनपने के कारण आगे चलकर उनमें पारस्परिक स्नेहसंबंध तथा वैचारिक आदान प्रदान होना अनिवार्य एवं आवश्यक ही था। इस वातावरण के कारण हम देखते हैं कि परवर्ती जैनेतर राम काव्य पर जैन रामकथा का और जैनेतर रामकथा का जैन रामकाव्यपर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इस वस्तुस्थिति को देखते हुए रामकाव्य का विविध भाषाओं में प्रवेश भारतीय संस्कृति के विकास एवं संवर्धन की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण है।

दोनों परम्पराओं की कथावस्तु का पारस्परिक सबन्ध स्पष्ट करने के लिए हम उसका निम्नलिखित रूप में विवेचन करेंगे।

(१) कथा
(२) पात्र
(३) चरित्र
(४) व्यक्तित्व एवं दार्शनिक दृष्टिकोण
(५) कथोपकथन शैली
(६) प्रभाव एवं मूल्यमापन
(७) भाषा।

कथा

वाल्मीकि रामकथा -- कथा की दृष्टि से देखा जाय तो यह कथा ब्रह्म से सुनी हुई कथा है। पुत्राभाव से पीडित दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ के द्वारा पुत्रप्राप्ति चाहते हैं। यज्ञों के द्वारा उन्हें इष्ट प्राप्त होता है।

विश्वामित्र के द्वारा यज्ञों की रक्षा के लिए राम की मांग की जाती है और रामलक्ष्मण ऋषियों की यज्ञरक्षा करते हैं। परंतु वाल्मीकि ने रामजन्म का हेतु अधिक स्पप्ट किया है और वह है रावण तथा राक्षसों का संहार और रामायण के अंत में राक्षसों का संहार तथा यज्ञधर्म की पूर्णता ही प्रतीत होती है।

तुलसी ने उसी कथा को भक्तिकथा बनाया है और उसके द्वारा अपनी संस्कृति एवं धर्म का प्रभाव बढाया है। कलिकाल में बढते हुए अधर्म को हटाने में यही एक समर्थ साधन के रूप में उन्होंने उसे ग्रहण किया और उनकी अवतार-लीला का वर्णन किया। इसमें उन्होंने पौराणिक सूत्र के साथ लोककथा के सूत्रों को भी जोडकर अपनी मौलिकता सिद्ध की है।

जैन रामकथा :

जैन रामकथा में राम की भक्ति या अवतार के रूप में उनका महत्त्वपूर्ण वर्णन नहीं होने से रामकथावस्तु का दृष्टिकोण ही बदल गया है और इसी कारण राम कथा जैन रामकाव्यों में बहुत ही पश्चात आती है। राम बलदेव थे इसलिए त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र के अन्तर्गत उनका चरित्र पूर्व परंपरा के अनुसार ही कहा गया है।

पर दोनों कथाओं की आदि में साम्य दिखाई देता है। वहाँ ब्रह्माजी के मुख से रामकथा वाल्मीकि सुनते हैं तो जैन रामकथा भगवान महावीर के मुख से उनके शिष्य सुनते हैं। वाल्मीकि स्वयं ही कथा रचते हैं तो यहाँ कथा की रचना दीर्घकाल के बाद विमल ने रची है। इसलिए पूर्व के अनुसार आचार्य परंपरा से एवं अपने गुरुमुख से प्राप्त कथा का विस्तार यहाँ बताया गया है। कथावस्तु में यह जो महद्‌ंतर है इसी कारण इन दो परंपराओं के पात्रों में भी महदंतर आया है।

२. पात्र :

राक्षसों का संहार करने के लिए अवतरित भगवान की लीला प्रस्थापित करने के उद्देश्य के कारण पात्रों में हम तीन प्रकार के पात्र ही देखते हैं—

१. राम के लिए पूजनीय पात्र–माता, पिता, गुरुजन आदि।
२. राम के सहायक पात्र।
३. राम के विरोधी पात्र।

इन तीन प्रकार के पात्रों का केन्द्रबिन्दु राम होने के कारण राम के प्रति जो पूजनीयता है उतनी ही पूजनीयता राम के लिए पूज्य पात्रों को है इस लिए विभिन्न ऋषिमुनि आदि का वर्णन आया है।

राम के सहायक पात्रों का चित्रण सज्जनता, चातुर्य, वीरता तथा अन्य गुणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। राम सहायक बनने के कारण ही वानरों को गौरव दिया गया है अन्यथा वानरों को वे तुच्छ संज्ञा से संबोधित करते थे।

विरोधी पात्रों में रावणादि राक्षसों का वर्णन ही ऐसा है जो उनके प्रति घृणा निर्माण कर उन्हें दुर्जन या खल पात्रों के रूप में बदल देता है। वाली का पाप यही है कि वह राममित्र सुग्रीव का विरोधी है। इस प्रकार विशिष्ट उद्देश्य से पात्रों का चित्रण किया गया स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

पात्रों के चित्रण में हमें आर्य–अनार्य का दृष्टिकोण तथा उनके प्रारंभिक संघर्ष का भी पता चल जाता है।

जैन रामकथा के पात्रों में इस प्रकार का विभाजन होने के लिए अंशमात्र भी स्थान नहीं है। उनके राम न तो भगवान हैं न पूजनीय व्यक्ति। इसलिए जैन रामकथा के पात्रों का चित्रण कथा के अनुसार ही प्रायः किया गया है।

आर्य और अनार्यों की उच्चनीचता का प्रश्न नहीं होने के कारण राक्षसों का तथा वानरों का चित्रण उनकी योग्यता के अनुसार और अनुकूल हुआ है। वानर भी मानव हैं और राक्षस भी। यही नहीं तो इक्ष्वाकु वंश, राक्षसवंश, वानरवंश या विद्याधरवंश ये सारे वंश परस्पर संबद्ध हैं और उनमें उचित रोटीबेटी व्यवहार भी है।

ऋषभदेव के पुत्र इक्ष्वाकु, सूर्य या सोमवंश के निर्माता हैं। उन्हीं के पौत्र नमि, विनमि, विद्याधर वंश के निर्माता हैं। इन्हीं विद्याधरों में से राक्षसवंश की निर्मिति हुई है और राक्षसों की मदद से ही श्रीकंठ से वानर वंश की निर्मिति हुई है। इस प्रकार भारत वर्ष के आर्य और अनार्य समझे जानेवाले वंशों में एकता तथा अभिन्नता होने से यहाँ राक्षसों के संहार की कोई भावना नहीं उठी है तथा यज्ञयाग की रक्षा के लिए युद्ध नहीं हुए हैं।

इसी कारण रावण, वाली, कैकेई या अन्य पात्रों के दृष्टिकोण में भी बडा अंतर आ गया है।

चरित्र चित्रण :

पात्रों के अनुसार चरित्र चित्रण किया जाने से मूल चरित्र चित्रणों में बहुत बड़ा अन्तर आ गया है। भक्तिभावना का अभाव ही इसका प्रमुख कारण है। उसके साथ कवि का अपना निजी दृष्टीकोण भी इसमें महत्त्वपूर्ण रूप से सहायक हुआ है।

वाल्मीकि रामकथा में राम सर्वोपरि होने से अन्य पात्रों का चित्रण सामान्यतः दबा हुआ सा प्रतीत होता है। विशेषतः हनुमान के बारेमें हम बहुत ही कम जानते हैं। उसका वैयक्तिक महत्ता की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं। केवल रामसेवक के रूप में उनका चित्रण है और वही उनकी महत्ता का प्रमुख आधार है। कैकेई ने अपने पुत्र के लिये राज्य मांगा और राम को उसने वनवास दिया। इस कारण कैकेई का चरित्र केवल दुष्ट चरित्र ही बन गया। इस घटना के पूर्व कैकेई का जो वीरांगना का स्वरूप था उसके विकास के लिए कहीं आगे कोई स्थान या अवकाश ही न मिला। राम के प्रभाव में आये हुए पात्रों के वैयक्तिक जीवन का चित्रण उसमें नहीं हो सका।

जैन रामायण में शुरु में ही विविध वंशों की चर्चा आने से एक वंश का दूसरे वंश से श्रेष्ठ कनिष्ठ होने का प्रश्न ही नहीं उभरता। इसलिए सब वंशों में

श्रेष्ठ पात्रों का चित्रण हो सका है। इन वंशों की कन्याओं का आदान प्रदान भी हो सका है।

अतिरंजितता, काल्पनिकता या असंगति राक्षस या वानरों के पात्रों से हटाई जा सकी है। इसी का परिपाक राम, लक्ष्मण तथा हनुमान की पत्नियों की संख्या के रूप में हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि राजकार्य ही ऐसा है कि जितना अधिक राज्यविस्तार होगा उतना ही राजाओं से उनके संबन्ध बढते हैं और इस कारण यहाँ चरित्र का इस प्रकार का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। राम का एकपत्नीव्रत और हनुमान का ब्रह्मचारी रूप संस्कृति की दृष्टि से जैनेतर परंपरा के लिए उपास्य एवं श्रद्धेय होनेके कारण वहाँ पर ऐसा कथा विकास न हो सका।

चरित्र चित्रण के इस विभेद के कारणों में हमें दार्शनिक दृष्टिकोन को भी समाविष्ट करना होगा।

दार्शनिक दृष्टिकोन

जैनेतर परम्परा के अनुसार जो काल यज्ञों की महत्ता सिद्ध करता था, इष्ट सिद्धि का साधन यज्ञ याग ही बताया जाता था। उन यज्ञों का विधिविधान करनेवाले ब्रह्मर्षियों का अत्यधिक महत्व था। उस काल में रचित वाल्मीकि काव्य में उनकी महत्ता प्रस्थापित होना स्वाभाविक था। इसी कारण जो लोग यज्ञों को नहीं मानते थे तथा उसका विरोध करते थे उन्हें राक्षसों की संज्ञा दी गई और इस प्रकार उनका संहार धर्म का एक प्रमुख अंग बन गया था। इन यज्ञों का संबंध ब्राह्मण तथा क्षत्रियों से ही रहा। अन्य दो वर्णों में वैश्य तो कृषि तथा व्यापार में लगे रहे, पर शूद्र से जो लोग केवल सेवा ही कर पाते थे वे वानर की संज्ञा को प्राप्त हुए। राम की सेवा करने का कार्य जिन्होंने किया उनकी मुक्ति हुई। रावण ने राम से विरोध किया पर उसे भी विरोधी भक्ति कहकर राम की महिमा बढाई गई।

तुलसी के काल में यज्ञ का महत्त्व कम हो गया और भक्ति का महत्त्व बढ गया इसलिए रामचरित मानस में भक्तिदर्शन का ही महत्त्व उस महाकाव्य में प्रतिपादित है। विष्णु की भक्ति और भक्तों की रक्षा के लिए तथा दुष्टों के दमन के लिए भगवान के अवतार की कल्पना इस प्रकार के देवतावाद का प्रचार वाल्मीकि तथा तुलसी की रामकथा में हमें दिखाई देता है।

जैन रामकथा परंपरा के लोग विश्वनिर्माता परमात्मा को नहीं मानते। इसी कारण उसमें शुरू में ही विश्व स्थिति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। राम एक वीर धर्मपुरुष हैं इसलिए वह कर्ममार्ग का आचरण करते हैं और इसी कारण

उन्होंने रावण से नहीं किन्तु अधर्म से युद्ध किया है। इसके साथ ही जैन दर्शन की महत्ता इस रामकाव्य के द्वारा स्थापित होने से प्रत्येक पात्र के आचरण, विचार और कार्यों पर उसकी छाया पडी हुई दिखाई देती है। युद्धकार्य में अधिक हिंसा न हो इस दृष्टि से विचार किया है। आदि में भरत बाहुबली का युद्ध वर्णित है। उसमें सेना का संहार टालने के लिए दोनों में ही युद्ध का संक्षेप करना उन्होंने मान लिया। रावण विद्यासाधना में रहा तबतक रामने उस पर प्रहार नहीं किये।

जैन दर्शन का कर्मवादी सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है जिससे हम अपने प्रत्येक शुभाशुभ कर्म का फल अवश्य पाते हैं। पूर्वजन्मों का विवरण जैन रामकथा का महत्त्वपूर्ण अंश है जिससे कर्मवाद का स्वरूप स्पष्ट होता है।

भौतिक सुख से श्रेष्ठ आध्यात्मिक सुख है इसलिए प्रमुख पात्र भौतिक सुखों को छोड आध्यात्मिक सुख की ओर बढते हैं। परम प्रभावी वाली रावण को मार सकता था फिर भी सुग्रीव को राज्य देकर वह मुनि बना।

सीता को प्रव्रज्या लेकर साध्वी बनी हुई दिखाया है तथा रामने मुनिव्रत लिया है। इन सब घटनाओं में जैन दर्शन का प्रभाव ही स्पष्ट होता है। जैन दर्शन के कारण ही रामकाव्यों की भाषाओं में विभेद है।

भाषा :

जैनेतर काव्य की भाषा देववाणी संस्कृत है। वेदों की वह पवित्र भाषा मानी जाती थी। केवल ब्राह्मणों को ही पठनपाठन का अधिकार था। स्त्रियों के लिए उसके पठन का निषेध था। इस प्रकार की श्रेष्ठ भाषा में ही पहली रामकथा लिखी गई है। अर्थात् वेदकाल के पश्चात अधिक वर्षों का अन्तर पड जाने से उसकी भाषा ने साहित्यिक भाषा का नया रूप ग्रहण किया। पर जैनेतर राम-काव्य उस काल की सामान्य लोक भाषा में एवं प्राकृत में नहीं लिखा गया। इसमें प्राकृत के प्रति तुच्छ भाव तो था ही पर वह प्रतिस्पर्धी जैन दर्शन की भाषा होने से उसका प्रयोग नहीं हुआ। परंतु साहित्य में समाज का एवं युग का प्रतिबिम्ब होता है। इससे ही जैनेतर रामकथा आगे चलकर तुलसी के द्वारा प्राकृत भाषा में ही आ गई और आगे चलकर विविध प्राकृत भाषाओं में वह विकसित होती रही।

जैन रामकाव्य की भाषा प्राकृत रही है इस प्राकृत भाषा के साथ संस्कृत में भी जैन रामकथा साहित्य को निर्माण हुआ। इस प्रकार जैन रामकथा की भाषा और जैनेतर रामकथा की भाषा का आदान प्रदान दोनों परंपराओं में कई युगों तक चलता रहा।

जैन रामकथा संस्कृत और प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के काव्यों की परम्परा से निर्माण हुई है।

हर युग में रामकथा की भाषा बदली है और इस प्रकार का परिवर्तन लोगों के समीप जाने के लिए प्रत्येक साहित्य में आवश्यक ही है। रामकथा दोनों परंपराओं में संस्कृत से प्राकृत में – प्राकृत से अपभ्रंश में और अपभ्रंश से अब विविध प्रान्तिक भाषाओं में आ गई है। भारत ही नहीं भारत के बाहर जाकर वह अनेक विदेशी भाषाओं में प्रचलित होकर अपना गौरव बढा रही है।

प्रभाव

रामकथा का प्रभाव भी उसके युग पर भिन्न भिन्न रूपों में पडा है। आदि कवि की काव्यवाणी भगवान पर भरोसा रखकर उससे मदद मांगने को कहती हैं। भगवान हमारे सब दुख दूर करनेवाले हैं। वे हमारे लिए इस भूमि पर अवतार लेते हैं। भक्तों की रक्षा एवं दुष्टों का निर्दालन वे ही करते हैं इस प्रकार की भावना रखकर लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा बढाने का कार्य वाल्मीकि के रामायण द्वारा हुआ। तुलसीदास ने भक्ति का मार्ग सोज्वल करते हुए राम के चरणों में समर्पित होने की प्रेरणा दी।

इन दोनों रामकथा की प्रेरणा–गृहस्थ के रूप में अपने कर्तव्य करने पर प्रभुभक्ति से मनुष्य अपना आत्मविकास पा सकता है, यही है। राम और राम के साथ असंख्य वानर, देव विमान में बैठकर वैकुंठ में चले गये। इस घटना से भी यही प्रकट होता है।

जैन रामकथा भौतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन की ओर जाने का एक साधन समझती है। इसलिये भौतिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन अतिश्रेष्ठ है, यह प्रेरणा जैन रामायण के पात्रों के द्वारा सिद्ध की गई है।

रामायण के सारे प्रमुख पात्र अंत में मुनिचर्या स्वीकारते हैं। ऋषभपुत्र भरत को पराजित करने में समर्थ बाहुबली मुनि बने। रावण को पराजित करने पर भी सुग्रीव को राज्य देकर वाली मुनि बने। वृद्धापकाल आते ही दशरथ ने मुनि दीक्षा लीं। भरत तो पहले से ही अपने भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थे। सीता भी आर्यिका बनी। राम भी इस भौतिक संसार से उदासीन हो अंत में मुनि बने।

इस प्रकार दोनों परंपराओं की कथावस्तु का प्रभाव भी हमें भिन्न भिन्न रीति से दिखाई पडता है।

जैनेतर रामकाव्य तथा जैन रामकाव्य की कथावस्तु एवं उनके पारस्परिक संबंध का विचार करने पर अब हम अगले अध्याय में जैन रामकथा का मूल्यांकन करेंगे।

अध्याय ४

जैन और जैनेतर रामकथाओं की पारंपरिक तुलना एवं उनका मूल्यांकन

जैन रामकथाओं की कथावस्तु का विवेचन हम पूर्व ही कर आये हैं। अतः हम इस अध्याय में जैन और जैनेतर रामकथाओं के घटनाक्रम के आधार पर पारंपरिक तुलना कर उसका मूल्यांकन करने का प्रयत्न करेंगे। इससे हमें जैन रामकथा की मौलिकता के स्वरूप की पहचान करने में सहायता प्राप्त होगी।

जैन रामकथा का आरंभ

किसी भी कथा का आरम्भ उस कथा की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। रामकथा में राम को अग्रिम महत्त्व प्राप्त होना अनिवार्य है। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि जैन रामकथा में राम को यह स्थान नहीं है। केवल राम को ही नहीं अपितु राम के वंश को भी यह महत्त्व प्रदान नहीं किया गया है।

ऋषभदेव का वर्णन

जैन संस्कृति के उद्धारक भगवान महावीर के पूर्व तेईस तीर्थंकर हो गये हैं और महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे। प्रारम्भ में यहाँ पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का जीवन संक्षेप में वर्णित है। ऋषभदेव आदि जिन-श्रेष्ठ हैं कि जिनके द्वारा वन्य संस्कृति में असि, मसि और कृषि की संस्थापना हुई। विद्या और कला का प्रचार हुआ और मनुष्य जीवन में संस्कृति एवं संस्कारों का श्रीगणेश हुआ। वे प्रथम राजा, प्रथम मुनि और प्रथम तीर्थंकर भी थे। राजपद पर स्थापना होनेके पूर्व ही उनके द्वारा वंश की स्थापना हुई। बालक ऋषभ ने अपने पिता के साथ दरबार में आया हुआ इक्षुदण्ड ग्रहण करने की चेष्टा की जिससे इक्ष्वाकु नामाभिधान प्राप्त हुआ। इस प्रकार राजा ऋषभदेव की परंपरा में जनमे हुए राजा दशरथ एवं राम इक्ष्वाकु कुल के माने गये।

मुनि बनने के पूर्व ऋषभदेव ने अपने पुत्रों में अपने राज्य का वितरण किया। उस समय अनुपस्थित उनके पौत्र नमि और विनमि ऋषभदेव के मुनि बनने पर आये। देवताओं के द्वारा उन्हें वैताढच पर्वत पर स्थान मिला। विविध प्रकारों की

विद्याओं से संपन्न होने के कारण वे विद्याधर कहलाए और उनके पूर्व पुरुष विद्याधर वंश के भी आदि पुरुष माने गए। इन्हीं विद्याधरों में से लंकाद्वीप के राजा महाराक्षस एवं श्रेष्ठ राजा थे जिससे उनके वंशजों को राक्षस वंश की संज्ञा प्राप्त हुई। वानरद्वीप पर बसे हुए विद्याधर वानर वंशीय कहलाए।

इस प्रकार जैन रामकथा में विवेचित तीन वंश प्रभावी हैं। इन तीनों अर्थात् ईक्ष्वाकु, राक्षस और वानर वंशों में उच्चनीचता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जैन रामकथा में वंशविग्रह या वर्णविग्रह का संघर्ष नहीं दिखाई देता।

ऋषभदेव के वर्णन के द्वारा रामकथा में इक्ष्वाकु, विद्याधर और राक्षस एवं वानर वंशों में परस्पर पूरा समन्वय मिलता है और इन सब वंशों में केद्रस्थ भगवान ऋषभदेव हैं इसलिए उनका चरित्र आदि में वर्णन कर रामकथा लेखकों ने बडा औचित्य प्रकट किया है।

जैन रामकथा में दिखाई देनेवाली ये सारी बातें और उनम भी भगवान ऋषभदेव का प्राधान्य सारी रामकथा में इन तीनों वंशों की " कौटुम्बिक कक्षाओं " का सूत्रपात करने में सिद्ध हो जाता है। सीतापहरण का निमित्त पाकर वह संघर्ष की कथा बन गई है। इन चारों वंशीयों में आचारों ओर विचारों का आदान-प्रदान होता आया है। मित्रता एवं बन्धुभाव के सूत्र से भी वे बन्धे हुए थे। यह सामंजस्य जैन रामकथा का एक मौलिक अंग है।

जैनेतर रामकथा :

जैनेतर रामकथा में इस प्रकार के सामंजस्य का सम्पूर्ण अभाव है। वहाँ आर्य और अनार्यों के संघर्ष की कहानी विद्यमान है। देव और दानवों का युद्ध मानों स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आया है। भगवान विष्णु ने अपने को चार अंशों में विभक्त कर दशरथ के घर जन्म लिया। उनके जन्म का हेतु रावण वध था जो प्रारम्भ से ही स्पष्ट है। इसलिए रावणादि दानवों की संहार लीला करनेवाले भगवान राम विष्णु का अवतार है यही बात जैनेतर रामकथा में प्रतिपादन की गई है।

जैन तथा जैनेतर रामकथा के प्रारम्भ में जो भिन्नता मिलती है उससे दोनों परम्परा के दृष्टिकोणों की भिन्नता प्रतीत हो जाती है।

जैन रामकथा की वस्तु इस देश के अनार्य और बाहर से आये हुए आर्यों के सम्बन्धों में एक नया प्रेमसूत्र प्रस्थापित करती है। यहाँ के निवासियों में जो लोग थे वे सभी एक ही केंद्रीय वंशपरंपरा के थे। स्वभाव, वातावरण और परिस्थिति के कारण उनमें विभिन्नता आई फिर भी उनमें से न कोई उच्चवंशीय माना

जाता था न कोई नीच। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की जन्मजात जातियाँ न थी। वे तो कर्मों से किये गये सामाजिक विभाग थे।

भगवान ऋषभदेव से ही जैन रामकथा का प्रारंभ एक अन्य सूत्र भी प्रकट करता है जिससे हममें आत्मीयता या एकरूपता उत्पन्न हो सकती है। जैन परम्परा के साथ जैनेतर परम्परा भी ऋषभदेव का स्वीकार करती है। विष्णु के चौबीस अवतारों में आठवाँ अवतार ऋषभदेव का माना जाता है।

भारतीय परम्परा में उपलब्ध एकता एवं घनिष्टता की प्रतिष्ठा भी इनकी कथा के द्वारा हुई है।

इतना जैन रामकथा के प्रारंभ के विषय में विवेचन कर लेने पर अब हम जैन रामकथा की कथावस्तु के स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

जैन रामकथा में राम जन्म :

राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं जिनके क्रमशः नाम अपराजिता, सुमित्रा और कैकेई थे। स्वयम्भू की रामकथा के अनुसार दशरथ की एक चौथी रानी थी जिसका नाम सुप्रभा था। शत्रुघ्न सुप्रभा का पुत्र था। एक दिन सोई हुई अपराजिता ने उत्तम स्वप्न देखे। उनमें उसने कुन्दपुष्प के वर्णवाले सिंह तथा सूर्य एवं चन्द्र को देखकर वह जाग गई। उन स्वप्नों में सूचित शुभ फल की परिणती के रूप में उसने राम (पद्म) को जन्म दिया। स्वयम्भू ने चार पुत्रों के जन्म का सरल वर्णन किया है। आचार्य हेमचन्द्र के अपराजिता ने गज, सिंह, चन्द्र तथा सूर्य को स्वप्नों में देखा। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने कहा है कि ये चार स्वप्न बलभद्र के सूचक थे। गुणभद्र की रामकथा भी जन्म के विषय में एक पंक्ति में इसी का अनुमोदन करती है।

इस तरह रामजन्म का प्रसंग जैन रामकथा में अत्यन्त सरलता के साथ विवेचित है। यह कहना आवश्यक है कि बलभद्र के सूचक स्वप्न उनकी माता ने देखे। स्वप्नशास्त्र के अनुसार वे महान, बलशाली एवं समृद्धिसंपन्न थे।

भारतीय निवासियों में एकता का प्रतिपादन और राम, रावण, तथा वानर कुलों की उत्पत्ति एक ही केन्द्रीय वंश से संपन्न है। ये जैन रामकथा की मौलिक उपलब्धियाँ हैं।

जैनेतर रामकथा में रामजन्म :

जैन रामकथा के इस जन्म के वर्णन के साथ जैनेतर रामकथा की कथावस्तु की यदि हम तुलना करें तो राम के प्रति दृष्टिकोण की भिन्नता अपने आप सिद्ध होगी। वाल्मीकि रामायण में देव आर्त स्वर से विष्णु की प्रार्थना करते हैं कि–

" आप स्वयं को चार अंशों में विभाजित कर मनुष्य रूप धारण कर लोकपीडक रावण को समर में नष्ट कीजिए।"[1] इसपर देवों को विष्णु ने आश्वासित किया कि " हे भद्र, तुम भय तज दो। मैं युद्ध में पुत्र, पौत्र, मन्त्री तथा ज्ञातिबान्धवों के साथ क्रूर, दुष्टात्मा और देवर्षियों को भय देनेवाले रावण को मारकर ग्यारह सहस्र वर्षोंतक इस पृथ्वी का पालन करने के लिए मनुष्य लोक में निवास करूंगा।"[2]

जैनेतर रामकथा पर अवतारवाद की जो छाया है उसका सम्पूर्ण अभाव जैन रामकथा में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार पुराणों के अवतारवाद से पूर्णतः तटस्थ रहकर राम के व्यक्तित्व की श्रेष्ठता उनकी माता के चार स्वप्नों के द्वारा जैन रामकथाओं में सिद्ध की गई है।

जैन रामकथा में अवतारवाद का कहीं कोई महत्त्व प्रतिपादित नहीं है। वहां राम पुरुषोत्तम के रूप में पैदा हुए हैं। फिर भी वे सर्वश्रेष्ठ पुरुष नहीं थे। अपने पुरुषार्थ से वे महान एवं श्रेष्ठ बन गये हैं।

यह भी जैन रामकथा की एक मौलिक भिन्नता को ही प्रकट करनेवाली बात है।

राम की शिक्षा–दीक्षा :

जैन रामकथा में राम के शिक्षक का स्पष्ट उल्लेख आया है जो इस प्रकार है।

काम्पिल्य नगरी में एक भार्गव नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी अचिरा की कुक्षी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अति दुलार के कारण वह दुराचारी बना। अतः पिता ने उसे घर से निष्कासित किया तब केवल दो पहने हुए वस्त्रों सहित वह राजगृह नगर में पधारा। वहाँ धनुर्वेद के अतिकुशल आचार्य वैवस्वत अपने हजार शिष्यों के साथ रहते थे। यहाँपर उस भार्गव पुत्र ने लक्ष्यवेध की शिक्षा प्राप्त की और इस विद्या में वह अतिकुशल बना और साकेत नगरी में

---

१. विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम्।
अत्रत्वं मानुषो मत्वा प्रवृद्धं लोक कष्टकम्।
अवध्यं दैवतर्विष्णो समरे जहि रावणम्॥ वा. रा. १।१५।२०, २१

२. भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रसामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्॥
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानिच।
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम्॥ वा. रा. १।१५।२७, २८, २९।

या। उसकी शस्त्रकुशलता से संतुष्ट होकर राजा दशरथ ने रामलक्ष्मणादि कुमारों की। शिक्षाकार्य उन्हें सौंपा। भार्गवपुत्र ने शस्त्रास्त्र विद्या तथा राजनीति में पूर्ण निपुण बनाया। इस प्रकार अपने पुत्रों को योग्य और शिक्षाविद् देखकर सन्तुष्ट हो राजा ने संपत्ति और धनधान्य से उनके गुरू की योग्य गुरूपूजा की।[3]

जैनेतर रामकथा में राम की शिक्षा दीक्षा वशिष्ट, विश्वामित्र आदि मुनियों के द्वारा की गई है उस रामकथा के काल में ऋषियों के द्वारा दी जानेवाली शिक्षादीक्षा का प्रबन्ध जैन रामकथा के काल में न होने से उनकी शिक्षा का प्रबन्ध आश्रमों में नहीं किया गया।

सीता स्वयंवर के प्रयोजन में भिन्नता

सीता स्वयंवर जैन रामकथा में अधिक स्वाभाविकता से वर्णित है। उसमें सीता का ब्याह राम के साथ करने की राजा जनक की उत्कट अभिलाषा राम के गुणों के परिचय के कारण उत्पन्न हुई। उस काल में वैताढ्य के दक्षिण में अर्ध-बर्बर देश था। वहाँ के लोग म्लेच्छ जाति के तथा संयम एवं शीलरहित थे। आयरंग नामक एक शक्तिशाली राजा उस देश का अधिपति था। कांबोज शुक, कपोत, आदि शबरव्याप्त अन्य देशों में भी उस राजा के पुत्र राज्य करते थे। एक दिन किरात सेना के साथ उस बर्बर राजा ने जनक राजा पर आक्रमण किया। उस आक्रमण को हटाने के लिए राजा जनक ने दशरथ राजा की सहायता मांगी। जनक राजा की सहायता के लिए राजा दशरथ राम को राज्य सौंप कर जाने लगे। तब रामने उनसे विज्ञप्त की कि "हे महायशस्वी, मेरे रहते हुए पशु सदृश बर्बर पर आक्रमण के लिए आप न जाइए। दशरथ ने उन्हें समझाना चाहा पर रामने अपना हठ नहीं छोडा, जिससे अगतिक होकर दशरथ ने आक्रमण करने की राम को अनुमति दे दी। रामने आयरंग को पराजित किया। उसकी सेना भाग निकली। राम की यह वीरता देख जनक ने राम के साथ सीता का विवाह निश्चित किया।

इस प्रकार राम और लक्ष्मण के द्वारा एक राजा को उसके शत्रुओं से मुक्त करना जितना स्वाभाविक एवं वास्तविक है उतना यज्ञों की रक्षा के लिए राक्षसों का संहार करने का कार्य उतना स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता।

जैनेतर रामकथा में सीता स्वयंवर में धनुभंग की योजना परशुराम के निमित्त की गई है। धनुर्भंग होने से परशुराम क्रुद्ध होते हैं। और राम तथा परशुराम में वाग्युद्ध होता है।

---

३. प. च वि. २५।२६

जैन रामकथा में धनुभग का प्रसंग उपरोक्त घटना से बिलकुल विपरीत होने से अपनी भिन्नता प्रकट करता है।[४]

एक दिन मुनि नारद सीता के महल में प्रविष्ट होने गये किन्तु वहाँ से उनको अपमानित कर धक्के देकर बाहर निकाला गया। अपमान से क्रुद्ध होकर नारद ने इसका बदला लेने की ठानी। उन्होंने सीता के चित्र आलेख कर विद्याधरराज चन्द्रगति के पुत्र भामण्डल को बताया। मीता का चित्र देख भामण्डल विमोहित हुआ। चंद्रगति को इस बात का पता चला तब उसने जनक को विद्याधर के द्वारा वहाँ बुलवाया ओर सीता की याचना की। जनक राजा ने अपने को वचनबद्ध बताया तब चन्द्रगति ने धनुष्य देकर कहा " जिस किसी में भी इस धनुष्य पर डोरी चढाने की सामर्थ्य हो उसी के साथ सीता का ब्याह तय किया जाय। " आपद्धर्म के रूप में जनक ने इस शर्त को मान लिया।

जैन रामकथा की यह घटना युगानुकूल जान पडती है। पर जैनेतर रामकथा की घटना एक ही विष्णु के दो दो अवतारों का साथ होना तथा उनमें पारस्परिक संघर्ष को चित्रित करते हुए अवतारों की महिमा के सिवा अन्य कोई अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं करती।

राम वन निर्वासन :

जैन रामकथा में राम वन निर्वासन की घटना चित्रित है जो जैनेतर रामकथा में वर्णित रामकथा से महदंतर रखती है।

कैकेई पुत्र भरत जन्म से ही विरागी थे। राम का सीता से ब्याह हुआ उस समय कैकेई ने जानबूझकर ही भरत के ब्याह का भी प्रबन्ध किया था।

एक दिन राजा दशरथ ने सर्वभूतशरण मुनि से अपने पूर्वजन्म की कथा सुनी। जिससे उनका मन वैराग्यप्रवण बना। अपनी संयमाभिलाषापूर्ति के लिए उन्होंने रामचन्द्र को राज्याधिष्टित करने का निश्चय किया। राजा की प्रव्रज्या लेने की बात जानकर अन्तःपुर में शोक का साम्राज्य छा गया। भरत ने जब यह बात सुनी तब उनका वैराग्य भाव प्रबुद्ध हो उठा और उन्होंने भी प्रव्रजित होने का अपना दृढ निश्चय प्रकट किया।

रानी कैकेई ने जब यह देखा कि वह पति के साथ पुत्र को भी खो रही है तब उसने किसी तरह पुत्र को रोक लेने की बात सोची। इसीलिए उसने राजा से अपने पूर्वदत्त वर की माँग की। राजा ने अपनी दीक्षा को छोड चाहे जो वर देने की स्वीकृति दी। कैकेई ने भरत के लिए राज्य माँगा जिससे पिता की आज्ञा से

---

४. प. च. वि. २७।७ से ४१।

भरत को अनिच्छा से राजपद ग्रहण करना पडा। श्रीरामचंद्रजी नें पिताजी की आज्ञा मान ली पर वे जानते थे कि भरत उनकी उपस्थिति में राज्य ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिए उन्होंने स्वेच्छा से वनगमन स्वीकार किया।

जैन रामकथा के इस प्रसंग के साथ हम जैनेतर रामकथा कें प्रसंग की भी तुलना प्रस्तुत करेंगे।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार कैकेई की दासी मंथरा के द्वारा भरमाई गई कैकेई दो वर माँगती है। एक वर से वह भरत को राज्य दिलाती है। दूसरे वर से वह राम को चौदह वर्ष का वनवास दिलाती है।[५]

तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में भी यही बात स्वीकार की है। पर वहाँ सरस्वती को सहायक बनाया गया है। कैकेई ने राजा दशरथ से कहा -- "हे प्राणप्यारे, सुनिए। मेरे मन को भानेवाला एक वर प्रदान कीजिए -- भरत को राजतिलक और हे नाथ दूसरा वर भी मैं हाथ जोडकर माँगती हूं जिससे राम को वनवास देकर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए[६]।

जैन रामकथा के अनुसार एक ही वर कैकेईने मांगा है जिसका हेतु भरत को राजपद देना है। जैनेतर रामकथा में दूसरे वर में कैकेई के चरित्र के साथ योग्य न्याय नहीं किया गया है। कैकेई का वर्णन जैनेतर रामकथा में एक वीरांगना तथा राम के प्रति भरत सा स्नेह रखनेवाली माता के रूप में किया गया है। फिर वह उसे चौदह साल का वनवास क्यों देगी। भरत को राज्य मिले यहीं तक उसका स्वार्थ सीमित था। राम का निर्वासन उसके प्रति संदेह का भाव प्रकट करता है जिसका संपूर्ण अभाव कैकेई के चरित्र में दृष्टिगोचर होता है। मंथरा जब कैकेई के कानों में जहर ऊंडेलती हुई कहने लगी—

"भरत से सुतपर भी सन्देह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह।"[७]

इसपर क्रोधित होकर कैकेई कहती है--

"हमारे आपस के व्यवहार
कहाँ से समझे तू अनुदार,

---

५. तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ।। वा. रा. १८।२३।

६. सनहु प्रानप्रिय भावत जीका, देहु एक वर भरत हि टीका।
मांगउ दूसर वर कर जोरी, पुरवहु नाथ मनोरथ मेरी ।। रा. च. मा. २।२८।१

७. मैथिलिशरण गुप्त – साकेत – पृ. ४७।

हुआ भ्रूकुंचित भाल विशाल,
कपोलों पर हिलते थे बाल ।। "८

इस प्रकार राम के प्रति कैकेई की ममता संदेहरहित होनेपर भी उनके मुख से दूसरे वर की माँग करवाना उनके चरित्र को निकृष्ट कोटिका सिद्ध करना है। राम का अयोध्या में रहना भरत के लिए एक खतरे जैसी बात है ऐसा दिखाने में भरत की या कैकेई की कायरता सिद्ध होगी जो उनके वीरतापूर्ण चरित्र को हीन बना देता है ।

जैन रामकथा में रामके निर्वासन प्रसंग से कैकेई का वासल्य और राम की पितृभक्ति के साथ त्याग की भावना एवं भ्रातृप्रेम का आदर्श रूप प्रकट होता है। जैन रामकथा की कैकेई वीरबाला तथा वीरपत्नी थी। वह समयज्ञ और चतुरा भी जान पडती है। पुत्र की रक्षा के लिए उसने जो कुछ प्रपंच रचा उससे वह घृणा की नहीं अपितु सहानुभूति की अधिकारिणी बन गयी है।

भरत का चरित्र यहाँ पर जैनेतर रामकथा से अधिक ऊँचा सिद्ध होता है।

राम के चरित्र को वास्तविकता प्रदान करने पर भी वे यहाँ पर अधिक तेजस्वी प्रतीत होते हैं। जैन रामकथा में इस प्रसंग से रामचरित्र का उन्नयन हुआ है।

रामनिर्वासन और राजा दशरथ

जैन रामकथा में राम के निर्वासन का दुख सहकर भी राजा दशरथ संयम मार्ग में स्थिर है। इस प्रकार रामपिता के रूप में उनमें आवश्यक धैर्य, शौर्य एवं संयम आदि गुण दशरथ में दिखाई देते हैं।

जैनेतर रामकथा में राजा दशरथ अपनी रानी के अधीन होकर पति के रूप में निर्बल बताये गये हैं। इधर अपने वचन के पालनार्थ राम को वनवास भेजना और उनके जाते ही 'हा राम' कहकर वियोग से मृत हो जाना ये दोनों कार्य भिन्न भिन्न भावनाओं में विरोधाभास पैदा करते हैं।

जैन रामकथा में दशरथ राजा अपनी रानी के आधीन होकर निर्बल बनने से बचाये गये हैं। कैकेई की दुष्टता और राम के वियोग से मृत होने की दुर्बलता उनमें नहीं है। वे तो मानसिक आघातों को सहकर भी अपने जीवन को सफल बनाने के लिए संयम के मार्ग पर दृढता के साथ आगे बढे हैं।

---

८. मैथिलिशरण गुप्त – साकेत – पृ. ४७।

दण्डकारण्य की कथावस्तु में अन्तर

दण्डकारण्य की निर्मिति की कथा में जैन रामकथा एवं जैनेतर रामकथा की दृष्टियों में भी अन्तर दिखाई देता है ।

जैन रामकथा में दण्डकारण्य की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है --

एक काल ऐसा था जब कि यह सारा प्रदेश बडा ही समृद्धशाली था । दण्डक राजा उसका शासक था । उसकी रानियों में एक रानी जैन साधुओं की परम भक्त थी । एक दिन राजा ने एक ध्यानस्थ श्रमण को एक स्थानपर देखा । मजाक में उन्होंने उस साधु के पास हीं पडे हुए एक मृत सर्प को उठाकर उनके गले में डाल दिया । श्रमण तो ध्यानमग्न ही थे । राजाने लौटते वक्त देखा तो साधु ध्यानमग्न दशामें ही था और सर्प गलेमें --पश्चात्तापदग्ध होकर वह उनके पैरों में पडा । किसी एक परिव्राजक ने राजा की यह चेष्टा देखी । साधु के प्रति ईष्या से वह श्रमण का रूप लेकर राजा के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ । उसकी धृष्टता से क्रुद्ध होकर राजा ने सर्व श्रमणों को यंत्र में पेरने की आज्ञा दी । समस्त राज्य में जितने भी श्रमण थे उन्हें दण्डपात्र समझ कर पकड लिया गया और जिस प्रकार ईख को यंत्र में पेरते हैं उस प्रकार सबको पेरा गया ।

उस समय एक तपस्वी श्रमणाचार्य राज्य के बाहर से पधारे थे । उन्होंने इस क्रूर कार्य को देखा । श्रमणों के कुचले हुए शरीर देखे । उनकी भोहें तन गई । क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने तपस्तेज से अग्नि प्रकट कर वह समृद्ध प्रदेश जला दिया । इस प्रकार यह दण्डक अरण्य बन गया । इस तरह दण्डक देश दण्डकारण्य में परिवर्तित हुआ ।

इस प्रकार की जैन और अजैन परंपराओं में परस्परविरोध एवं संघर्ष प्राचीन काल से अस्तित्व में था जिसका प्रमाण उपर्युक्त कथा है ।

वाल्मीकि रामायण में दण्डकारण्य का वर्णन :

वाल्मीकि रामकथा में दण्डकारण्य का वर्णन इस प्रकार है--

इस अरण्य में राक्षस विविध प्रकार के रूपादि लेकर संचार करते हैं । बडे बडे महर्षि का वहाँ निवास है ।

रामचरित मानस भी इस जंगल का वर्णन एक भयानक अरण्य के रूप में ही करते हैं ।

जैन रामकथा में जैन श्रमणों के पेरने की घटना की पुष्टि मदुरा के मीनाक्षी मंदिर के दीवार पर चित्रित जैन श्रमणों का संहार चित्र है । पं. सुमेरुचंद्र दिवाकर लिखते है--

" ऐसी परम्परा है कि ८००० जैनी फाँसी लटका दिये गये थे। उस पाशविक कृत्य की स्मृति मदुरा के विख्यात मीनाक्षी नामके मंदिर में चित्रों के रूप में विद्यमान हैं। आज भी मदुरा के हिन्दू लोग उस स्थल पर प्रतिवर्ष आनंदोत्सव मनाते हैं जहाँ जैनों का संहार किया गया था।"[९]

जैन रामायण की दण्डकारण्य की कथा अपने युग की किसी एक विशेषता पर प्रकाश डालती है।

शूर्पणखा की घटना :

शूर्पणखा जैन रामकथा में "चन्द्रनखा" नाममें अभिहित है। तिरस्कार व्यंजक शूर्पणखा के स्थानपर चन्द्रनखा-सा कोमल नामाभिधान भी जैन रामकथा के दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। उसकी कथा जैन रामकथा में इस प्रकार आई है।

रावणभगिनी शूर्पणखा खर दूषण की पत्नी थी। उसका पुत्र शम्बुक कठोर तपश्चर्या के लिए दण्डकारण्य में स्थित किसी बाँस के जमघट में जा बैठा। वह सूर्यहास खड्ग प्राप्ति के लिए साधना में मग्न था। एक दिन लक्ष्मण दण्डकारण्य में टहलने निकले। उसको आकाश में तैरता हुआ एक जगमगाता खड्ग दिखाई दिया। कुतूहल वश उसने वह खड्ग लिया और बांस के झुरमुट पर चलाया। यकायक खड्ग खून से रक्तरंजित हो उठा और शम्बूक का सर धड से अलग हो गया। तप की अवधि पूर्ण होनेपर चन्द्रनखा हर्षित हृदय से अपने बेटे की सफलता देखने आयी थी। पुत्र की हत्या हुई यह देख क्रुद्ध होकर वह हत्यारे को ढूंढने वन में गई। जहां उसने रामलक्ष्मण का अद्भुत सौन्दर्य देखा। वह अपना शोक भूल गई और कामान्ध हुई। किन्तु रामने उसका मूल रूप पहिचाना और उसे तिरस्कृत किया। उसे अब पुत्र याद आया और क्रुद्ध होकर उसने अपने पति तथा भाई को उकसाया।

जैनेतर रामकथा में शूर्पणखा :

वाल्मीकि रामकथा में शूर्पणखा का दण्डकारण्य में यकायक आगमन हुआ। राम लक्ष्मण के सौन्दर्य को देख वह मुग्ध हो गई।

उसने रामचन्द्रजी से पूर्ण परिचय पूछा जिसके उत्तर में रामचन्द्रजी ने अपना पूर्ण परिचय दिया। शूर्पणखा उनपर आसक्त हो गई। किन्तु रामने उसको पहचान लिया और लक्ष्मण ने उसे विरूप किया।[१०]

रामचरित मानस में इस घटना का स्वरूप इस प्रकार है --

९, जैनशासन – पं. सुमेरचन्द्र दिवाकर, पृ. ३०४, वीर निर्वा., सं. २४७३।
१०. वा. रा. १४।५ से ३०।

"सूपनखा रावण कि बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन नस अहिनी ।
पंचवटी सो गई एक बारा । देखी विकल भई जुगल कुमारा ॥ [११]"

दोनों परंपराओं की कथा में भेद–

जैनेतर रामकथा का दृष्टिकोण यह है कि राक्षस कुरूप या भद्दे हैं । उन्हें मारना पृथ्वी का बोझ हलका करना है । जैन रामकथा में चन्द्रनखा नाम देकर राजकन्या जैसा उसका रूप वर्णन निखर उठा है ।

राम रावण के संघर्ष के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारण जैन रामकथा ने प्रस्तुत किया है । अपने पुत्र शम्बुक का वध शूर्पणखा कैसे सह सकती थी ?

जैनेतर रामकथा में लक्ष्मण ने उसको विरूप किया है । अपनी अमर्यादा का बदला एक स्त्री ने दूसरी स्त्री से लेना युक्तिसंगत हो जान पडता है । इसलिए रावण के आगे सीता के स्वरूप का वर्णन और अपनी दुर्दशा का कथन एकसाथ करने का जो कार्य शूर्पणखा ने किया वह पूर्ण समर्थनीय सिद्ध होता है । जब शूर्पणखा जैनेतर रामकथा में घृणापात्र बनती है तब चन्द्रनखा जैन रामकथा में दयनीय ज्ञात होती है ।

जैन रामकथा में गुणभद्र के उत्तरपुराण में शूर्पणखा की कथा भिन्न रूप से दी गई है । जो इस प्रकार है––

सीता के द्वारा अपमानित नारद रावण के समीप गया । उसने वहाँ सीता के रूप का वर्णन किया और रावण को उत्तेजित करने के लिए वह घटना भी कही कि जनक राजा ने यज्ञ के अवसर पर राम को बुलाकर चुपचाप सीता का उससे ब्याह करा दिया । इस प्रकार रावण के अहंकार को चोट लगने पर रावण ने शूर्पणखा को दूती के रूप में सीता का मनोभाव जानने के लिए भेजा । उसने एक बूढी के रूप में सीता से मुलाकात ली । बडी चतुराईपूर्वक उसके गुप्त मनोभावों को जान लिया और वह रावण के पास गई । उसने स्पष्ट शब्दों में यह बतलाया कि सीता को पाना असम्भव है । उसके हृदय से उसके राम कभी नहीं हटेंगे । रावण ने शूर्पणखा की भर्त्सना की ।

यहाँ पर जैन रामकथा शूर्पणखा को पूर्णतया दोषहीन दशा में उपस्थित एक राजकन्या के रूप में चित्रित करते हैं ।

जैन रामकथा में राक्षसों के प्रति भी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि अपनाई गयी है ।

---

११. रा. च. मा. ३।१६।२ ।

सीता जन्म :

जैन रामकथा में सीता जन्म के विषय में दो प्रकार का वर्णन आया है ।

पउमचरियं तथा पउमचरिउ के अनुसार सीता राजा जनक की विदेहा नामक रानी की कन्या है । सीता के एक भाई भी था जो भामंडल नाम से परिचित है । परन्तु गुणभद्र के उत्तर पुराण में सीता की उत्पत्ति भिन्न रूप से बतलायी गयी है ।

सीता को रावण की पत्नी रानी मंदोदरी ने जन्म दिया है । अतः ज्योतिष-शास्त्रज्ञों ने उस कन्या को रावण के लिए घातक बताया । यह सुनकर पतिव्रता मन्दोदरी ने उस कन्या को एक पेटिका में रखकर दूर छोडने के लिए कहा । उस पेटिका को मिथिलानगरी के किसी खेत में गाडा गया । जमीन जोतते समय किसी किसान को वह पेटिका मिली और उसने पेटिका में राजवस्त्रों को देखा तथा उस कन्या को राजा जनक को सौंप दिया । जनक ने उसका पालन पोषण किया । जैनेतर रामकथा में सीता के जन्म के विषय में वाल्मीकि ने लिखा है कि वह जनक राजा की अपनी बेटी नहीं थी परन्तु वह उसकी पालित कन्या थी । धनुः प्रसंग में राजा जनक कहता है--"हे राजकुलोत्पन्न वीरो, मैं अपनी पुत्री को पराक्रमी पुरुष को प्रदान करूंगा । वह मुझे भूमि से प्राप्त हुई है और पुत्री के समान मैंने उसे पालापोसा है । [१२]"

जैन रामकथा में सीता को जनक की विदेहा रानी की कन्या बताकर इस आश्चर्यकारी घटना को सहज स्वरूप प्रदान किया है । गुणभद्र की कथा के द्वारा जैनेतर रामायण की सीता जमीन में कैसे आई इस रहस्यपूर्ण गुत्थी को सुलझाने का महत्कार्य हुआ है । परस्त्रीलंपटता की भयानकता एवं हेयता को अधिक प्रभावी ढंग से प्रकट किया है । कामान्ध दशानन अपनी कन्यापर ही आसक्त हो गया है जिसे पढकर पाठकों के मन में परस्त्रीलंपटता के प्रति तिरस्कार का भाव दृढ हो जाता है ।

राक्षस स्वरूप

वाल्मीकि रामायण में राक्षसों के बारे में एक विशिष्ट प्रकार की मान्यता दिखलाई देती है । राक्षस याने नर एवं मांसभक्षक, अतिदुष्ट और छलनेवाले निशाचर । इसी मान्यता का प्रकर्ष हमें कुम्भकर्ण के वर्णन में प्राप्त होता है ।

---

१२. क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा । वा. रा. ४३।१४

रावण पर राम की चढाई होने के बाद कुम्भकर्ण को जगाने के लिए जो प्रयास किये गये उनमें सामान्यतः राक्षसों के स्वरूप का परिचय प्राप्त हो जाता है। देखिए--

"कुम्भकर्ण सोया हुआ था। उसे जगाने के लिए बडी भारी आवाज की गई। मृदंग, पणव, भेरी, शंख आदि एक साथ दस हजार राक्षस योद्धाओं ने बजाये। एक साथ हजार भेरियों की आवाज से भी वह न जगा। तब उसके केश खींचे गये। उस पर सैंकडों जलकुम्भों का जल सिंचन किया गया। फिर भी उसकी नीन्द नहीं टूटी। उसके शरीर पर मुगदरों के प्रहार किये गये। उसको रस्सी से बाँधा गया। हजारों हाथी उसपर छोडे गये। अनेक वराहों और भैंसों का भोजन दिया गया। तब प्रबुद्ध होकर उसने मांस का भक्षण और शोणित का प्राशन किया। मेद और मद्य के घडे के घडे उसने प्राशन किये। फिर कहीं वह तृप्त हुआ।"[13]

जैनेतर रामकथा की इस मान्यता का उल्लेख राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछे हुए प्रश्नों के द्वारा इस प्रकार प्रकट होती है --

राजा श्रेणिक पूछता है --

"लौकिक शास्त्रों में ऐसा सुना जाता है कि रावण आदि सभी राक्षस मांस, रक्त एवं चरबी आदि का भक्षण करते थे। ऐसा भी सुना जाता है कि कुम्भकर्ण नामका रावण का महाबलशाली भाई निर्भय होकर छः मासतक शय्या पर पडा रह कर सोता रहता था। सोये हुए उसके अंग यदि बडे भारी पर्वत के समान हाथियों से कुचले जाये, घडों तैल से उसके कान भरे जाये अथवा बडे ब डे नगाडों की ऐसी ध्वनि उसके सामने निनादित की जाने, पर भी समयपूर्व वह महात्मा शय्या पर से

---

१३. कुम्भकर्ण महानिद्रं सहिताः प्रत्यबोधयन्
ऊर्ध्वरोमांचित तनुं श्वसन्तमिव पन्नगम्।
मृदुंग, पणवान, भेरीः शंखकुम्भगणांसदा
दशराक्षससहस्राः युगपत पर्यवादयन्॥
मांसानां मेरु संकाश राशिं परतर्पणम्।
मृगाणां महिषाणांच वराहानां च संचयान॥
यदा बैन न शेकुसो प्रतिबोधयितुं तदा
ततो गुरुतरं यत्नं दारुण समुपा क्रमन्॥
अश्वानुष्ट्रन खरान्नागा जध्वुर्षण्डकशाकर्शः।
भेरी शंखमृदंगश्च प्राणेखादयन॥
तत स्त्वं दर्शयन् सर्वान भक्षांश्चविविधान् बहून।
वाराहान् महीषाश्चेव स बभक्ष महाबल॥
अदन् बुभूक्षितो भासे शोणितं तृषितः पिबन्
मेदकुम्भाश्च मद्यं च पपौ शक्र रिपुस्तदा॥ वा. रा. ४५।२३ से ५५

उठता ही नहीं था। जगने पर उसका शरीर भूख से इतना व्याकुल हो उठता था कि उसके सामने हाथी, भैंसे आदि जो कुछ आता वह निगल जाता था। ऐसे बलशाली राक्षसों को भी वानरों ने मारा[१४] ॥"

जैनेतर रामकथा में वानरों को भी सामान्य पूँछवाले मानकर उनका वर्णन है क्योंकि हनुमान जब लंका में गये तो उनको नागपाश में बद्ध करने के बाद उनकी पूंछ में आग लगा दी गई थी।

जैन रामकथा में वानर वानरवंशीय विद्याधर हैं।

भिन्न भिन्न वंशों की उत्पत्ति

जैन रामकथा में राक्षस वंश, वानर वंश, विद्याधर वंश और ईक्ष्वाकु वंश इन चारों वंशों के राजाओं की नामावली और उनके परस्पर सम्बन्धोंपर बडा स्पष्ट प्रकाश डाला गया है।

मूलत: चार वंश विख्यात थे। राक्षसादि उनके अनेक भेद होते हैं।

१) इक्ष्वाकु वंश, २) सोमवंश ३) विद्याधरवंश और ४) राक्षसवंश

इक्षु शब्द से इस वंश की उत्पत्ति है। नाभि के पुत्र ऋषभने बाल्यावस्था में इक्षुदंड कुतूहल से हाथ में लिया जिससे इक्ष्वाकु वंशाभिधान प्रसिद्ध हुआ। ऋषभदेव के पुत्र भरत से आदित्ययशा, सिंहयशा, बलभद्र, वसुबल, महाबल, अतिबल, सुभद्र, सागरभद्र रवितेज, शशिप्रभ, प्रभुतेज, तेजस्वी, तपन, प्रतापवान, एवं अतिवीर्य राजा हुए। उनके पश्चात् महावीर्य, अदितवीर्य, महेन्द्र, विक्रम,

---

१४. सुवन्ति लोयसत्थे रावणपमुहा य रक्खसा सव्वे ।
वस लोहिय मांसाइ भक्खण - पाणे कयाहारा ।
किर रावणरस भाआ महाबलो नाम कुम्भयण्णोति
छम्मासं विजय भयो, सेज्जासु निरन्तरं सुयइ ।
जइ वि य गयेमु अंग पेलिज्जइ गुरुय पव्वयसमेतु
तेल्ल वडेसु य कुणा, परिज्जन्ते सुयन्तस्स ।
जइ वि उ गयेमु अंग पेल्लिजइ गरुयपव्वससमेसु
तेल्लवडेसु य कुणा, परिज्जन्ते सुयन्तरस ।
पडुपडहतूर सद्दं न सुणइ सो, सम्मुहं पि वज्जन्त
न य उठेइ महप्पा सेज्जाए अपुण्ण कालम्भि ।
अह उठिओ वि सन्तो असणमहा घोर परिगय सरीरो ।
परओ हवेज्ज जो सौ कुंजर महिसाइणो गिलइ ।
कह वाणरेहि णिया रक्खसवसहा अइबला पि ।

पउमचरियं २ । १०४ से १११

सूर्य, इन्द्रद्युम्न, महेन्द्रजित प्रभु, अरिदमन, ऋषभकेतु, गरुडांक, मृगांक आदि राजा इसी इक्ष्वाकु वंश में हुए और ये "आदित्ययशा" नामाभिधान पाने के कारण आदित्य अर्थात् सूर्यवंशी कहलाने लगे। [१५]

२) सोमवंश

ऋषभ का दूसरा पुत्र बाहुबली था। उसका सुविख्यात प्रभावशाली पुत्र सोमप्रभ था। उनसे महाबल, सुबल, बाहुबली आदि अनेक नरपति पैदा हुए। सोमप्रभु की वीरता के कारण उसके नामसे सोमवंश कहलाया। [१६]

३) विद्याधर वंश :

ऋषभ देव के पौत्र नमि विनमि के द्वारा इस वंश की निर्मिति हुई है। नमि का पुत्र रत्नमाली, उससे रत्नव्रज, रत्नरथ, रत्नचित्र, चन्द्ररथ, वज्रसंघ, वज्रसेन, वज्रदत्त, वज्रध्वज, वज्रायुध, वज्रसुन्दर, वज्रास्य, वज्रपाणी, वज्रसुजह्नु तथा वज्र राजा हुए। उनके पश्चात विद्युन्मुख, सुवदन, विद्युद्दत्त, विद्युद्वान, तडिद्वेग तथा विद्युद्दष्ट्र आदि अनेक राजा हुए। अनेक विद्याओं से वे संपन्न थे। इसलिए उन्हें विद्याधर का नामाभिधान प्राप्त हुआ।

४) राक्षस वंश :

विद्याधर वंशों के राजा से बचने के लिए राजा भीमने एक महान द्वीप में लंकानगरी की स्थापना की। उस विस्तीर्ण द्वीप को राक्षस द्वीप यह संज्ञा दी गई और उसके अधिपति को महाराक्षस संज्ञा प्राप्त हुई। इस वंश में मेघवाहन हुआ। उसके पुत्र का नाम राक्षस रहा। यह इतना पराक्रमशाली निकला कि इसी के नाम पर पूरे वंश को राक्षस नामाभिधान प्राप्त हुआ। इस वंश के राजाओं की नामावली – भीमप्रभ, पूजार्ह, जितभानु, संपरिकीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुव्रत, अमितवेग, आदित्यवेग, इंद्रप्रभ, इन्द्रमेघ, मृगारिदमन, प्रहित, इन्द्रजित, सुभानुधर्म, मुरारी, त्रिजट, मथन, अंगारक, रवि, चक्रार, वज्रमध्य, प्रमोद, नरसिंहवाहन, आदि अनेक राजा इस वंश में पैदा हुए। राक्षस की महानता ने वहाँ के प्रत्येक द्वीपवासी को राक्षस संज्ञा प्राप्त करा दी।

५) वानर वंश :

वैताढ्य पर्वत की दक्षिण शाखा में मेघपुर नामका नगर था। वहाँपर अहमिन्द्र नामक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसके श्रीकंठ नामका पुत्र और देवी नामकी पुत्री थी। देवी का विवाह लंकापति कीर्तिधवल से हुआ।

---

१५. प. च. ५।३ ५।३ से ९

१६. प. च. ५।१० से १३।

श्रीकण्ठ देवगिरी से लौटा था कि उसने मार्ग में एक अतिसुन्दर कन्या देखी अ उसका अपहरण करके वह लंका पहुँचा। अपने शत्रुओं से डरे हुए श्रीकण्ठ को। कीर्तिधवल ने लवणसागर के द्वीप में बसाया। इस द्वीप में वानरों की अधिक बस्ती थी। यही वानरद्वीप है। इसी द्वीप में बसनेवालों को वानर की संज्ञा प्राप्त हुई और इसीलिए उनका वंश वानर वंश कहलाया।

श्रीकण्ठ ने किष्किन्धा नामक नगरी बसाई। उसने उस द्वीप में स्थित वानरों को पकडकर उनको अपने बंधुओं की भाँति उनके आहारादि का प्रेम से प्रबंध किया। तब से वानरवंश में वानरों के विशाल चित्र चित्रित करने की रूढी चली। वानरों के चित्रादि चित्रित करना मंगलमय और कल्याणकारी माना जाने लगा। वानरों की स्थापना की परम्परा बढते चली। जब अमरप्रेम राजा ने देखा कि भूमिपर चित्रित वानर पैरोंतले आते हैं तो उसने छतों में, तोरणों में और ध्वजाओं पर तथा महलों के शिखरों एवं मुकुटों में वानरों के चित्रों को स्थापित करने की परंपरा चलाई।

"जिस तरह खड्ग से खड्गधारी, घोडे से घुडसवार, हाथी से हस्तिपाल, ईक्षु से ईक्ष्वाकु, विद्या से विद्याधर वंश होता है उसी तरह वानरों के चिन्ह से वानरों का वंश अभिव्यक्त होता है। चूँकि वानर के चिन्ह से लोगों ने छत्र आदि अंक्ति किये थे इसलिए वे विद्याधर वानर कहलाए।[१७] वास्तव में इक्ष्वाकु वंश से सोमवंश, विद्याधर वंश, राक्षस वंश और वानर वंश स्थापित हुए और उनका आपसी संबंध घनिष्ठ था।

ईक्ष्वांकु वंश के प्रस्थापक भगवान ऋषभदेव थे। उनके दो पुत्र भरत और बाहुबली। भरत के पुत्र आदित्ययशा से सूर्यवंश की परम्परा मानी जाती है।[१८]

ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबलो था। उसका अति प्रभावशाली पुत्र था सोमप्रभ। सोमप्रभ के नामसे हो सोमवंश की स्थापना हूई।[१९]

ऋषभदेव के पौत्र थे नमि, विनमि। इनके द्वारा वैताढ्य पर्वत की श्रेणियों में राज्य की स्थापना हुई। ये विद्या से युक्त होनेके कारण उनका वंश विद्याधर वंश कहलाया।[२०]

इन्हीं विद्याधर वंश के श्रीण्कठ ने लंकाधिराज के आश्रय से लवणसमुद्र में वानरद्वीप में राज्य स्थापित किया। वे वानरवंशीय बने।[२१]

---

१७. प. चरिये ६ । ८३ से ८९ ।

१८. पउमचरियं ५ । ३

१९. पउमचरियं ५ । १० से १३ ।

२० . पउमचरियं ५।१५ से १९

२१ . पउमचरियं ६।२८ से ३३

युद्धकाल में राक्षसराज को मदद करने वानर जाते थे। उनमें परस्पर में विवाह भी रूढ थे। वरुण के विरुद्ध लडने के लिए पवनंजय गये थे। हनुमान और विभीषण में बडी मित्रता थी। सीता की मुक्ति के लिए हनुमान ने विभीषण पर दबाव डाला था। रावण ने वाली की बहन से विवाह की इछा प्रकट की थी।

जैन रामकथा द्वारा तत्कालीन अनेक क्षत्रिय वंशों के राजाओं पर प्रकाश पडता है। इससे रामकथा की स्वाभाविकता ही बढती है।

ईक्ष्वाकु, सोम, विद्याधर, राक्षस और वानर वंशीय राजाओं में उच्चनीचता का सम्पूर्ण अभाव है और सब एक परम्परा से सम्बन्धित हैं।

सीता का अपहरण :

जैन रामकथा में सीतापहरण :

सीतापहरण की घटना का वर्णन जैन रामकथा में इस प्रकार है --

राम के द्वारा तिरस्कृत चन्द्रनखा अपने पति खरदूषण के पास गई। उसने पुत्रवध का वृत्तान्त खरदूषण से विदित किया जिससे क्रुद्ध होकर उसने राक्षस योद्धा के साथ रामपर चढाई की। राक्षसों के कोलाहल को सुनकर लक्ष्मण सावधान हुआ। रामचन्द्रजी को सीता की रक्षा के लिए छोडकर वे लडने के लिए प्रस्तुत हुए। रामने सूचित किया कि लक्ष्मण, यदि प्राणों का खतरा पैदा हो जाय तो सिंहनाद किया जाय, में सहायता के लिए तुरन्त आ पहुँचूंगा।"

रावण पुष्पक विमान में आया। अवलोकिनी विद्या के द्वारा समस्त परिस्थिति से वह परिचित हुआ और कपट का आश्रय लेकर उसने लक्ष्मण की सी आवाज में सिंहनाद किया। उसे सुनकर राम लक्ष्मण की सहायता के लिए दौडे। यही उचित अवसर समझकर रावण ने सीता का अपहरण किया।

" त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र " में इस प्रसंग को लेकर एक विशेषता आई है। सिंहनाद को सुनते ही व्यग्र होकर सीता ने लक्ष्मण के प्रति वात्सल्य प्रकट किया है। उसने राम से प्रार्थना की है कि संकट आनेपर इस प्रकार का विलंब क्यों? शीघ्र जाकर लक्ष्मण को भयमुक्त कीजिए।"

जैनेतर रामकथा में सीता का अपहरण :

जैनेतर रामकथा में रावण ने मारीच को कांचनमृग बनकर राम को सीता से अलग करने के लिए बाध्य किया है। राम कांचनमृगधारी मारीच को मारने के लिए उसके पीछे गये और उन्होंने उसपर बाण चलाया। अपनी मृत्यु समीप जानकर मारीच ने " हा, लक्ष्मण।" संबोधन करते हुए राम की-सी आवाज में पुकारा। उसे सुनकर भयविह्वल बनी हुई सीता ने लक्ष्मण को राम की मदद के

लिए जाने को कहा। राम की शक्ति से परिचित लक्ष्मण सीता को अकेली छोडने के लिए संमत नहीं हुए। जिससे क्रुद्ध होकर सीता ने कटूक्तियों से उन्हें अपमानित किया। विवश होकर लक्ष्मण सीता को अकेली छोडकर राम की सहायता के लिए गये। सीता को अकेली देख रावण उसे उठाकर ले गया।

मानस में इसी प्रकार की कथा है पर उसमें रामके अनुरोध पर सीता ने अग्नि में निवास किया है। मायावी सीता उसके स्थानपर निर्माण की गई है।

सीताहरण की घटना में जैन रामकथा में दो विशेषताएँ अन्तर्निहित हैं।

१) सीता की रक्षा के लिए कुटी में राम ठहरते हैं जो औचित्य की दृष्टि से इष्ट है। लक्ष्मण छोटे भाई हैं और राम के अनन्य प्रेमी भी। राक्षसों से लडने या अन्य कार्यों के लिए अपनी जान खतरे में डालकर भी वे राम की सेवा करेंगे।

२) राम सीता के पति हैं। उनका सीता के साथ रहकर उनकी रक्षा में दत्तचित रहना उचित ही है।

इसके साथ तीसरी भी एक औचित्यपूर्ण बात सहजता से समझमें आती है। राम की मदद के लिए पुकार सुनकर लक्ष्मण प्रभावित नहीं हुए। इसलिए जब सीता को असुरक्षित छोडकर जाने से उन्होंने इन्कार किया तब सीता ने उन्हें कटु उक्तियाँ सुनाईं। सीता के चरित्र के अनुसार यह व्यवहार अनुचित प्रतीत होता है। जैनेतर रामकथा की इन बातों का जैन रामकथा में अभाव है। यह भी जैन रामकथा की मौलिकता कही जा सकती है।

वाली की कथा :

जैन रामायण में वाली का चरित्र बहुत ही उदार एवं वीरतापूर्ण रीति से वर्णित है। वह प्रारम्भ में एक वीरपुरुष है और पश्चात् एक महामुनि के रूप में आदरणीय बने हैं। वह वानरवंशीय आदित्यरजा के पुत्र थे। उनमें एक ऐसी अद्भुत आत्मशक्ति थी जिससे वे नित्य जम्बुद्वीप की प्रदक्षिणा कर चैत्यों की हररोज वंदना करने में सक्षम थे।

प्रबल प्रतापी वानरराज वाली की शक्ति की प्रशंसा सुनकर जब रावण क्रुद्ध हुआ तब उसने वाली को दरबार में आकर प्रणाम करने का आदेश दूत के द्वारा भेजा। रावण की उद्धताई से वाली भी कुद्ध हुआ फिर भी उसने विवेक-पूर्ण प्रत्युत्तर भेजा की " वानर और राक्षसों का संबंध स्वामी–सेवक का नहीं है अपितु मैत्री सम्बन्ध है इसलिए उस सम्बन्ध में बाधा न डालो।" वाली के इस उत्तर से रावण के अहंकार पर प्रहार हुआ। उसने सेना के साथ वाली पर आक्रमण किया। वाली ने रावण को समझाया कि अपने बल की परीक्षा के सेना

का नाश क्यों हो ? हम दोनों द्वंद्व युद्ध से अपनी समस्या का निर्णय करें। वाली ने यह चुनौती स्वीकार की। रावण वालीपर खड्ग का प्रहार करने दौडा कि वाली ने उसे खड्ग के साथ उठाकर बगल में दबाया और सम्पूर्ण जम्बुद्वीप की प्रदक्षिणा कर उसे जमीन पर पटक दिया। रावण लज्जित हुआ पर वाली में अहंकार पैदा नहीं हुआ। बल्कि उसमें वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। उसने सुग्रीव को राजगद्दी देकर स्वयं मुनिव्रत ग्रहण किया।

दूसरी घटना :

वाली मुनि आत्मविकास में मग्न बनकर तपस्या करते थे। जिससे उनमें आत्मशक्ति की वृद्धि हुई और वे अनेक सिद्धियों से सम्पन्न हुए। ध्यान करने के लिए वे अष्टापद पर्वतपर पहुँचे। एक दिन रावण विमान में अष्टापद पर्वत के ऊपर से जा रहा था। मुनि की तपस्या के प्रभाव के कारण विमान यकायक रूक गया विमान रुकने के कारण रावण नीचे उतरा और उसने देखा तो वहाँ वाली मुनि ध्यानमग्न दशा में थे। वाली मुनि ने जानबूझकर उसको अपमानित किया है ऐसी आशंका रावण के मन में उत्पन्न हुई। प्रतिशोध की आग उसके मन में भडक उठी। वह अपनी विद्याओं कें बल से अष्टापद पहाड के नीचे गया और अपने बल से उस पहाड को उखाडने का प्रयास करने लगा। मुनि ने तीर्थ के उपद्रव को शान्त करने के हेतु अपने पैर का अंगूठा दबाया। परिणामस्वरूप रावण दबकर आर्तता से रोने लगा। इस रोदन के कारण उसका नाम "रावण" पडा और वह सार्थक भी सिद्ध हुआ।

तीसरी घटना :

वाली को तारा का जार पति बनाने की घटना का संपूर्ण अभाव जैन राम-कथा में है। इसकी सिद्धि के लिए जैन रामकथा में साहसगति विद्याधर की कथा है। वह शुरु से ही तारा पर आसक्त था। तारा का ब्याह सुग्रीव से हुआ तब वह क्रुद्ध हुआ। उसने रूपान्तर की विद्या प्राप्त की और सुग्रीव के रूप में वह तारा के अन्तःपुर में घुसा। रामने वाली को नहीं पर इस कपटवेषधारी साहस-गति को ही मारा था।

जैनेतर रामकथा में वाली की संपूर्ण कथा रामचरित्र को कलंकित करती है। रामने सुग्रीव का पक्ष लेकर वृक्ष की ओट से बाण मारा जिससे वाली मारा गया[२२]। यहाँ वाली का चरित्र भी एक स्त्रीलंपट पुरुष के रूप में चित्रित हुआ है।

---

२२. राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः।
ततस्तेन महातेजा : वीर्योत्सक्त कपीश्वरः।
वेगेन्तथिहतो वालि निपताति महितन्ने ॥ वा. रा. १६।३५

जैन रामकथा का यह वालीचरित्र जैन रामकथा का अपना मौलिक सर्जन है। वाली के चरित्र में उदारता के साथ रामचरित्र का भी उन्नयन करने में सहायक बनने की उसकी क्षमता है जो बडी प्रशंसनीय है।

हनुमान

जैन रामकथा में हनुमान :

हनुमान वानरवंशीय होनेपर भी वानर नहीं थे। महेन्द्रनगर क राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना का विवाह प्रल्हाद राजा के पुत्र पवनंजय से तय हुआ था। अंजना के रूप का वर्णन सुनकर पवनंजय उसे देखने उत्कण्ठित हो उठे और रातको अपने मित्र के साथ अंजना के महल के द्वार के पीछे खडे हुए। उन्हें अंजना का सखियों के साथ वार्तालाप सुनाई दिया। एक सखी बोली "अंजना के योग्य पति तो विद्युत्प्रभ था।" दूसरी ने जवाब दिया "पर वह तो अल्पायु था, उसके साथ अंजना का ब्याह कैसे हो सकता था ?" उस पर पहली सखी बोल उठी "विद्युत्प्रभ अल्पायु था तो क्या हुआ ? असत् पुरुष के साथ दीर्घकालीन प्रेम से तो अल्पायु पुरुष के साथ का प्रेम निःसंशय श्रेष्ठ है।"

अंजना लज्जावश इन सखियों का प्रतिवाद नहीं कर सकी और पवनंजय गुस्से से लाल पीला होकर वहाँ से लौटा। उसने त्यागने के लिए ही अंजना से ब्याह किया। बेचारी अंजना अपने भाग्य कोसती रही।

इसी अवसर पर रावण और वरुण में युद्ध छिडा। रावण की मदद के लिये पवनंजय सेना के साथ निकला। अपने प्रिय के विरह में शोकाकुल चकवी उसने देखी। उसको अपनी प्रिया की दशा का विचार आया। चकवी-सी करुणमुखी अपनी प्रिया की आकृति उसकी आँखों के सामने आयी और क्रोध का स्थान पश्चात्ताप ने लिया। सेना के विश्रामस्थान से वह उसी रात को चुपचाप अंजना के महल में पहुँचा। सारी रात दोनों ने सुखपूर्वक बिताई। पवनंजय सुबह होने से पहले सेना के विश्रामस्थान पर पहूँच गया।

उसी रात अंजना गर्भवती हुई। पवनंजय के अविज्ञात आगमन के प्रतिफल के कारण उसकी सासने उसे कलंकिनी ठहराया।वह पतिगृह से निर्वासित हुई। अंजना पिता के घर पहुँची। उसकी बात सुनने पर उसने भी उसे आश्रय देने से इन्कार कर दिया। जंगल में भटकती अंजना ने एक पुत्र को गुफा में जन्म दिया। वे ही हनुमान थे। संयोगवश हनुमान के मामा उस जंगल म आय और दोनों को अपने घर पर ले गये। हनुमान वानर वंशीय सुग्रीव के जामाता थे, तो रावण की भगिनी चन्द्रनखा की पुत्री से भी उनका ब्याह हुआ था।

वाल्मीकी रामकथा में हनुमान वायुपुत्र हैं और ब्रह्मचारी हैं। तुलसी दास ने उसे मरुतपुत्र के नामाभिधान से ही पहचाना है।

जैन रामकथा पंचमहाभूतों में से एक वायु के पुत्र के रूप में से उसे नहीं मानती। यहाँ पर हनुमान की कथा रावण के समान ही बडी दीर्घ कथा है। पवनंजय हनुमान का पिता था। पिता के नाम में जो सादृश्य रहा उसी के कारण वह वायुपुत्र कहलाया। जैनेतर रामकथा हनुमान को ब्रह्मचारी एवं बल का प्रतीक मानती है। वास्तव में हनुमान को राम का अर्थात् भगवान का अनन्य भक्त मानने के कारण ही शायद उसे ब्रह्मचारी कहना पडा होगा। अन्यथा इतने पराक्रमी वीर पुरुष का अनेक स्त्रियों के साथ ब्याह होना अनुचित या असंभव नहीं प्रतीत होता। पवनंजय पुत्र हनुमान की सुदीर्घ कथा जैन रामकथा की अपनी मौलिकता है।

रावण की कथा

रावण का जन्म :

रावण की कथा भी जैन रामकथा की श्रेष्ठतम प्रतिभा है। जैन रामकथा में रावण की कथा इस प्रकार है -- विद्याधर व्योमबिन्दु की पुत्री केकसी से राक्षसराज रत्नश्रवा का ब्याह हुआ।

एक दिन राक्षसरानी केकसी ने स्वप्न देखा कि उसके उदर में कोई सिंह प्रविष्ट हुआ है। उसके बाद दूसरे दो सूर्य और चन्द्र ने उसके उदर में प्रवेश किया। इन्हीं शुभसूचक स्वप्नों के अनुसार रावण, भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) एवं विभीषण के जन्म हुए।

इन स्वप्नों का महत्त्व इनके प्रति बर्ते गये दृष्टिकोण को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। रावण तथा उनके भाई के लिए गौरवपूर्ण शब्दों का प्रयोग केवल जैन रामकथा में ही मिलता है।

दशानन नाम की सार्थकता :

जन्म के पश्चात् बालक रावण ने अपने पूर्वज मेघवाहन का रत्नहार हाथों में लिया। हजारों नागों के द्वारा रक्षित वह हार बालक के गले में देखकर रत्नश्रवा चकित हो गया और उसने उसके गले में वह हार पहनाया। नवरत्नों में प्रतिबिंबित उसके मुखों के कारण वह दशानन कहलाया। दशानन नाम की उत्पत्ती एवं अन्वर्थकता यहां पर प्रमाणित हो जाती है।

घोर तप करके रावण ने आकाशगामिनी, कामदायिनी, दुर्निवारा, जयकर्मा

प्रज्ञाप्ति, भानुमालिनी, अणिमा, लघिमा, मनःस्तम्भिनी, अक्षोभ्या, संवाहिनी आदि पचपन विद्याएँ सम्प्राप्त कीं।

रावण का विवाह सुरसंगीत नगर के मय राजा की कन्या मन्दोदरी से हुआ। कुम्भपुर के महोदर रानी की पुत्री तडित्माला से कुम्भकर्ण का और पंकजसदृशी से विभीषण का विवाह संपन्न हुआ। रावण ने वैश्रवण को पराभूत कर लंका का राज्य फिरसे अपने हाथ में लिया।

रावण नाम की सार्थकता :

वाली के द्वारा द्वंद्व में रावण पराजित हुआ और वाली मुनि बनकर अष्टापद पर्वत पर ध्यान में मग्न बन गये। एक दिन रावण अष्टापद पर्वत पर से विमान में जा रहा था कि उसका विमान यकायक रूक गया। रावण ने नीचे देखा तो ध्यानमग्न वालीमुनि। वास्तव में वालीमुनि को वन्दन करना जरूरी था पर अहंकार तथा असूया के कारण रावण मुनिपर क्रुद्ध हुआ। अपनी विद्याओं के बल वह अष्टापद के नीचे गया और उसने पहाड को जड से उखाडने का यास किया। पहाड में कंपन हुआ। तपस्वी वाली मुनि उस उपद्रव को जान गये। उन्होंने अपने पैर का अंगूठा दबाया। पहाड नीचे धँसने लगा और उसके नीचे दबते दशानन ने रोते हुए चीत्कार किया। इस रूदन के कारण उसका रावण यह अभिधान सार्थक सिद्ध हुआ।

एक बार रावण मुनिराज का प्रवचन सुनने गये। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने व्रतादि ग्रहण किये। मुनि ने रावण को कोई नियम ग्रहण करने के लिए कहा। अपनी दुर्बलता से परिचित रावण ने नियम लिया "किसी भी परस्त्री का उसकी इच्छा के विरुद्ध उपभोग नहीं करूंगा।" यही कारण है जिससे रावण ने सीता को अपनी पत्नी बनाने के लिए कई प्रयत्न किये, पर उसपर जबरदस्ती नहीं की।

उपरंभाख्यान के प्रसंग में भी रावण ने परस्त्री का संग नहीं किया था। वह आख्यान इस प्रकार है–

दुर्लंघ्य नगर के राजा नलकुबेर पर विजय पाने के लिए रावणने उसपर आक्रमण किया। राजा ने नगर में चारों ओर शक्तिशाली यंत्रों की प्रस्थापना की और आशाली विद्या स्थापित कर नगर को अभेद्य बना दिया। रावण ने जब यह बात सुनी तब वह चिन्ता में पड गया।

इसी बीच नलकुबेर की पत्नी उपरंभा रावण की परोक्ष प्रशंसा सुनकर उसपर आसक्त हो उठी थी। उसने दूती के रूप में अपनी सखी के साथ संदेशा

भेजा कि यदि रावण उपरंभा को चाहने लगे तो वह आशाली विद्या, सुदर्शनचक्र और नलकुबेर तीनों को सिद्ध कर सकेगा।

सन्देशा सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा। पर बिभीषण ने उसे समझाया कि अब कपटनीति के बिना कोई चारा नहीं है। किसी तरह पहले विद्या प्राप्त कर लो। फिर चाहे उसे मत छूना।

रावण से सम्मति लेकर दूती आई। उपरम्भा ने विद्या रावण को प्रदान की। रावण विजयी बना, पर उसने उपरम्भा को विद्यागुरु कहकर सम्मानित किया। और नलकुबेर के साथ रहने को समझा कर दुर्लंध्यपुर का राज भी उसे प्रदान किया।

जैनेतर रामकथा में रावण:

इस प्रकार का रावण का चित्रण हमें जैनेतर रामकथाओं में नहीं दिखलाई देता। वाल्मीकि रामायण के एकादशवे सर्ग में सब देव ब्रह्मा के पास जाकर रावण के वध के लिए उपाय सोचने को कहते हैं। रामजन्म का हेतु ही रावण वध है। देवों ने ब्रह्मा से कथन किया -- "भगवन्, आपके प्रसाद से रावण सबको पीडा देता है। उसका नियंत्रण कोई भी शक्ति नहीं कर सकती। वह तीनों लोकों का द्वेष करता है। इन्द्र और देवों को भो बन्धन में रखता है। ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों तथा ब्राह्मणों का दमन करता है। इसलिए उसके वध का कोई इलाज कीजिए।[२३]

रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने भी रावण को खल के रूप में ही जाना है। वे रावण तथा उनके भाई के बारेमें कहते हैं–

"कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर विगत विवेका
कृपारहित हिंसक सब पापी। वर नि न जाहि बिस्व परितापी।
उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महिसुर श्राप वस भए सकल अघरूप।।[२४]

इस प्रकार जैनेतर रामकथा में राम के विरोध के कारण रावण तथा उसके कुटुंबी लोग खल के रूप में चित्रित हुए हैं। रावण तो मानो अधमता एवं दुष्टता का प्रतीक ही समझा जाता है। जैन रामकथा में रावण एक शापभ्रष्ट महापुरुष के रूप में दिखाई देते हैं। रावण की महानता के प्रसंग यत्रतत्र बिखरे पडे हैं जिनसे बिना अतिशयोक्ति के कह सकते हैं कि "सीताहरण के अतिरिक्त रावण के जीवन में कोई कलंक हम नहीं बता सकते।"

---

२३. वाल्मीकि रामायण १५।५ से २१

२४. रा. च. मा. ४।१७५–१७६ -

उत्तर काण्ड की जैन रामकथा :

रावण वध के पश्चात् रामचन्द्र अयोध्या के राजा बने। वे प्रजापालन में दत्तचित्त थे। एक दिन प्रजा के प्रतिष्ठित नेता दरबार में पधारे। उन्होंने प्रार्थना की कि रावण के घर इतने दिन रहनेपर भी सीता का स्वीकार किया गया इसका प्रजापर बडा बुरा प्रभाव पडा है। वे स्वच्छन्दता से आचरण कर रहे हैं। उनकी बातें सुनकर राम चिंतामग्न हुए। सीता पवित्र है फिर भी लोकापवाद से कलंकित बनी है इसलिए मैंने सीता को अपनाने में बडी भूल की है। सीता के बिना मैं कैसे रह सकूंगा ? रामने अन्त में अपने संभ्रमित चित्त को स्वस्थ बनाया। उन्होंने लक्ष्मण को बुलवाया और सीता के त्याग की आवश्यकता उन्हें समझायी।

यह सुनकर लक्ष्मण आगबबूले हो गये। उन्होंने सीतापर कीचड उछालनेवालों को कठोर दंड देने का अपना इरादा प्रकट किया। रामने लक्ष्मण को शान्त कर विदा किया और कृतांतवक्र को बुलवाया और उसके साथ तीर्थ यात्रा के बहाने सीता को वन में भेजा। बीहड वन में पहुंचने पर उसने आँसू बहा सत्य बात कही। जंगल में वज्रजंघ राजा संयोगवश आया। सीता की वह अवस्था देख उसे धर्म भगिनी मानकर वह अपने घर ले गया। यहाँ सीता ने जुडवों को जन्म दिया और अनंगलवण और मदनांकुश ये उनके क्रमशः नाम रखे गये।

नारद के द्वारा सीता के दुखपरंपराकी कथा सुनकर क्रुद्ध बने हुए लवण एवं अंकुश ने रामलक्ष्मण से युद्ध छेडा। युद्ध में लक्ष्मण से संचालित चक्ररत्न दोनों कुमारों की प्रदक्षिणा कर वापस लौटा। इससे लक्ष्मण चकित हो गये। इतने में नारद ने वहाँ पधारकर इन दो पुत्रों का परिचय करा दिया। रामने दोनों को गले लगा लिया। सीता भी वहाँ आ पहुँची। रामने उसे अपनी पवित्रता प्रमाणित करने की आज्ञा दी।

सीता ने अग्निदिव्य का प्रबन्ध करवाया और उसने अग्नि में प्रवेश किया। सीता की पवित्रता के कारण प्रज्ज्वलित अग्नि शीतल जलधारा में परिवर्तित हो गई। राम ने लोगों की प्रतीति हो इसलिए सीता को अग्निदिव्य की आज्ञा दी थी। वे हर्षित होकर उसे ग्रहण करना चाहते थे कि सीता ने राम के साथ रहने से इन्कार कर दिया और वह महाव्रतधारी श्रमणी बन गई। उग्रतप के द्वारा आत्म-शुद्धि करती हुई वह मृत्यु के वाद देवेन्द्र बनी।

सीता के वियोग में राम अतिशोकाकुल हुए। तब देवेन्द्र ने उन्हें समझाया।

राम और लक्ष्मण का अति प्रगाढ स्नेह था। उसकी परीक्षा करने कोई देव वहाँ आया। उसने लक्ष्मण के सामने राम की मृत्यु पर शोक करते अन्तःपुर का भ्रम एवं इन्द्रजाल खडा कर दिया। राम की मृत्यु की प्रतीति पाकर लक्ष्मण

की सचमुच ही मृत्यु हो गई। अब तो अन्तःपुर में शोक छा गया। सीता की मृत्यु तथा लक्ष्मण के वियोग से राम आपे में न रहे सके और वे श्रमण बने। उनके साथ अनेक राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में राम मृत्यु के बाद मोक्षगामी हुए।

जैनेतर रामकथा में उत्तर काण्ड

जैनेतर रामकथा में भी यह कथा कुछ अंश में इसी प्रकार है फिर भी उसमें आकाश पाताल का अन्तर है।

इसमें राम राज्याधिष्ठित होनेपर अगस्त्यऋषि ने रावण के पूर्वजों का इतिहास सुनाया है और रावण के दिग्विजय पर प्रकाश डाला है। हनुमान की जन्मकथा भी यहाँ सुनाई गई है। लोकप्रवाद के कारण सीता का निर्वासन हुआ। लवकुश दो सीता के पुत्र ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में जन्मे। उन्होंने रामकथा गायी।

रामराज्य में ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हुअी। ब्राह्मण ने अधर्म बढने की आशंका प्रकट की। मंत्री सभा के परामर्ष से रामने उस मृत्यु के कारण रूप शूद्र शम्बुक का वध कर देवों से प्राप्त वरदान के द्वारा उस ब्राह्मण पुत्र को जीवित किया।

राम-लक्ष्मण के साथ लवकुश का युद्ध :

रामने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। वाल्मीकि लवकुश को साथ ले यज्ञशाला में पधारे। लवकुश ने रामचरित्र का गान किया। दूसरे दिन वाल्मीकि-ने सीता के साथ यज्ञशाला में प्रवेश किया और सीता के निष्कलंक होने की पुष्टि की।

परंतु सीता पृथ्वी में समाहित हो गई।

राम और काल का संवाद गुप्तता से हो रहा था। मुनि दुर्वास का वह आगमन हुआ। मुनि दुर्वास के शाप से भीत लक्ष्मण ने रामाज्ञा के विपरीत दुर्वासागमन की सूचना दी। फलस्वरूप लक्ष्मण को प्राणत्याग करना पडा। शरयू नदी में प्रवेश कर लक्ष्मण का देहान्त हुआ।

राम के सभी भ्राताओं ने अपने पुत्रों को राज्याधिष्ठित किया और वे महा-प्रस्थान के लिए रामचंद्रजी के साथ शरयू तटपर पहुँचे और ब्रह्मा के द्वारा लाये गये सौ करोड विमानों पर आसीन होकर प्रजा के साथ यथोचित लोक में पधारे।

रामचरित मानस म उत्तर काण्ड :

भरत राम के आगमन के लिए अति उत्सुक थे। हनुमान भी आये। दोनों ने राम के स्वागत के लिए बडी सजधज के साथ तैयारी की।

रामने यथोचित सम्मान करके सबको बिदा किया। उसके पश्चात् अनेकाधिक संवादों की चर्चा की गई है। चारों वक्ताओं श्रोताओं की जिज्ञासाएँ परितृप्त हो जाती है। काकभृशंडी को राम के अद्‌भुत विराट स्वरूप का दर्शन होता है। अन्त में गोस्वामी ने अनन्य अनुराग एवं अविचल भक्ति की माँग की है। यहाँ पर तुलसी के आदर्श रामराज्य की कल्पना अभिव्यक्त हुई है।

उत्तर काण्ड में जैन रामायण के अनुसार ही सीता के अग्निदिव्य की घटना है फिर भी उसमें जैनेतर रामकथा से भिन्नता है। वाल्मीकि रामायण में लंका में सीता ने अग्निदिव्य किया था। उसके पावित्र्य की साक्ष ऋषिमुनि और देवताओं के द्वारा दी गई थी। फिर भी उत्तर काण्ड में सीता को पुनः अग्निदिव्य करना पडा। जैन रामकथा में लोगों में बढती हुई स्वैराचारिता को रोकने के लिए ही केवल एक बार अग्निदिव्य कराया गया है। यहाँ रामके मन में सीत की पवित्रता में लेश भी संशय की आशंका नहीं है इसकी भी प्रतीति हो जाती है।

सीता का मानिनी का रूप भी यहाँ प्रकट हुआ है। पृथ्वी में अन्तर्धान होने की चमत्कृतिजन्य घटना के स्थानपर वास्तविकता के दर्शन होते हैं।

राम का मुनिव्रत ग्रहण रघुकुल परम्परा के अनुकूल ही प्रतीत होता है। राज्यशासन चलाने के बाद ढलती उम्र में वे स्वेच्छा से आत्महित साधना करते थे।

राम-लक्ष्मण के स्नेहबन्धन की घटना दोनों के चरित्र को एक अभूतपूर्व घनिष्टता के संबंध से बांध देती है। जब लक्ष्मण राम की मृत्यु के केवल आभास से प्राणत्याग कर देते हैं तब लक्ष्मण की मृत्यु से राम का विव्हल बनना तथा दीक्षा ग्रहण करना स्वाभाविक ही है। सीता की प्रव्रज्या से भी अविचलित रहनेवाले राम लक्ष्मण की मृत्यु का हाल सुनकर जिस व्याकुलता को प्रकट करते हैं उससे रामचरित की गरिमा में वृद्धि ही होती है।

वाल्मीकि रामायण में उत्तर काण्ड में ब्राह्मणपुत्र को जीवित करने शूद्र शम्बुक की हत्या जिस प्रकार की जाती है उससे अनार्य एवं राक्षससंहार का लक्ष्य ही पुष्ट होता है। राम अपने को सम्राट् के रूप में घोषित करने के लिए यज्ञ करते हैं। इससे रामायण के अंत में भी यज्ञ की महिमा प्रतिष्ठित की गयी है।

वाल्मीकि रामायण में आर्य—अनार्य का संघर्ष, शूद्र—अशूद्र का संघर्ष और यज्ञयाग की महिमा का विवेचन है तो जैन रामकथा में विविध वंशों की एकता प्रतिपादित है। और अर्थ, काम के ऊपर धर्म का अंकुश रखकर मोक्ष का लक्ष्य ही उसमें सिद्ध किया है।

लोकप्रियता की जैन रामकथा में परिणती :

रामकथा का उद्‌भव और उसकी परंपरा विकास में वाल्मीकि का स्थान आदि कवि के रूप में निर्विवाद्य है किन्तु वाल्मीकि को उपलब्ध रामकथा की

परंपरा संभवतः तदयुगीन लोककथाओं में अथवा जनमानस में विद्यमान रही होगी।

कालखण्ड की दृष्टि से विस्तृत जैन रामकथा वाल्मीकि रामायण के बाद अस्तित्व में आई। जैन कवि प्राकृत और अपभ्रंश के ही निष्णात पण्डित नहीं थे बल्कि संस्कृत के भी प्रगाढ दिग्गज पण्डित हुआ करते थे। अतः बहुत संभव है कि जैन रामकथा लिखते समय वाल्मीकि की लोक प्रचलित रामकथा का लोकगाथात्मक रूप अथवा स्वयं कविकल्पना से उत्स्फूर्त कथाप्रसंग तथा दार्शनिक विचार-सरणियों का सम्यक् समावेश कर उन्होंने जैन रामकथा को जैनेतर रामकथा से एक स्वतंत्र पुष्ट और प्रबल धरणीतल पर खडा किया है। परिणामतः वाल्मीकि की रामकथा आर्यों के भारतीय क्षेत्रों में होनेवाले विकास के साथ साथ दक्षिण-पूर्वी एशियाई द्वीपों और देशों में जाकर युग, परिस्थिति तथा समाज के अनुकूल पल्लवित पुष्पित एवं फलित हुई है।

जैन रामकथा प्राकृत, अपभ्रंश से संस्कृत का जल लेकर आधुनिक आर्य भाषाओं तक सतत विकसनशील एवं प्रवाहमान रही। परिणामतः हिन्दी, राजस्थानी, और गुजराती साहित्य में जैन दर्शनपरक अनेक रामकथा विषयक रचनाएँ अस्तित्व में आईं और इस तरह से जैन और जैनेतर रामकथा का नित्यनूतन विकास हुआ।

हम कह सकते हैं कि अब तक का जैन रामकथा का अध्ययन उस बात को सिद्ध करने में सहायक हुआ है कि उसमें अपनी मौलिकताओं के साथ मानवीय स्वभाव की सहज और स्वाभाविक विशेषताएँ भी प्रकट हुई हैं। ये अनुसंधेय तथ्य के रूप में महत्त्वपूर्ण मानी जाने में किसी को हिचकिचाहट नहीं होगी।

इस पारंपरिक कथावस्तु के तुलनात्मक अध्ययन के बाद आगे चलकर हम जैन रामकथाओं के पात्रों का चरित्र चित्रणविषयक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

□ □ □

अध्याय ५

जैन रामकथाओं के पात्रोंका चरित्र चित्रण

इस अध्याय में जैन राम कथा के पात्रों के चरित्रगत विशेषताओं को समझने का उद्योग किया गया है।

जैनेतर रामकथाओं के पात्रों का विभाजन निम्न प्रकार से हुआ है।

पुरुषपात्र

- प्रधान पात्र
  - आर्य
  - अनार्य
- गौण पात्र
  - आर्य
  - अनार्य
- विशिष्ट गुणाभिभूत
  - आर्य
  - अनार्य

इसी प्रकार नारी पात्रों में भी विभाजन किया जा सकता है। किन्तु जैन पात्रों का विभाजन इस प्रकार से नहीं हो सकेगा। इसलिए उनके विभाजन में हमें वंशों को प्रमुखता देनी होगी। उसके अनुसार पात्रों का क्रम निम्न प्रकार से होगा।

पुरुषपात्र

- ईक्ष्वाकु
  - मुख्य
  - गौण
- सोमवंश
  - मुख्य
  - गौण
- विद्याधरवंश
  - मुख्य
  - गौण
- राक्षसवंश
  - मुख्य
  - गौण
- वानरवंश
  - मुख्य
  - गौण
- हरिवंश
  - मुख्य
  - गौण

स्त्री पात्र

- ईक्ष्वाकु
  - मुख्य
  - गौण
- सोमवंश
  - मुख्य
  - गौण
- विद्याधरवंश
  - मुख्य
  - गौण
- राक्षसवंश
  - मुख्य
  - गौण
- वानरवंश
  - मुख्य
  - गौण
- हरिवंश
  - मुख्य
  - गौण

पात्रों का इस प्रकार विभाजन करने पर हम केवल रामकथा से संबंधित प्रमुख पात्रोंका ही चरित्र चित्रण करने का अपना लक्ष्य स्पष्ट करते हैं।

ईक्ष्वाकु वंश के पुरुष पात्र :

ऋषभदेव पुत्र भरत का प्रथम पुत्र आदित्ययशा के नाम से प्रसिद्ध था। उसके वंश में निम्नलिखित राजा हुए।

१. ईक्ष्वाकु वंश–आदि पुरुष

ऋषभदेव
।
आदित्ययशा
।
सिंहयशा
।
बलभद्र
।
वसुबल
।
महाबल
।
अतिबल
।
सुभद्र — सागरभद्र — रवितेज

रवितेज
।
शशिप्रभ
।
प्रभुततेज
।
तेजस्वी
।
तपन
।
प्रतापवान्
।
अतिवीर्य
।
महावीर्य
।
प्रभु
।
विभु
।
अरिदमन
।
मृगारिदमन
।
हिरयनाभ
।
पुंजस्थल
।
ब्रह्मरथ
।
चतुर्मुख
।
हेमरथ
।
यशोरथ
।
पद्मरथ
।
मृगरथ
।
शशिरथ
।
रविरथ
।
मन्धाता
।
उदयरथ
।
प्रतिवचन
।
कमलबन्धु
।
रविशत्रु
।
वसन्ततिलक
।
कुबेरदत्त
।
कुन्थु
।
सरथ
।
विरथ
।
रघनिर्घोष
।
वृषभकेतु
।
गरुडांक
।
मृगांक
।

ककुस्थ
रघु
अनरण्य
अनन्तरथ दशरथ

विजय
वज्रबाहु पुरन्दर
कीर्तिधर
सुकोशल
हिरण्यगर्भ
नघुष
सौदास
सिंहरथ

(२) **सोमवंश**–आदिपुरुष ऋषभदेव पुत्र बाहुबली

बाहुबली
सोमप्रभ
महाबल
सुबल
बाहुबली

(३) **विद्याधर वंश**-आदि पुरुष ऋषभदेव पौत्र नमि

नमि
रत्नमाली
रत्नवज्र
रत्नव्रज
रत्नरथ
रत्नचित्र
चन्द्ररथ
वज्रसंघ
वज्रसेन
वज्रदत्त
वज्रध्वज
वज्रायुध
वज्र
सु वज्र
वज्रंधर
वज्राभ
वज्रबाहु
वज्रांक
वज्रसुन्दर
वज्रास्य
वज्रप्राणि
वज्रसुजलु
वज्र
विद्युन्मुख
सुवदन
विद्युद्दत्त
विद्युद्वान
तडिद्वेग
विद्युद्दंष्ट्र

(४) राक्षस वंश आदि पुरुष—मेघवाहन

राक्षस

आदित्यगति — महाकीर्ति

आदित्यगति

भीमरथ

भीमप्रभादि १०८ पुत्र

पूजार्ह

जितभानु

संपरिकीर्ति

सुग्रीव	चामुण्ड	लंकाशोक
प्रहित	रावण	मयुख
इन्द्रजित	भीम	महाबाहु
सुभानुधर्म	राक्षसवंश	मनोरम
सुरारि	भयावह	रवितेज
त्रिजट	रिपुमथन	बृहद्गति
मथन	निर्वाण भक्तिमान	बृहत्कान्तयस
अंगारक	उग्रश्री	अरिसंत्राश
रवि	अर्हद्भक्तिमान	चन्द्रवदन
चक्रार	पवन	महारव
वज्रमध्य	उत्तरगति	मेघध्वान
प्रमोद	उत्तम	ग्रहक्षोम
वरसिंहवाहन	अनिल	नक्षत्रदमन
सूर	चण्ड	

(५) वानरवंश

आदिपुरुष—श्रीकण्ठ	मन्दर	ऋक्षराज
श्रीकण्ठ	पवनगति	अतिबल
वज्रकण्ठ	वानरवंश	गगनानन्द
इन्द्रयुधप्रभ	रविप्रभ	खेचर नरेन्द्र
इन्द्रमत	अमरप्रभ	गिरिनन्द
मरुत् कुमार	कपिध्वज	

(६) हरिवंश

हरि	महिधर	श्रीवृक्ष
महागिरि	सुमित्र	संजयन्त
हिमगिरि	मुनिसुव्रत	कुणिम
बसुगिरि	सुव्रत	महारथ
इन्द्रगिरि	दक्ष	वासवकेतु
रत्नमाली	इलावर्धन	जनक
सम्भूत	श्रीवर्धन	

इस प्रकार की छः वंशों की नामावली देकर अब हम रामकथा से संबंधित पात्रों का विवरण देंगे।

ईक्ष्वाकुवंश – पुरुष पात्र

प्रधान पात्र – राम, लक्ष्मण, भरत, अप्रधान पात्र – दशरथ

स्त्री पात्र

प्रधान पात्र – सीता, कैकेई, विशल्या अप्रधान पात्र – अपराजिता

विद्याधरवंश – पुरुष पात्र

अप्रधान पात्र – चन्द्रगति, कुबेर

स्त्री पात्र

अप्रधान पात्र – उपरंभा

राक्षसवंश – पुरुष पात्र

प्रधान पात्र – रावण अप्रधान पात्र – बिभीषण, कुंभकर्ण, खरदूषण

स्त्री पात्र

प्रधान– चन्द्रनखा, मन्दोदरी

वानरवंश

पुरुष पात्र प्रधान – हनुमान, वाली
अप्रधान – सुग्रीव

हरिवंश

पुरुष पात्र – अप्रधान – जनक, भामण्डल

इन पात्रों में से जैन रामकथा की विशेषता बतानेवाले पात्रों का चित्रण कर जैनेतर कथा के पात्रों से तुलना कर उनमें पायी जानेवाली विशेषताओं को स्पष्ट करने का हमने प्रयास किया है।

राम का जन्म :

जैन रामकथा का राम युगपुरुष बलभद्र जरूर है किन्तु वह न तो परब्रह्म है न कोई अवतार। इसी कारण से राम जन्म की विशेष महिमा कहीं भी नहीं गाई है। हां, उसकी महानतासूचक स्वप्न राम जननी ने देखे हैं। कवि ने लिखा है कि, "गर्भवती अपराजिता ने किसी शुभतिथि एवं मुहूर्त में खिले हुए उत्तम कमल के समान मुखवाले पुत्र को जन्म दिया। उससे तुष्ट दशरथ ने उसका बडा जन्मोत्सव किया और पद्मदल के समान कान्तिवाले उस पुत्र को पद्म नाम प्रदान किया।[१]

स्वयम्भू ने लिखा है कि "राजा दशरथ के सकल कलासंपन्न चार पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। सबसे बडी (अपराजिता) कौसल्या से रामचन्द्र, सुमित्रा से लक्ष्मण कैकेई से धुरंधर भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न उत्पन्न हुए।[२]"

जैन रामकथा में राम की रूपमाधुरी का विस्तृत वर्णन कहीं भी नहीं है। फिर भी इस वर्णन में राम का रूप सौंदर्य प्रकट होता है।

वाल्मीकि रामायण में रामकथा का आदि हेतु किसी पुरुष श्रेष्ठ का चरित्र-कथन ही है क्योंकि वाल्मीकि ने नारद से प्रश्न किया है कि " हे मुनिपुंगव, उस लोक में सब भूतों में गुणवान, वीर्यवान, कृतज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, दृढव्रती, चारित्र्य-संपन्न कौन है ? हे महर्षे, क्या आप इस प्रकार के पुरुष को जानते हैं ?"[३]

फिर भी वाल्मीकि के राम इष्टदेव के स्वरूप में ही हैं। उन्होंने स्वयं कहा है – " हे राम, आप मेरे आश्रय हैं। आप ही समस्त जगत के आधार, कलि के समस्त कलुष को आप ही नष्ट कर सकते हैं। कालरूपी भीषण सर्प भी आपसे डरता है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके वश में है। हे कलिमलहारी। आपको प्रणाम। आप ही में मेरी अखण्डित भक्ती बनी रहे।"[४]

मानस में राम :

रामचरित मानस में तो तुलसीदासजी भक्त बनकर अपने इष्टदेव राम को ब्रह्मस्वरूपी मानते हैं। उन्होंने कहा है --

---

१. प. च. विमल २५।७,८
२. प. च. स्वयम्भू २१।८-९
३. वा. रा. १।१ से ५
४. वा. रा. (रामायण माहात्म्यम् ।)

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देहधरि होई नर जाहि न जानत वेद ॥"[५]

जैन और जैनेतर रामकथा में राम के प्रति का दृष्टिकोण भिन्न है इसलिए वर्णन में भिन्नता आ गई है। जैन रामकथा को पुरुषोत्तमके रूप में ही वर्णित करती है।

राम की शिक्षा दीक्षा (जैन रामकथा में)

राम को मानव के रूप में ग्रहण करनेपर उसकी शिक्षा का प्रबन्ध भी उसी प्रकार किया गया है। काम्पिल्य नगर के भार्गव का पुत्र जो शस्त्रविद्या में अति श्रेष्ठ था, साकेत नगरी में आया। उसकी कला देख राजा दशरथ ने अपने चारों पुत्र उसे सौंपे। विमल सूरि ने कहा है "इस प्रकार विज्ञान, बल, शक्ति, एवं समस्त ज्ञान से युक्त पुत्रों को कलाओं में कुशल जानकर तुष्ट राजाने सम्मान एवं सम्पत्ति द्वारा गुरु की " विमल " मन से पूजा की।"[६]

जैनेतर रामकथा में :

वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र ऋषि से प्राप्त बला, अतिबला विद्याओं का ही उल्लेख है।

तुलसीदासजी ने राम की शिक्षा दीक्षा का स्पष्ट उल्लेख तो किया है पर साथ में यह भी कह दिया है कि–

" जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ तह कौतुक भारी।"[७]

राम की शिक्षादीक्षा का प्रबन्ध धनुर्विद्यानिपुण गुरू के पास किया जाने से आगे चलकर आवश्यक युद्धशास्त्रनैपुण्य उन में प्रतीत होता है।

साथही जैन रामकथा में रामके चरित्र को लौकिक स्तर पर ही रखा है। गुरु की विद्यानिपुणता का वर्णन कर विमलसूरि ने रामादि की शस्त्रविद्याकुशलता तथा भावी संकटों का सामना करने की उनकी क्षमता का स्पष्ट दर्शन इस वर्णन से कराया है। यह वर्णन अवतारवाद के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त है।

सीतास्वयंवर :

सीता के विवाह का प्रसंग जैन रामकथा में वास्तविक रूप में वर्णित है। जनक राजा की मिथिला नगरी पर म्लेच्छ राजा आयरंग ने आक्रमण किया।

---

५. रा. च. मा. १।५०
६. प. च. वि. २५।१७ से २६
७. रा. च. मा. १।२०३:२३,

अपनी रक्षा में सहायक बनने के लिए जनक राजा ने दशरथ राजा से विनन्ति की। राजा दशरथ जनक की सहायता के लिए जाना चाहते थे पर रामने इस कार्य का भार अपने ऊपर ले लिया। सेना के साथ जाकर उसने म्लेच्छों को मार भगाया और राजा दशरथ को भयमुक्त किया। राम की वीरता, परोपकारिता तथा निर्भीकता का हमें यहाँ दर्शन होता है। म्लेच्छों से रक्षा करनेवाले वीर रामचन्द्र से प्रभावित एवं उपकृत होने के कारण जनक ने सीता को रामचन्द्रजी से ब्याहने का प्रस्ताव रखा। इसी बीच नारदजी सीता के महल में आये। उनकी चित्रविचित्र वेषभूषा से भयभीत होकर सीता चिल्लाई। महल रक्षकों ने धक्के देकर नारद को निकाल दिया। अपमान से क्षुब्ध बने नारद ने सीता का चित्र बनाकर चन्द्रगति विद्याधर के द्वारा अपहृत भामण्डल को बताया। मोहित होकर भामण्डलने उससे ब्याह की इच्छा प्रकट की। चन्द्रगति ने उसकी इच्छापूर्ति के लिए विद्याबल से जनक को अपने स्थान पर बुलवाया और सीता की भामण्डल के लिए माँग प्रस्तुत की। जनक ने कहा " सीता राम को प्रदान की गई है।" चन्द्रगति ने उसे वज्रावर्त धनुष देकर कहा कि अगर राम इस धनुष को वश करे तो वह इस कन्या को ग्रहण करे। आपत्धर्म समझकर जनक ने वह बात मान ली। राम ने उस धनुष को वश कर सीता के साथ विवाह किया।

जैनेतर रामकथा में सीता विवाह :

वाल्मीकि रामकथा के अनुसार विश्वामित्र यज्ञरक्षा के निमित्त राम-लक्ष्मण को यज्ञस्थानपर ले गये। सीता का स्वयंवर निर्धारित जानकर वे राम-लक्ष्मण के साथ वहाँ उपस्थित हुए। अनेक देशों के राजाओं की उपस्थिति में उन्होंने शिवधनुष पर डोरी चढाई। उसको खींचने पर टंकार के साथ वह टूट गया।

तुलसीदास ने भी इसी प्रकार इस प्रसंग का वर्णन किया है।

जैन रामकथा में इस प्रसंग के द्वारा राम की वीरता, धैर्य, एवं निर्भयता के दर्शन होते हैं जिससे आगे चलकर बड़े संकटों का निर्भयता से सामना करने की उनकी क्षमता प्रतीत होती है। एक वीर पुरुष की महत्ता उनको प्राप्त हुई है। जैनेतर रामकथा में राम विष्णु के अवतार हैं। विष्णु भगवान के रूप में सामर्थ्य-संपन्न है, फिर भी परशुराम के साथ उनका संघर्ष बताने में विष्णु के दो अवतारों में वीरता किसमें अधिक थी इसका दर्शन होता है। राम के एक पुरुष श्रेष्ठ के रूप में जैन रामकथा में सहजदर्शन होते हैं तब जैनेतर रामकथा में अवतार वाद के कारण चरित्रपर दिव्यता का वलय आने से सहजचरित्र में बाधा पहुँचती है।

राम का वनगमन :

जैन रामकथा में राम का निर्वासन उपलब्ध होता। केवल गुणभद्र है के

उत्तर पुराण में राम का वनगमन नहीं है। केवल माता के कारण राम को कष्ट न हो इसलिए उसे वाराणसी जाने के लिए कहा है पर विमल सूरि के प्रातिनिधिक रामायण में निर्वासन की कथा दी है। फिर भी राम के वनगमन की जैन राम कथा की अपनी विशेषता है जो उसकी अपनी मौलिकता कही जा सकती है और जिससे राम के चरित्र का विशिष्ट पहलू प्रकट हो जाता है।

जैन रामकथा के अनुसार कैकेई ने केवल एक ही वर माँगा था– भरत को राज्य प्राप्त हो। रामने पिता की आज्ञा को सिर आँखोंपर चढा लिया। इससे उनकी मातृभक्ति एवं पितृभक्ति प्रकट हो ही गई थी। पर उनमें अपने बंधु के प्रति जो आत्मीयता थी वह प्रकट नहीं हुई। राम जानते थे कि उनकी उपस्थिति में भरत राज्य ग्रहण नहीं करेगा इसलिए उन्होंने स्वेच्छासे वनगमन का निर्णय लिया। रामने कहा है " हे तात, आप अपना वचन रखें। आपकी लोकों में यदि अकीर्ति होगी तो वह मेरे लिए सुखकारी नहीं होगी। हे प्रभो! सुपुत्र को तो हमेशा वही सोचना चाहिए कि जो एक मुहुर्त के लिए भी पिता को शोकाकुल न करे।"[७अ] पिता को एक मुहूर्त भी शोकाकुल न करनेवाला पुत्र यह कैसे सहन कर सकता है कि भरत राज्य ग्रहण करने से इन्कार कर दे। इसीलिए उन्होंने भरत से स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा–" हे निर्मल कीर्तिवाले भरत, तुम पिता के वचन का पालन करो। मैं जंगलमें, नदियों के तटपर तथा पर्वतों पर एकान्त स्थान में निवास करूंगा जिससे कोई मुझे पहचान न सके।"[८] और यह कहते समय रामने भरत को गले लगाया।

जैनेतर रामकथा में राम का वनगमन :

वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का वर्णन करते समय वाल्मीकिने कहा है कि कैकेई ने दो वर मांगे–" रामके राज्याभिषेक का जो प्रबन्ध हुआ है उसी से भरत का राज्याभिषेक किया जाय और राम वल्कल, मृगाजिनादि धारण कर चौदह साल तक दण्डक वन में रहे।"[९]

तब रामने प्रत्युत्तर किया " हे देवी, मैं राजा की वचनपूर्ति के लिए अग्निप्रवेश भी करूंगा, हलाहल भी प्राशन करूंगा, सागर में डूबना भी मुझे स्वीकार्य है।"[१०]

तुलसीने उस प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा है—

" जाइ दीख रघुबंसमनि निपट कुसाजु।

७अ. प. च. विमल ३१।७५ से ७७

८. प. च. वि. ३१।९० से ९३

९. वा. रा. १२।२६, २७

सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि । मनहुं वृद्ध गजराजु ।।
सूखहिं अधर जरइ सब अंगू । मनहुं दीन मनि हीन भुअँगू ।
सरुष समीप दीखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई ।। " [१०]

रघुवंशमणि रामचन्द्र ने देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पडे हैं। मानों मणि के बिना साप दुखी हो रहा हो। पास ही क्रुद्ध कैकेई को देखा मानो साक्षात् मृत्यु ही बैठी हो।

उस समय भी राम की शांति, कोमलता एवं मधुरता में कोई परिवर्तन नहीं आया है। तुलसी ने उस समय का वर्णन किया है--

" मन मुसकाइ भानुकुल भानू । रामु सहज आनन्द निधानू
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बाग विभूषण ।

राम की पिता के प्रति भक्ति तथा उनका धीरोदात्त स्वभाव प्रकट होता है। उसकी कोमलता कभी कठोरता में परिणत नहीं होती। उनके चरित्र की विशेषता इस कथा से प्रकट होती है।

फिर भी इस प्रसंग के कारण जैन रामकथा में राम की जो विशेषता दिखती है उसका जैनेतर रामकथा में अभाव ही है। राम का वन निर्वासन कैकेई की माँग का फल नहीं वह तो पिता की प्रतिज्ञापूर्ति हो इसलिए रामने स्वेच्छा से किया हुआ त्याग है।

जैनेतर रामकथा में वर्णित उस समय की दशरथ की दशा देख राम के लिए वननिर्वासन अनिवार्य हो गया था। पर केवल भावनाविवशता या पिता को सान्त्वना देने का ही इसमें हेतु नहीं है किन्तु अपनी ओर से बन में स्वेच्छा से जाने का प्रस्ताव रखकर उन्होंने अपने बन्धु के स्वभाव का परिचय बताया। दीर्घदृष्टि से सोचकर उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता एवं चातुर्य का भी परिचय दिया है।

दशरथ, कैकेई या भरत मोहमूढ बन गये हैं। कैकेई अपने पुत्र के लिए राज्य चाहती है। राजा से अपने प्रिय ज्येष्ठ पुत्र का स्वत्व छिना जाना, सहा नहीं जाता। भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा का अनादर भी नहीं कर सकता। राम की आज्ञाकारिता के साथ वीरता एवं गांभीर्य का भी परिचय होता है। यहाँपर राम का चरित्र उँचा उठता है। डॉ. चन्द्र ने भी कहा है कि--

" विमलसूरि के पउमचरियं में राम का चरित्र कुछ बातों में वालमीकि रामायण से ऊँचा उठता है।" [११]

---

१०. रा. च. मा. २।३९, ३९-१।
११. डॉ. चन्द्र लिटररी इव्हॅल्युएशन ऑफ पउमचरियं पृ. ८, १९६६ ई.

उपरोक्त कथन का यहांपर अनुभव होता है। रामने स्पष्टता से माता से कहा – "हे माता, जो वचनबद्ध वरदान है, वह पिता के सिरपर ऋण का बोझ है। अगर मैं यहीं रहूँ तो भरत राज्य ग्रहण नहीं करेगा। फिर पिता इससे उऋण कैसे होंगे ?"[१२]

इस प्रसंग से जैन रामकथा की मौलिकता का अनुभव होता है।

राम की पत्नी के प्रति निष्ठा :

सीता के अपहरण से दुखी राम के द्वारा किया गया विलाप उनका पत्नी-प्रेम प्रकट करता है। पत्नी के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने का उनका संकल्प सचमुच ही बडा प्रशंसनीय है।

जैन रामकथा में भी राम की शोकाकुल दशा का यथार्थ चित्रण इस प्रकार है।

"पुनः प्रिया को याद करके वे मूर्च्छित हो गये। होश में आने पर सीता–सीता इस प्रकार चिल्लाते वे उसे ढूंढने लगे। हे मत्त गजश्रेष्ठ। इस अरण्य में भ्रमण करते समय क्या तुमने सौम्य स्वभावशालिनी महिला यदि देखी हो तो क्यों नहीं मुझे बताते ? हे तरुवर तुम भी बहुत ऊँचे और सघन छायावाले हो। क्या तुमने इस जंगल में वह अपूर्व स्त्री नहीं देखी ?"[१३]

"मैंने देख लिया है, देख लिया है। इधर आओ, इधर आओ। इस तरह प्रलाप करके और प्रतिध्वनियों से मूढ बनकर राम इधर उधर दौडने लगे।"[१४]

स्वयम्भू ने भी विरह का वर्णन इस प्रकार किया है।

कहाँ मैं, कहाँ मैं और कहाँ कुटुंबीजन। हा। मेरे कुटुंब को भाग्यदेवता ने कहीं से कहीं बिखेर दिया। इस प्रकार अत्यन्त विलाप करनेवाले राम मूर्च्छित हो गये।

मूर्च्छाविव्हल राम "हा सीता।" कहकर उठ बैठे। मुनियों ने समझाया। उनके उपदेश को सुनकर अविरत अश्रुधारा बहानेवाले राम को उन्होंने बार बार समझाया कि संसार किस प्रकार क्षणभंगुर है। यह सुनकर राम उठ बैठे, किन्तु रोते हुए अपनी सुधबुध फिर खो बैठे। फिर व्याकुल होकर राम "हा सीता। हा सीता" कहते हुए दौडने लगे। उन्होंने वनदेवी से पूछा, मुझे क्षण क्षण में क्यों दुखी कर रही हो ? बताओ यदि तुमने मेरी कान्ता देखी हो। कहीं वे नील कमलों को अपनी पत्नी की आँखें समझ बैठते थे तो कहीं हिलते हुए अशोक को वे समझते हैं कि सीतादेवी की बाहें हिल डुल रहीं हैं।[१५]

---

१२. प. च. वि. ३१।९०

१३. प. च. वि. ४५ ५६, ५७, ५८

१४. प. च. वि. ४५ ६४

१५. प. च. स्व. ३९।४ से ५१

इस प्रकार समस्त धरती और वनमें सीता की खोज करके राम लौट आये। वे एक सुन्दर लताकुंज में पहुँचे जहाँ उन्होंने अपना धनुष्य एक ओर रख दिया और वे धरतीपर गिर पडे।"[१६] जैन रामकथा में इस प्रकार राम की विरह दशा का वर्णन है।

जैनेतर रामकथा में विरह वर्णन :

वाल्मीकि रामायण में सीता ही एक मात्र पत्नी बतलाई गई है इससे सीता के विरह में राम के विलाप प्रकृति को भी विषादमयी बना देते हैं। मृग को मार कर लौटते समय वे देखते हैं कि चारों ओर अपशकुन ही अपशकुन प्रतीत होते हैं। तब वे लक्ष्मण से कहते हैं--"अगर वैदेही जीवित होगी तो मैं आश्रम में जाऊँगा अन्यथा मैं अपने प्राण तज दूंगा।"

"हे महाबाहु लक्ष्मण। क्या तुमने मेरी प्रिया को देखा है ? हा। प्रिये। सीते तुम कहाँ हो ? इस प्रकार बार बार विलाप करते राम उन्मत्तसा होकर अपनी प्रिया को ढूंढते हुए नदी, पर्वत, झरणों और जंगलों में भटकने लगे।[१७]"

रामचरित मानस में पुष्पवाटिका प्रसंग में राम के पूर्वानुराग का सुस्निग्ध परम पावन तथा दृढरूप चित्रित किया गया है। इससे इस प्रसंग में उनकी विरह वेदना अधिक तीव्र बन गई है।

"हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता।
लछिमन समझाए बहुभाँति। पूछत चले लता, तरु पाँति।।
हे खग, हे मृग, हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैंनी।" [१८]

जैन तथा जैनेतर रामायणों में राम की विरहदशा का वर्णन देखकर कहना होगा कि जैन रामकथा में इस घटना का अनोखा स्थान है। जैनेतर रामकथाओं में सीता राम की एकमेव पत्नी थी किन्तु जैन रामकथा राम की ८००० स्त्रियाँ बतलाती हैं। इतनी स्त्रियाँ होनेपर भी राम सीताहरण से इतने व्यथित हो जाते हैं इससे राम के चरित्र की उदात्तता एवं महानता प्रकट होती है। पत्नी के प्रति निष्ठा तथा पत्नी के प्रति अपनी प्रतिज्ञाओं को निभाने की उनकी क्षमता इसमें दिख पडती है।

राम विलाप का औचित्य :

राम का विलाप एक महापुरुष के रूप में चित्रित रामके लिए औचित्य

---

१६. प. च. स्व. ३९।१२-९
१७. वा. रा. ४०:११
१८. रा. च. मा. अरण्यकाण्ड २९।४ से ८

रखता है। पर जैन रामकथा में वे बलभद्र हैं। उसी भव के मोक्षगामीं है फिर भी कर्मसत्ता उन्हें नहीं छोडती। कर्म की महासत्ता के आगे क्या राजा, क्या रंक; सब एकसे हैं इसलिए मोहविमूढ राम का चित्रण जैन दर्शन के बिलकुल निकट एवं अनुकूल है।

त्रिखण्ड पृथ्वी के स्वामी लक्ष्मण और उनके ज्येष्ठ बंधु श्रीराम का वैभव एवं राज्यविस्तार को देखा जाय तो राजनीति एवं लोकरूढी के अनुसार इतनी पत्नियों का आस्तित्व असंभव या उपहासास्पद नहीं प्रतीत होता।

जैनेतर रामायणों में राम को एकपत्नीव्रती बताया गया है फिर भी उनमें हमें राम के एकपत्नीव्रत के अभाव का कहीं कहीं दर्शन होता है।

अयोध्याकांड में कैकेई और मंथरा के वार्तालाप में मंथरा कहती है– "रामके अभिषेक के बाद उनकी स्त्रियाँ फूली नहीं समाएँगी और भरत के क्षय से तेरी पुत्रवधुएँ अप्रसन्न होगीं।"[१९] यहाँ रामस्य परमा स्त्रियः और "स्नुषास्ते" ये दोनों पद राम की एक से अधिक पत्नियाँ होने का समर्थन करती है।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में राम का अयोध्या में आगमन हुआ उसका वर्णन इस प्रकार है।– "इन्द्र शची को देता है उस प्रकार रामने सीता को शुध्द मधु दिया। सेवकों ने विविध प्रकार के फलों के साथ मांस लाये। अनेक नर्तिकाएँ और गायिकाएँ आकर नृत्यगान करने लगी। उदार हृदय की नृत्य-पारंगत स्त्रियाँ आकर वहाँ मद्यप्राशन कर नृत्य करने लगी। हर एक को किस प्रकार प्रसन्न करना यह जाननेवाले राम उन स्त्रियों में मग्न हुए।"[२०]

राम की ८००० स्त्रियों का वर्णन जैनेतर रामायण के एक पत्नीव्रत की भावना के कारण चाहे अतिशयोक्तिभरे क्यों न लगे परन्तु उस काल की परिस्थिति, राज्यविस्तार तथा राजनीति को देखते हुए उनमें कोई असंभाव्यता नहीं आ पाई है। जैनेतर रामायणों में भी उसके संकेत मिलते हैं। फिर भी सीता विरह में राम का विलाप पढ़कर हम कह सकते हैं कि रामके चरित्र की उच्चता में उससे कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। ८००० पत्नियों का स्वामी होकर भी सीता के प्रति जो अनुराग उन्होंने बताया है वह प्रशंसनीय है और रामचरित्र को उसकी श्रेष्ठता से नीचे नहीं घसीटता।

सीता का अग्निदिव्य :

राम के चरित्र चित्रण में सीता के अग्निदिव्य का स्थान बहुत ही महत्त्व-

---

१९. वा. रा. ५।१२

२०. वा. रा. २५।४१ से ४४।

पूर्ण है। जैन रामकथा में रावण के विजय के पश्चात् लंका में सीता का अग्निदिव्य नहीं है। इससे सीता के प्रति राम का विश्वास तथा आत्मीयता अपने आप प्रकट हो जाती है। यहाँतक कि अयोध्या लौटते समय राम सीता को उन विविध स्थलों का परिचय देते है जहाँ की स्मृतियाँ उनके वननिवास में दृढ बन गई थी। सीतापहरण के बाद राम सीता का यह प्रथम मीलन था इसलिए यह वर्णन राम के चरित्र के विविध पहलुओं को उभारता है। जैन रामकथा में इसका वर्णन इस प्रकार है– "पुष्पप्रकीर्षक उद्यान के पास राम ने दासी से पूछा कि सीता का निवास कहाँ है ? दासी ने स्थान बतानेपर वे उधर मुडे। राम हाथीपर आरूढ हो वहाँ पहुँचे कि सीता अत्यादर से उठ खडी हुअी। पतिदर्शन से उसका मुख प्रफुल्लित हुआ। उसकी कृशता नष्ट होकर शरीर में नवचेतना आई। उसकी आँखों से हर्ष के आँसू ढुलकने लगे। रामने उसे गले लगाकर दृढालिंगन दिया। इस अभूतपूर्व सुख से सीता रोमाँचित हुई। देवताओं ने भी इस अभूतपूर्व मीलन पर फूलों की वृष्टि की।"[२१]

जैनेतर रामकथा में :

जैनेतर रामकथा इस प्रसंग को भिन्न प्रकारसे प्रकट करती है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का चित्रण इस प्रकार दिया है – "रावण वध से आज मेरा अपना पुरुषार्थ प्रकट हुआ और उसका प्रभाव भी चारों ओर विदित हुआ है। इस प्रकार के रामके वचन सुनकर प्रमुदितमुखी सीता का आनन आँसुओं से परितृप्त हो गया। पर उसे देखकर राम आगबबूला हो गये। राक्षस और वानरों के बीच वे इस प्रकार कठोर वचन बोल उठे– "दुष्मनों के दमन के लिए मानव कर सकता है वे सारे प्रयास मैंने किये। जिस प्रकार अगस्त्यने दक्षिण दिग्विजय किया था उसी प्रकार मैंने पृथ्वी को जीता है। सब प्रकार के आक्षेपों से मैंने रक्षा की है। सुविख्यात वंश का आत्मगौरव मैंने बढाया है। जिसके चरित्र पर सन्देह किया जा सकता है ऐसी तू मेरे सामने खडी है। चौंधिया गई हुई आँखों के लिए दीपक के समान तू मेरे लिए तिरस्करणीय है। इसलिए हे जनकसुता। तू अपनी स्वेच्छा के अनुसार चाहे जहाँ चली जा। मेरे लिए तू अस्वीकार्य है। ऐसा कौन श्रेष्ठकुलोत्पन्न मनुष्य है कि जो परगृह में स्थित अपनी पत्नी को पुन: घर में रखेगा ? तू तो रावण के अंक से परिभ्रष्ट है तथा उसकी दृष्टि से दूषित है। इसलिए मैं तुझे कभी स्वीकार नहीं कर सकूंगा।"[२२]

राम के ये कठोर वचन क्या राम की अबतक की महानता के अनुरूप प्रतीत

---

२१. फडकुलेशास्त्री– पद्मपुराण भाग २ पृ. २५६, १९६५ ई.
२२. वा. रा. ७९ ३९ से ५५

होते हैं ? यह तो किसी स्त्री जाति के प्रति सन्देह रखनेवाले राजकुमार से लगते हैं। आत्मगौरव के लिए रामने युद्ध छेडा था। सीता तो केवल एक बहाना बन गई थी। श्री अरविन्दकुमार इस प्रसंग के विषय में कहते हैं--

"राम की सच्ची कसौटी तो तब हुई जब कि लडाई जीतने पर अपहरण के बाद पहली बार सीता उसके सामने आई। रामके मुख पर क्रोध, सुख एवं दु:ख के भाव छा गये हैं। सीता के प्रत्यागमन से राम को जरा भी खुशी नहीं हुई। वास्तवता का उन्हें खयाल आया कि अब सीता का क्या किया जाय ? वे अपने मनोभावों का विश्लेषण करने लगे। सीता का स्वीकार करना, उनका उद्देश्य नहीं था। अपने गौरव पर की गई चोट से वे तिलमिला उठे। रावण ने सीता का स्वीकार करने से शीलभंग किया होगा इसी सन्देहात्मक तर्कके कारण वे सीता का स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। सीता के शील के प्रति उनके मन में सन्देह था। [२३]

सीता का लंका का अग्निदिव्य वास्तव में राम का एकपत्नीव्रत या पत्नी के प्रति के अनुराग को वह फीका बताता है।

लंका में अग्नि प्रवेश कर सीता ने अपनी पवित्रता प्रमाणित की थी। वायु, आकाश आदि ने इसकी साक्ष दी थी। चन्द्रसूर्य ने भी देवों के सामने सीता के शील की प्रशंसा की थी। सब ऋषियोंने उसे निष्पाप घोषित किया। इसके बावजूद लोगों के अपवादों से भीत होकर रामने सीता को दूसरी बार अग्निदिव्य करने की आज्ञा दी।

यह आज्ञा कहां तक उचित कही जा सकती है ? राजा के या पति के रूप में उसने सीता को न्याय नहीं दिया है। अपने गौरव पर उन्होंने सीता को निछावर कर दिया है। पतित अहिल्या को पदस्पर्श से पुनीत करनेवाले राम पवित्र सीता की क्यों जनापवाद से रक्षा न कर सके ?

जैन रामायण में राम के पुरुषोत्तमत्व को सुचारु ढंग से निभाया है। क्योंकि अपहरण के बाद का पहला मिलन ही राम के सही भावों को प्रकट करता है। जैन रामकथा में राम को न अपनी कीर्ति की चिन्ता है न सीता के प्रति कोई सन्देह है। यही राम का वास्तविक चरित्र है जो जैन रामकथा में अभिव्यंजित होता है।

रामने सीता का निर्वासन किया है जिसका वर्णन जन रामकथा में उत्तर काण्ड में आया है। लंका में अग्निदिव्य न होने से लोक प्रतीति के लिए किया गया

---

२३. अरविंदकुमार–ए स्टडी इन दि एथिक्स ऑफ दि बॅनिशमेंट ऑफ सीता पृ. १६, सन १९६१ ई.

यह अग्निदिव्य समर्थनीय बन सकता है। फिर भी उस समय रामने सीता को पवित्र एवं शीलवती ही माना है।

इस प्रसंग के द्वारा जैन रामकथा ने राम का चरित्र ऊँचा उठाने में बडा योगदान दिया है। और जैनेतर रामकथा में मलीन बनती राम की प्रतिमा इससे धुलकर उज्ज्वल बनी है। राम के यथार्थ चरित्रदर्शन के साथ आदर्श को भी निभाया है।

हमें राम में वीरता, आज्ञाधारकता, सहृदयता, प्रजाप्रेम, दीनवत्सलता आदि गुणों के भी दर्शन होते हैं।

जैन रामकथा में लक्ष्मण का चरित्र चित्रण :

जैन रामकथा में लक्ष्मण वासुदेव एवं तीन खण्ड के राजा हैं तब राम उनके बडे भाई बलभद्र अर्थात सहायक हैं।

स्वप्न की महिमा :

"पउमचरियं" के अनुसार राम और लक्ष्मण के जन्म के पूर्व राजमाता अपराजिता ने और लक्ष्मण माता सुमित्रा ने स्वप्न देखे। इन स्वप्नों में भी विशेषता मानी जाती है। आत्मा की योग्यता के अनुसार स्वप्नों की संख्या में वृद्धि है।

राम की माता ने स्वप्न में सफेद सिंह, सूर्य एवं चन्द्रमादि चार शुभ पदार्थ देखे।

सुमित्रा ने स्वप्नों में कमल, हाथी, लक्ष्मी, किरणों से प्रज्वलित चन्द्र एवं सूर्य देखे। पर्वत के अत्युच्च शिखर पर खडे होकर सागर तक फैली हुई प्रशस्त पृथ्वी देखी। इस प्रकार कुल सात पदार्थ स्वप्न में देखे।

यहाँ लक्ष्मण की माता के स्वप्न अपराजिता के स्वप्नों से अधिक महान फलदायी थे जिसके द्वारा लक्ष्मण की महानता श्रीराम से भी अधिक प्रकट की है। [२४]

हेमचन्द्राचार्य ने "त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में इस बात को और अधिक स्पष्ट किया है।" अन्यथा अपराजिता महीषीने बलभद्र, जन्मसूचक हाथी, सिंह, चन्द्र और सूर्य इस प्रकार चार सपने देखे। रानी सुमित्रा ने वासुदेव के जन्मसूचक हाथी, सिंह, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, लक्ष्मी और समुद्र इस प्रकार सात स्वप्न देखे। [२५]

---

२४. प. च. वि. २५।१ से ६

२५. त्रि. श. पु. च. पृ. ६५, ६६। सन १९६१ ई.

इन स्वप्नों के कथन के द्वारा लक्ष्मण की श्रेष्ठता प्रस्थापित की है। क्योंकि जैन मान्यता के अनुसार चक्रवर्ती की माता १४ सपने देखती है किन्तु वे अस्पष्ट होते हैं। तीर्थंकर की माता भी १४ सपने देखती है। यहाँ सपने व्यक्ति की योग्यता एवं श्रेष्ठता सूचक कहे गये हैं।

दोनों के वर्णन में भी इसी प्रकार की भिन्नता स्पष्ट होती है। राम का नाम "पद्म" इसलिए रखा गया कि उसकी शरीर कान्ति पद्म सी थी और उसके जन्म से पद्मा एवं लक्ष्मी में वृद्धि हो गयी थी।

सुमित्रा ने अत्यंत रूपवान पुत्र को जन्म दिया। शत्रुओं के घरों में महापाप सूचक दारुण उत्पात हुए जब कि मित्रों के नगरों में विपुल सुखसम्पत्ति की वृद्धि हुओ। नीलकमल दल के समान श्यामवर्णमाला वह श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त पुरुष था। अत: गुण के अनुरूप उसका नाम लक्ष्मण रखा गया।"[२६]

राम लक्ष्मण की विशेषता :

हेमचन्द्राचार्य ने दोनों बालकों की विशेषता इसी प्रकार बतलायी– रामके जन्म के समय दशरथ को अन्य राजाओं की ओर से अनपेक्षित रूप में कीमती उपहार आने लगे। राजा ने सोचा कि पद्मा के निवासस्थान के रूप में जन्म लेनेवाली आत्मा महर्धिक देवता की थी।

लक्ष्मण के रूप में जन्म लेनेवाली आत्मा परम महर्धिक देवता की थी। सम्पूर्ण लक्षणों को धारण करनेवाले जगन्मित्र पुत्र रत्न का जन्म हुआ।[२७]

इस वर्णन में महर्ध्दिक और परम महर्द्धिक इस प्रकार की तरतमता से श्रेष्ठता प्रस्थापित की है। इस प्रकार राम के लिए लक्ष्मी की वृद्धि का कथन है और सम्पूर्ण लक्षणों से संपन्न एवं जगन्मित्र का विशेषण लक्ष्मण की महत्ता को स्पष्ट करते है।

सीता स्वयंवर :

सीता स्वयंवर के प्रसंग में दिया हुआ वर्णन भी विचारणीय है।

"राम धनुष्य के पास गये। अग्नि की ज्वाला से सहित ज्वाला को भी राम ने सहसा उठा लिया। लोहे के बने हुए मंचपर स्थापित करके उन्होंने धनुष्य पर शीघ्र ही डोरी चढा दी। विश्व में जब ऐसा प्रलय का आवर्तन हो रहा था तब राम ने सब राजाओं के समक्ष उस उत्कृष्ट धनुष्य को उठाकर उसपर डोरी चढा दी।

---

२६. प. च. वि. २५।७ से ११

२७. त्रि.श. पु. च. पृ. ६६ : सन १९६१ ई.

धनुष को उतार कर राम सीता के साथ अपने आसनपर आराम से स्थित हुए। लक्ष्मण आगे बढे, उन्होंने उस धनुष्य को उठाकर उसे वलय की भाँति गोलाकार बना दिया और क्षुब्ध समुद्र के समान निर्घोष करते हुए उसको दर्प के साथ खींचा। उसके पराक्रम को देख भय से उद्विग्न सब विद्याधरों ने गुणवाली अठारह उत्तम कन्याएँ लक्ष्मण को दे दीं।[२८]"

आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने इस धनुभँग के वर्णन में लिखा है–फिर धनुर्धारी में श्रेष्ठ श्रीराम ने वज्रावर्त धनुष्य को नमाकर उसपर दोरी चढा दी। कानतक खींचकर उसका आस्फालन किया। सीता ने स्वेच्छा से उनके गले में वरमाला पहनाई।

फिर लक्ष्मण ने रामाज्ञा से अर्णवावर्त धनुष्य पर दोरी चढाई। उसके आस्फालन से दश दिशाएँ बधिर हो गईं।[२९]

वनगमन :

वनगमन प्रसंग में भी हमें लक्ष्मण के चरित्र की विशेषता एवं महत्ता प्रतीत होती है।

"पउमचरियं" के अनुसार लक्ष्मण की प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार अभिव्यक्त हुई हैं। - "जानेके लिए उद्युक्त राम को देखकर लक्ष्मण रुष्ट हो गये। क्योंकि पिताने अयशपूर्ण कार्य किया है। इस जगत की परिपाटी के अनुसार राजाओं को राज्य मिलता है। अदीर्घदर्शी पिता ने विपरीत कार्य किया है। मुनिवर की भाँति लोभरहित वीर रामके गुणों का पता कौन पा सकता है? अथवा आज मैं राज्य की धुरा धारण करनेवाले भरत का सब कुछ नष्ट कर डालता हूँ और कुलपरम्परा प्राप्त आसन पर राम को बिठाता हूँ।" इस प्रथम प्रक्रिया के बाद तुरन्त ही लक्ष्मण अपने आप को संयत कर लेते हैं और विवेक से सोचते हैं--

"आज मेरे ऐसे विचार करने से क्या होगा? वस्तुतः सच बात तो सिर्फ पिता और बडे भाई ही जानते हैं इसलिए क्रोध को शान्त कर अत्यन्त विनय के साथ पिता को प्रणाम करके दृढचित्त लक्ष्मण ने अपनी माता सुमित्रा से अनुज्ञा माँगी।[३०]

अन्याय के विरोध में उनका खून खौलता है। फिर भी हृदय में विवेक का दीप जलता ही रहता है।

---

२८. प. च. वि. २८।११३ से १२६

२९. त्रि. श. पु. च. पृ. ७३, ७४ :।

इस प्रकार लक्ष्मण का चरित्र जैन रामायण में उचित ढंग पर निखरा हुआ दिखाई देता है। वज्रकर्ण की रक्षा लक्ष्मण ही करता है।

शम्बुक वध से लक्ष्मण ने अपने ऊपर आपत्ति ला दी :

वास्तव में शम्बुक वध से राम के ऊपर वन में आ पडनेवाली आपत्ति का सूत्रपात लक्ष्मण के हाथों अनजान में हुआ है। शम्बुक वध से तप्त बनी हुई चन्द्रनखा राम लक्ष्मण को देख कामविह्वल हो जाती है पर राम और लक्ष्मण के मौन से दीर्घ निःश्वास और गरम आँसू छोडती हुई वह बडबडाती शीघ्र ही चली गई। उस दिव्य अंगना के रूप एवं गुण में अनुरक्त विमल स्वभाववाले लक्ष्मण ने दूसरे बहाने से जंगल में उसकी खोज की।[31] चन्द्रनखा के प्रति अनुराग रखनेवाला लक्ष्मण का चरित्र जैन रामकथा में निखरा एवं परिपुष्ट हुआ है। साथ ही उसके चरित्र की वैयक्तिकता को प्रकट कर उसको उचित न्याय भी प्रदान किया गया है।

सीता-हरण के प्रसंग में लक्ष्मण की कर्तव्यनिष्ठा :

शूर्पणखा के कथन से उत्तेजित खर दूषण से लडने राम जाने लगे। यह देख लक्ष्मण बोले, " मेरे रहते हुए आपका लडने के लिए जाना उचित नहीं है। आप यहां सीताजी की रक्षा करें। शत्रुओं के सम्मुख में जाऊँगा। "

यहाँ पर लक्ष्मण की कर्तव्यनिष्ठा, भ्रातृनिष्ठा और वीरता वैदिक राम कथा के लक्ष्मण से बढ गई है। वहाँ राम लडने जाते हैं और लक्ष्मण सीता के पास ठहरते हैं। वास्तव में जैन रामायण का प्रसंग ही अधिक औचित्य रखता है। सीता के साथ राम का रहना औचित्यपूर्ण है। रामके प्रति निष्ठा रखनेवाले लक्ष्मण का ही जाना उचित है।

लक्ष्मण के क्रोध से सुग्रीव भी भयभीत बनता है :

मायावी सुग्रीव का वध होने पर सुग्रीव अपना वचन भूलता है और सीतान्वेषण के बदले वह सुखोपभोगमग्न बनता है। तब लक्ष्मण द्वारपर पहुँचता है। सुग्रीव से प्रतिहारी ने संदेश कहा- " वह लक्ष्मण है, जो शत्रु सेना का संहार करनेवाला है। जो निशाचरों का नाशक है। शम्बूक का वधकर्ता है। जो राम का सगा भाई है। वह लक्ष्मण जो मनुष्यों में श्रेष्ठ है। वह लक्ष्मण जो खर दूषण का हत्यारा है। हे देव। प्रयत्नपूर्वक उसे मना लीजिए, जिससे वह कुपित न हो और तुम्हें माया सुग्रीव के पथपर न भेज दे।[31]

---

३१. प. च. वि. ४३।४४ से ४८

३२. प. च. स्व. ४४ १ से ११

३०, प, च, वि. ३१,१०४ से ११०।

रावण वध लक्ष्मण के द्वारा संपन्न हुआ :

रावण को युद्ध में लक्ष्मण ने ही चक्ररत्न द्वारा मौत के घाट उतार दिया। राम रावण युद्ध में अभूतपूर्व पराक्रम के द्वारा लक्ष्मण ने राक्षसों को पराजित कर विजया प्राप्त की।

सीता त्याग के अन्याय से लक्ष्मण क्रुद्ध :

सीता का त्याग अन्याय से किया जाता है इससे लक्ष्मण क्रुद्ध हो गये हैं। रामने उन्हें शांत किया।

लक्ष्मण का अन्त भी राम के प्रति अनन्य निष्ठा के कारण :

राम की मृत्यु की झूठी बात कर्णगोचर होते ही शोकसन्तप्त लक्ष्मण की मृत्यु होती है। इसमें उनकी रामके प्रति की गयी प्रीति का साक्षात्कार हो जाता है।

वास्तव में १६००० सौन्दर्यवती स्त्रियों का पति होने पर भी विषयविलास में निमज्जित न होते हुए कर्तव्य पथ पर पहुँचा हुआ और अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति पितासा पूज्य भाव रख सेवा पथ पर अपने को समर्पित करनेवाला लक्ष्मण का चरित्र बडा ही प्रभावपूर्ण एवं आदरणीय है।

जैनेतर रामकथाओं में लक्ष्मण का चरित्र चित्रण :

वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण राम की छायामात्र है। राम के साथ वे भी विश्वामित्र के साथ यज्ञों की रक्षा के लिए जाते हैं। सीतास्वयंवर में वे राम का साथ देते हैं। वनगमन तो केवल राम के लिये था पर उन्होंने स्वेच्छा से अपना कर्तव्य निश्चित कर उसे कार्यान्वित किया। आज्ञांकित अनुज ही नहीं पर भारतीय के रूप में वे पाठकों के हृदय में आदरणीय स्थान पाते हैं।

अनन्य प्रेम

लक्ष्मण का राम के प्रति अनन्य प्रेम है। वाल्मीकि ने वनगमन के समय कहा– " स्नेह और विनय से संपन्न, अग्रज का साथ देनेवाले लक्ष्मण हैं।"[३३]

तुलसीदासने भी कहा है–

इन्ह कै प्रीति परस्पर पावनि कहि न जाइ मनभाव सुहावनी।"[३४]

---

३३. वा. रा. १।२४ :

३४. रा. च. मा. १।२१६।२ सन १९६२ ई.

मनोनिग्रह :

तुलसी ने रामलक्ष्मण का जनकपुरी में भ्रमण करते समय का चित्रण किया है। वहाँ पुष्पवाटिका में सीता का रूप देख राम अस्वस्थ बने पर लक्ष्मण के मन में अस्वस्थता का अंश भी न उठा।

वीरता एवं आत्मविश्वास :

सीता के स्वयंवर में जनक राजा ने राजाओं के मर्मपर आघात किया जिससे लक्ष्मण तिलमिला उठे और उन्होंने राम से कहा–

" सनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू।
जो तुम्हारी अनुशासन पावो। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावो।
काचौ घट जिम डारौ फोरी। सकउ मेरु मूलक जिमि तोरी।
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरी पिनाक पुराना।।"[३५]

निर्भयता एवं वीरता :

रामचन्द्रजी को सीता ने वरमाला पहनाई कि ईर्ष्यालु राजाओं ने सीता को छीनने की बात की तब सज्जन राजाओं ने कहा–

" लखन रोषु पावकु प्रबल जानि। सलभ जनि होहु।"[३६]

परशुराम के क्रोध से राजा जनक मारे भय के काँपने लगा। पर लक्ष्मण तो निर्भय रहे। तुलसी ने कहा है–

" बिहसि लखनु बोले मृदु बान। अहो मुनिसु महा भट मानी।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु। चहत उडावन फूंकी पहारु।।"[३७]

इस प्रकार के लक्ष्मण के चरित्र की पुष्टि जैन रामकथा ने की है। परन्तु उसी के साथ लक्ष्मण के राम प्रेम को अति उन्नत एवं आदर्श भी बनाया है। राम की मृत्यु की झूठी खबर सुनकर अपने प्राणों का तजने का भ्रातृप्रेम लक्ष्मण के सिवा अन्य कहाँ मिल सकता है ? वासुदेव की समृद्धि और अपार बलशाली लक्ष्मण जिस प्रकार ज्येष्ठ बन्धु की सेवा करता है उसे पढकर लक्ष्मण के प्रति हमारे हृदय में अनन्य श्रद्धा पैदा होती है। लक्ष्मण का यह सेवाभाव अनोखा एवं अपूर्व है।

---

३५. रा. च. मा. १।२५२२,३ सन १९६२ ई.
३६. रा. च. मा. १।२६६ ,,
३७. रा च. मा. १।२५३ ,,

इस प्रकार का श्रेष्ठ चरित्र जैन रामकथा में रामचन्द्र के चरित्र रूपी वटवृक्ष की छाया में कुम्हला नहीं पाया। उसका स्वतंत्र रूप से विकास हुआ है।

जैनेतर रामकथा में रामकी महिमा बढानेवाले सारे कार्य लक्ष्मण द्वारा संपन्न हैं। समृद्धि, वीरता एवं बल में लक्ष्मण रामसे बढकर हैं, पर आत्मविकास में रामचन्द्रजी लक्ष्मण से उन्नत हैं, इसी कारण लक्ष्मण जी रामकी आज्ञा के पालन में अपने को कृतकृत्य समझते हैं। रामचन्द्रजी भी लक्ष्मण को संयत रखने में सफल रहे।

रामकी मृत्यु की झूठी खबर पा कर लक्ष्मण की मृत्यु हुई। इस मृत्यु के द्वारा लक्ष्मण का रामके प्रति का प्रेम साकार हुआ है।

जैन रामायण में भरत का चरित्र चित्रण

जैन रामायणों में भरत का चरित्र भव्यता और दिव्यता से आलोकित है। भरत की सबसे प्रमुख विशेषता है उनका राजयोगी होना। राजकुल में जन्म लेकर भी उनमें वैराग्य प्रवृत्ति थी।

संसार के प्रति विराग की भावना ही भरत के चरित्र में प्रमुख है। इसका साक्षात्कार हमें सीता स्वयंवर में ही हो जाता है। रामकी अपूर्व शक्ति देख भरत सोचता है, "हम दोनों के पिता और गोत्र समान होने पर भी पूर्व जन्म के उपार्जित पुण्य के कारण ही राम अभ्युदय कर्मवाले हैं। उसी के प्रभाव से उन्होंने सीता सी पद्मदलाक्षी, पद्ममुखी और पद्मगर्भा पत्नी पायी है।

इस प्रकार पूर्व कर्म, पूर्व पुण्यादि की ओर मुडी हुई विचारधारा प्राप्त राजवैभव से भी उसे उदासीन बना देती है। इसे भाँप लेने की चतुराई कैकेई में थी, इसीलिए उसने तुरन्त ही जनकराजा के भाई कनकराज की पुत्री के साथ भरत का विवाह संपन्न करने का प्रबन्ध किया।

भरत की मातृभक्ति :

राजा दशरथ ने अयोध्या का राज्य ग्रहण करने का भरत से अनुरोध किया, तब भरत ने विनीत और दृढता के स्वर में कहा "मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। मैं आत्मकल्याण के लिए प्रव्रज्या लूँगा। हे तात, तीव्र दुःखों से युक्त संसार में मैं भ्रमण नहीं चाहता।" [३८]

राजा दशरथ जब भरत को राज्य ग्रहण के लिए समझाने लगे तब वह बोला—

---

३८. प. च. वि. २८।१२७ से १२९

" हे तात, आप अकार्य में क्यों मोह पैदा करते हैं ? मृत्यु बाल, युवा या वृद्ध किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करती। अगर गृहस्थधर्म में भी मोक्षप्राप्ति हो सकती हो तो पिताजी, आप गृह का त्याग क्यों करते हैं ? वास्तव में स्वजन समूह, धनधान्य तथा माँ बाप आदि सब छोड जीव दुःख सुख का अनुभव करता हुआ अकेला ही परिभ्रमण करता है। [३९]

कैकेई ने दशरथ से वरदान प्राप्त कर भरत को संन्यास लेने से रोका। इसमें भरत की मातृभक्ति एवं विवेकबुद्धि के ही दर्शन होते हैं।

जैनेतर रामकथा में भरत का चरित्रचित्रण

वाल्मीकि रामायण में भरत :

भरत के चरित्र में कर्तव्यनिष्ठा और त्याग भाव का अनोखा सम्मिश्रण दिख पडता है। वह रामभक्ति की प्रतिमूर्ति है और अनासक्त भाव का चरमोत्कर्ष उनमें हमें दिखाई देता है।

डॉ. विद्या मिश्रा ने भरत की विशेषता दिग्दर्शित करते हुए बतलाया है कि "प्रलोभनों का विशाल जाल चतुर्दिक फैला हुआ है, दशरथ मरण, रामवन-वास, मातृपरित्याग, आत्मिक ग्लानि, जनसाधारण की उनके प्रति आशंकित दृष्टि इत्यादि असंख्य एवं विशाल गर्जना करती हुई उर्मियों के आवर्त में भी भरत का धैर्य, भक्तियुक्त एवं कर्तव्यनिष्ठ रूप शैल की भांति अडिग एवं अचल है।" [४०]

माता ने भरत के लिए जो किया उससे उसका हृदय क्षोभ से भर उठा। उसने कटूक्तियों के शरों से उस पर प्रहार किये।

क्षुब्ध भरत के मुंह से कैकेई को "काल रात्रि एवं कुलपातर्नी" कहा गया है। [४१]

रामचरित मानस में भरत :

क्षुब्ध होकर भरत ने कैकेई को कठोर वाक्ताडन करते हुए कहा--

३९, प. च. वि. ३१।८४, ८५।

४०. व.. रा. एवं रा. च. मा. पृ. ४२०, १९६३ ई.

४१. वा. रा. अयोध्या काण्ड ६८।४,५

कुलस्य तमाभाय कालरात्रिरिवा गता।
अंगारमुपगुप्तत्वां पिता मे नावबुद्धवान्।
मृत्युमापादि तो राजा त्वया मे पाप तिनी।
सुखं परिहृतं मोहात्कुनेऽस्मिन कुलपासिनी॥
वा. रा. अयोध्याकाण्ड २।६८।४

" जो पै कुरूचि रही अति तो ही । जन मत काहे न मारेसि मोही ।
पेड कटि तैं पालउ सींचा । मीन जिअन निति बारी उलीचा ॥ " ४२
जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयउ । खण्ड खण्ड होइ हृदउ न गयऊ ।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा । गरिन जीए मुँह परेउ न कीरा ।" ४३

जब कुमति तेरे हृदय में आयी तब तेरा हृदय विदीर्ण क्यों न हुआ ? इस प्रकार वर मांगते समय तुझे जरा भी दुःख नहीं हुआ तो तेरी जिव्हा क्यों न जल गई और उसमें कीडे क्यों नहीं पडे ?

भरत के लिए अप्रिय एवं कटु प्रसंग :

भरत का राम के प्रति प्रेम एवं अनन्य निष्ठा और अपने माता के प्रति का क्षोभ उसके चरित्र को आदर्श भाई के रूप में ऊँचा उठाता है । फिर भी कैकेई के चरित्र को देखते हुए यह कथावस्तु कैकेयी तथा भरत दोनों को हीनता प्रदान करती है । दशरथ से विवाह करनेवाली यह वीरांगना इस प्रकार की कुटिलता या स्वार्थान्धिता का शिकार कैसे बन सकती है । भरत जैसे सात्विक राजर्षि को जन्म देनेवाली माता के हृदय में सत्वभाव ही अपेक्षित है । अपनी माता के लिए इतनी कटूक्तियाँ किसी भी सुपुत्र को शोभा नहीं देती । परन्तु राम महिमा की वृद्धि के लिए निर्मित इस प्रसंग में न तो भरत को न्याय मिला है न कैकेई को ।

वास्तव में भरत का चरित्र भी लक्ष्मण के समान राम के आदर्श एवं गुण गणयुक्त चरित्र वटवृक्ष के नीचे कुण्ठित एवं बौना बन गया है । भरत की महिमा एवं ऊँचा व्यक्तित्व राम के त्याग के कारण ही प्रकट होता है । उसके अपने स्वतंत्र परिपोष में नहीं है । वाल्मीकि के चरित्र चित्रण में भरत एक सन्देहात्मक व्यक्ति के रूप में ही प्रकट हुए हैं । दशरथ राम को यौवराज्याभिषेक करना चाहते हैं । बाधा न हो इसलिए वे भरत को मातुल गृह भेज देते हैं । इसका स्पष्ट अर्थ है कि भरत के बाधा खडी करने की आशंका राजा के मन में उपस्थित हुई है । इस आशंका से भरत की रामनिष्ठा भी सन्देहजनक प्रतीत होती है । भरत की रामभक्ति के कारण यह कलंक धोया गया है ।

विरागी एवं राजर्षि भरत का जो चित्र जैन रामकथा में चित्रित है उससे भरत का अपना स्वतंत्र तथा आदरणीय व्यक्तित्व प्रकट होता है ।

भरत की राम से प्रार्थना :

कैकेई की आज्ञा से राम को वापस लौटाने के लिए भरत ने प्रयास किया ।

---

४२. रा. च. मा. २।१६०।४ सन १९६२ ई.
४३. रा. च. मा. २।१६१।१ ,,

उस समय का वर्णन करते समय विमल सूरि ने लिखा है – " भरत छः दिनों में राम लक्ष्मण के पास पहुँचे। घोडे से उतरते ही उन्होंने प्रणाम किया। प्रणाम करते समय वे राम के चरणों में मूर्छित हो गये। होश में आनेपर स्नेहालिंगनबद्ध भरत ने कहा " हे सुपुरुष, आप इस विशाल राज्य का पालन करें, मैं छत्र धारण करूंगा। "[४४]

भरत के चित्रण में जैन रामकथा ने उसका विरागी रूप परिपुष्ट किया है। साथ में रामके प्रति निष्ठा भी व्यक्त की गई है। रामने वहींपर सब राजाओं के समक्ष उसे राज्यपर स्थापित किया।

भरत राम की आज्ञा से लौटा फिर भी उसने मुनिवर के पास अभिग्रह ग्रहण किया था कि " राम का दर्शन होनेपर मैं दीक्षा लूंगा। "[४५] इस अभिग्रह के साथ उसने गृहस्थ के धर्म का भी अंगीकार किया–

भरत की दीक्षा एवं निर्वाण :

राम लक्ष्मण के आगमन के पश्चात् भरत राजा ने दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने चार वर्षतक उग्र तप किया। तप के बल से समग्र कर्मसमूह को नष्ट करके केवल ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

इस प्रकार भरत के चरित्र में राजर्षि एवं योगी की महानता है।

जैन रामकथा में दशरथका चरित्र चित्रण

जैन रामकथा में दशरथ का चरित्र राम, लक्ष्मण एवं भरत जैसे पुत्रों के पिता के अनुकूल ही चित्रित है। दशरथकी मानवगत कुछ दुर्बलताएं हैं फिर भी वह दुर्बल या कायर नहीं है।

दीर्घदृष्टि एवं समयसूचक :

रावणवध दशरथपुत्र के द्वारा होगा यह ज्योतिषियों–नैमित्तिकों की वाणी सुनकर बिभीषण ने दशरथ की हत्या करने का संकल्प किया। यह बात नारद द्वारा प्राप्त होनेपर दशरथ अपनी जान बचाने के लिए देश-विदेश में भ्रमण करने लगे। इससे दशरथ की कायरता नहीं प्रकट होती, बल्कि रावण की प्रमुखता स्थापित होती है और राजा दशरथ की दीर्घदृष्टि एवं समयसूचकता का परिचय प्राप्त होता है।

---

४४. प. च. वि. ३२४६

४५. प. च. वि. ३२।५८।

सौन्दर्य एवं पौरुष :

कौतुक मंगल की राजकन्या कैकेई इतने राजाओं के बीच दशरथ राजा को वरमाला पहनाती है । इसमें राजा दशरथ का सौन्दर्य एवं पौरुष दिखाई देता है । उपस्थित अन्य राजाओं को युद्ध में परास्त कर उसने अपनी वीरता एवं पुरुषार्थ का बडा अच्छा परिचय दिया है । कैकेई को वरदान देकर उसने वीरता की कद्र करने की उदारता तथा क्षमता बतलाई है।

राजा की विराग भावना :

एक दिन राजाने मुनि से उपदेश सुना। मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर वे विरागी बने । उनका विराग अल्पायुषी नहीं था । वह तो दीर्घ चिन्तन के बाद पैदा हुआ था । वैसे भी सोचा जाय तो रघुकुल के राजाओं की यह विशेषता थी कि वे राज्यशासन चलाकर ढलती उम्र में मुनिव्रत ग्रहण करते थे । दशरथ ने भी यही विचार किया । दशरथ राजा ने पुण्यपापादि के स्वरूप का जो विवेचन किया है इससे उनकी दीक्षित होने की योग्यता प्रकट होती है ।

कैकेई ने जब अपने वर की बात कही तब राजा ने तुरन्त कहा, "हे सुन्दरी। मेरी दीक्षा को छोडकर चाहे जो मांग । " इसमें राजा का दीक्षा ग्रहण करने का दृढ संकल्प प्रकट होता है । उसने अपने वचन का तुरन्त ही पालन किया। राम को बुलाकर दशरथ राजा ने उससे कहा – " हे वत्स, महासंग्राम में कैकेई ने मेरा सारथ्य किया था । उस समय तुष्ट होकर मैंने सब राजाओं के सामने उसे वरदान दिया था। अब कैकेई ने भरत के लिए राज्य माँगा है। हे वत्स, मैं क्या करूं ? मैं तो चिन्तारूपी समुद्र में डूब गया हूँ। भरत दीक्षा ले रहा है और उसके वियोग में कैकेई मर रही है। इधर मैं अवश्य ही मिथ्याभाषी कहलाऊंगा । "[४६]

राजा ने भरत को राजगद्दीपर बिठाया और भूतशरण मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। वे एकाकी विचरण करने लगे फिर भी उनके हृदय का पुत्रप्रेम उन्हें दु:खी बनाता था। इससे रामके प्रति उनका स्नेह प्रकट होता है । इस अनुराग पर भी उन्होंने विजय प्राप्त की । तप में वे एकरूप बने । उपद्रवों और कष्टों को सहते हुए वे वन में विचरण करने लगे ।

इस प्रकार जैन रामकथा में धीरोदात्त, प्रतिज्ञापर अडिग रहनेवाले तथा पुत्रवत्सल दशरथ राजा का चित्रण किया गया है जो राम, लक्ष्मण, भरत से पुत्र के पिता के लिए उचित एवं आवश्यक भी है ।

उसके विपरीत जैनेतर रामकथा में दशरथ राजा को चित्रित किया है ।

---

४६. प. च. वि. ३१।७३ से ७५

जैनेतर रामकथाओं में राजा दशरथ का चरित्र चित्रण

जैनेतर रामकथा में वाल्मीकि ने राजा दशरथ का परिचयात्मक वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि "अयोध्यापुरी में वेदज्ञ, पुरजनों का प्रिय ईक्ष्वाकु वंश में बलवान यज्ञकर्ता, धर्मातमा, सर्ववशी राजर्षि, शत्रुनाशक, जितेंद्रिय धनी अन्नादि भांडार संपन्न राजा" इस प्रकार दशरथ की प्रशस्ति गाई है।"[४७]

तुलसीदास ने दशरथ का वर्णन भिन्न प्रकार से किया है---

"अवधपुरी रघुकुलमनि राउ, वेदविहित तेहि दशरथ नाऊँ।
धरमधुरंधर गुननिधिग्यानी, हृदयभगति मति सारंग पानी।"[४८]

अवधपुरी में रघुकुलशिरोमणि दशरथ नामके राजा हुए जिनका नाम वेदों में विख्यात है। वे धर्मधुरंधर, गुणों के भंडार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में धनुष्य धारण करनेवाले भगवान की भक्ति थी। उनकी भक्ति और बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी।

वाल्मीकि में हम दशरथ राजा को एक महान एवं आदर्श राजा के रूप में देखते हैं तब तुलसीदासजी ने उसको श्रेष्ठ राजा के रूप में वर्णित करने के साथ उसे राम का अनन्य भक्त कहा है।

शुरू में ही अयोध्यावर्णन में वाल्मीकि ने दशरथ की प्रशस्ति गाई है, फिर भी राजा दशरथ का चरित्र विविध प्रसंगों की कसौटी पर उनका यह रूप खरा नहीं उतरता। पुत्राभाव से दुःखी बना हुआ और पुत्र के लिए पुत्रकामेष्टि यज्ञ करनेवाला वात्सल्यमय पिता है।

डॉ. विद्या मिश्र का कहना है कि –

मानस की अपेक्षाकृत रामायण में दशरथ का – राजनीतिज्ञ राजा का रूप अधिक प्रधान है। ... वे स्वयं परम तेजस्वी महाराज हैं। यहाँपर उनका याज्ञिक रूप ही सर्वप्रधान है।

अपनी पत्नियों का पुत्राभाव उन्हें खलता है। इसी कारण पायस प्राप्त कर उन्होंने राजपुत्रों को प्राप्त किया।

चार पुत्रों में उनका प्रेम राम पर भी अधिक था।[४९]

पुत्रों का उनका वात्सल्य समान नहीं है। वे अपने पुत्र पर भी शंका रखते

---

४७. वा. रा. ५।२३ से २६

४८. रा. च. मा. बालकाण्ड १।१८७।४

४९. वा. रा. और रा. च. मा. का. तु. अध्ययन, पृ. ४७०, सन १९६३ ई.

हैं। तुलसीदास ने स्पष्ट किया है कि, रामके राज्याभिषेक के समय उन्होंने भरत की अनुपस्थिति को अपने इष्ट सिद्धि के लिए वरदान रूप माना है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि भरत के समान पुत्र पर भी उनको सन्देह था। वह सन्देह इतना दृढ था कि उन्होंने रामराज्याभिषेक का निमंत्रण भी कैकय नरेश और विदेह नरेश को नही भेजे। इस प्रकार का दशरथ चरित्र विरोधाभास सा प्रतीत होता है। एक तरफ कहा जाता है कि दुष्टों का निर्दालन करने के लिए भगवान ने दशरथ का ही कुटुम्ब पसंद किया। दूसरी तरफ हमें इस प्रकार अपने पुत्रों पर भी अविश्वास रखनेवाला चरित्र प्राप्त होता है।
डॉ. विद्या मिश्रा का यह कथन है कि,

"यह है उनके दुर्बल, संशयशील मानव हृदय की झांकी। इसी प्रकार उनकी दुर्बलता, उनकी कामुक प्रवृत्ती, दोनों ग्रंथोंमें अभिव्यक्त हुई है।"

कैकेई स्वयंवर उनकी वीरता को प्रकट करता है। उस समय कैकेई को दिये गये दो वरदान भी उनकी उदारता एवं वीरता की कद्र करने की क्षमता बताती है।

ब्राह्मण एवं गुरुओं की आज्ञापालन में वह तत्पर था। राम की उम्र सोलह से कम है इसी कारण वह रामादि को विश्वामित्र के साथ भेजने के लिए हिच-किचाता था। इसमें संतान प्रेम याने वात्सल्य का दर्शन होता है पर बाद में विश्वामित्र के डर से और गुरु वशिष्ट के अनुरोध से भेजने के लिए तैयार होता है। यहाँ हमें उसके चरित्र में भय के ही दर्शन होते हैं। अन्यथा वह अपने वचन पर अटल रहा होता और रामलक्ष्मण को मुनि के साथ भेजने से साफ इन्कार कर देता।

कैकेई को वरदान :

कैकेई जब वरदान पाती है तब रामको वनवास सुनते ही दशरथ की दशा का जो वर्णन वाल्मीकि ने किया वह उसके दुर्बल चरित्र का ही दिग्दर्शन करता है।

रामराज्याभिषेक के अवसर पर कैकेई क्रुद्ध होती है और वर मांगती है। इससे यह तर्क हो ही जाना चाहिए कि उसके वरदान से रामको ही विपदा घेरनेवाली है। फिर भी दशरथ का व्याकुल होना वात्सल्यमय पिता के पुत्रप्रेम का द्योतक समझा जाता किन्तु साथ ही साथ अपने वचन के लिए प्राणों पर खेलने-वाले क्षत्रिय के लिए वह दुर्बलता माननी चाहिए।

कैकेई की दीनता के साथ खुशामद करने का उसका प्रयास रघुकुल राजाओं की भाँति नहीं दिखाई देता। वाल्मीकि ने यहाँ इस प्रकार कहा है--

" अगर राम मेरी नजर से ओझल हुआ तो मैं जीवित ही नहीं रह सकूंगा। जिस प्रकार सूर्य बिना लोक और जल बिना पौधे नही रह सकते। उसी तरह राम के बिना मैं जीवित भी नहीं रह सकूंगा। मैं तुम्हारे चरणों पर मस्तक धरता हूँ। मुझ पर दया करो। "[५०]

अपने वचन पर अटल रहनेवाले क्षत्रिय राजाधिराज के लिए यह दीनता शायद ही शोभा देती है। प्रतिज्ञापालन में सर्वस्व का समर्पण हँसते हँसते करनेवाले रघुकुल नृपति के लिए यह भूषणास्पद नहीं प्रतीत होता।

तुलसीदास ने भी इस प्रसंग का वर्णन करते हुए दशरथ की दशा का जो वर्णन किया है उससे दशरथ की दुर्बलता ही प्रतीत होती है।

उसने क्रुद्ध कैकेई को शान्त करने का जो प्रयास किया उसका वर्णन इस प्रकार है।

" सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयउ।
भूमिसयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना। "[५१]

राजा डरते डरते अपनी प्यारी कैकेई के पास गये। यहाँ पर राजा की दुर्बलता और कामान्धता के कारण ही तो डर पैदा हुआ है।

रामको वनवास में भेजने के वचन सुनते ही दशरथ की अवस्था कैसी हुई उसका वर्णन तुलसी ने भी किया है। वह कहते हैं-- " राजा सहम गये। उनका रंग उड गया। माथेपर हाथ मारकर, दोनों नेत्र बंद कर राजा ऐसा सोचने लगे कि मानो सोच ही शरीर धारण कर सोच रहा हो।

वे दुःख से बोले, " स्त्री का विश्वास करके मैं मारा गया। "[५२] स्वयं लक्ष्मण दशरथ के आचरण की आलोचना करते हुए कहते हैं कि --

" वंशगतप्राप्त राज्य लक्ष्मी छोडकर राघव का इस प्रकार का वनगमन मुझे पसन्द नहीं है। यह तो बुद्धिभ्रष्ट विषयांध्र वृद्ध की करतूत है। "[५३]

दशरथ राम के पिता हैं। रघुकुलके वह भूषण हैं उसके चरित्र की यह दुर्बलता रामकी महिमा के लिए शोभा नहीं देती।

राम के विरह में उसकी मृत्यु होती है यह तो दशरथ जैसे वीरपुरुष के लिए अनुचित और अनपेक्षितसा लगता है। इसमें मोह और प्रेम का चरमोत्कर्ष जरूर

---

५०. वा. रा. १२।१३ से १५
५१. रा. च. मा. अयोध्या २४।३ सन १९६२।
५२. रा. च. मा. अयो. २८।३,४,५ सन १९६२।
५३. वा. रा. २१।२. ३

है किन्तु कर्तव्य की वेदीपर सबकुछ निछावर करनेवाली वीरता का अभावसा दीख पडता है।

वाल्मीकि ने कौशल्या का आक्रन्दन वर्णित करते हुए कौशल्या ने अबतक किस प्रकार दुःख सहा है, जिसे अब दीर्घकाल तक सहना उसके लिए असंभव है, केवल रामका मुख देखकर ही वह किस प्रकार सान्त्वना पाती थी आदि के वर्णन से तो दशरथ का अपने पत्नी के प्रति प्राप्त उत्तरदायित्व पूरी तरह से निभता नहीं था यह बात स्पष्ट हो जाती है। आश्चर्य तो यह है कि जो राम दशरथ को प्राणों से प्यारा था उसी राम की माता को सपत्नियों के द्वारा इस प्रकार सहना पडता था यहाँपर पति के रूप में भी दशरथ की दुर्बलता का ही दर्शन होता है।[५४]

डॉ. विद्या मिश्रका यह कथन है कि--

"यह है उनके दुर्बल संशयशील मानव हृदय की झांकी। इसी प्रकार उनकी दूसरी प्रमुख दुर्बलता, उनकी कामुक प्रवृत्ति, दोनों ग्रन्थों में अभिव्यक्त हुई है।

रामायण में इस दुर्बलता से अभिशप्त दशरथ की कटु आलोचना अनेक पात्रों ने की है। स्वयं दशरथ भी इसे स्वीकार करते हैं। मानस में भी गोस्वामी जी ने बडे मर्यादित ढंग से उसकी आलोचना की है।

उसी भाँति रामायण में इनकी अन्य दुर्बलताओं पर दृष्टिपात किया गया है। जैसे कैकेई के पैर छूना, कैकेई की अपेक्षाकृत कौशल्या के साथ दुर्व्यवहार करना, तीन पट्टरानियों के अतिरिक्त अनेक रानियाँ रखना इत्यादि।[५५]

राम के वनगमन से मोह मग्न हो मृत्यु के मुख में दशरथ का जाना चाहे पुत्र प्रेम की विजय कही जाय पर रघुकुल के राजा के लिए तो वह दुर्बलता है।

उपरोक्त बातों से तो रघुकुल के राम पिता का चरित्र दुर्बल एवं राम लक्ष्मण और भरत से पुत्र पाने को अपात्र सा प्रतीत होता है। जैन रामकथा में चित्रित दशरथ राजा का चरित्र चित्रण अधिक उचित प्रतीत होता है।

ईक्ष्वाकु वंश के स्त्रीपात्र

ईक्ष्वाकुवंश के स्त्रीपात्रों में सीता प्रमुख है।

---

५४. दशस्वप्न च वर्षाणि तव जातस्य राघवः।
आमितानि प्रकांक्षन्त्यमया दुःख परिक्षयम्।
तदक्षयमहं दुःख नोत्सहे सहितुं चिरं।
विप्रकारे सपत्नीनामेव जीर्णापि राघवम्।१९६३

५५. वा. रा. एवं रा. च. मा. तु. अ. पृ. ४७३।

सीता– योनिजा सीता–

जैन रामकथा के अनुरूप सीता के चरित्र की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह योनिजा है। अयोनिजा कहकर उसके जन्म के चारों ओर जो अद्भुतता का वलय फैला हुआ है उसे जैन रामकथा में स्थान नहीं है। पउमचरियं, पउमचरिउ तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में उसका जन्म जनक की विदेहा रानी से कहा है। अर्थात् वह योनिजा है। परंतु गुणभद्र के उत्तर पुराण में सीता का प्राप्तिस्थान खेत बताया है। राजा जनक को वह खेत में एक पेटिका में मिली है। पर उसका जन्म रावण पत्नी मंदोदरी से बताया है और इस प्रकार सीता के जन्म के चारों ओर पैदा किया गया कुतूहल एवं चमत्कार के वातावरण में वास्तविकता आ गई है।

दूसरी भी एक बात है कि सीता की माता का नाम विदेहा है और सीता को विदेहात्मजा कहा जाता है। विदेह की रानी इसलिए शायद विदेहा और सीता उसकी पुत्री है।

जहाँ वैदिक रामायण में सीता राजा जनक को मिली हुई कन्या कहा है। एक खेत में किसी को खेत जोतते समय वह एक पेटी में मिली। इस प्रकार सीता का जन्म संदिग्धता में बतलाया गया है। वहाँ जैन रामायण की एक कथा इस बात का स्पष्टीकरण देकर उसमें उपलब्ध अवास्तविकता एवं अद्भुतता का वलय चीर देती है। गुणभद्र की रामकथा में इस प्रकार का संदर्भ पाया जाता है कि रावण की पत्नी मन्दोदरी ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया। नैमित्तिकों एवं ज्योतिषियों ने इस लडकी का भविष्य कथन किया कि यह लडकी उसके पिता के लिए बडी ही अपशकुनी है। यह जानकर डरी हुई मन्दोदरी ने उसे एक पेटी में बन्द कर अपने राज्य से बाहर कहीं जमीन में गाडने की आज्ञा की। जिससे जनक को वह मिली हो किन्तु वह वास्तव में योनिजा ही है।

इससे हमारे लिए जैन रामकथा एक समस्या को वास्तविकता से सुलझाने वाली प्रतीत होती है इसलिए उसकी आदरणीयता बढती है। सीता के चरित्र चित्रण में भी इस रामकथा ने बडा उचित दृष्टिकोण अपनाया है।

सीता स्वयंवर एवं धनुर्भंग का औचित्य :

सीता स्वयंवर के लिए धनुर्भंग का औचित्य बडे ही अनोखे ढंग से यहाँपर समझाया है। सीता का भाई भामण्डल का जन्म इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस भामण्डल का अपहरण विद्याधर के द्वारा किया गया था। नारद की एक अद्भुत घटना इस धनुर्भंग के लिए कारणरूप बनी है। सीता किशोरी के रूप में अपने महल में थी कि नारद महर्षि वहाँ पहुँचे। उसका वह चित्र-विचित्र रूप

यकायक आइने में देखते ही भयभीत बनी हुई सीता जोर से चिल्ला उठी । उसकी चित्कार सुन दासियाँ घबडा गई । किसी अप्रिय घटना की आशंका से द्वाररक्षकों ने नारद को गला पकडकर धक्के देकर निकाला । अपमान क्षुब्ध बनकर सीता का चित्रपटपर अंकित कर नारद ने भामण्डल को बताया । भामण्डल सीता का सौंदर्य देख मुग्ध हो गया । और अनजाने में उससे ही ब्याह करने का निश्चय किया । उसके पालित पिता विद्याधर चन्द्रगति ने यह बात जानी । आज्ञा से विद्याधर जनक को विद्या के बल उठा लाया । जनक के आनेपर उसने भामण्डल के लिए उससे सीता की माँग की । म्लेंच्छों से भयमुक्त कराने आये हुए रामलक्ष्मण को उसने सीता देने का आश्वासन दिया था इसलिए उसने इन्कार किया । चन्द्रगति ने धनुष्य देकर उसको डोरी लगाने की शर्त रखने के लिए कहा ।

इस प्रकार सीता की धनुर्भंग की घटना की वास्तवपूर्ण पृष्ठभूमि यहाँ हम पाते हैं ।

तुलसीदासजीने पुष्पवाटिका का प्रसंग उपस्थित कर राम सीता पर मुग्ध हुए ऐसा बताया है और सीता भी उसे मन ही मन पतिरूप मानती है ऐसा बताय है । इसमें हमें तो राम की अपने समय की प्रतिमा भंग होती दिखाई देती है धनुर्भंग की शर्त के कारण वास्तव में धनुर्भंग के पूर्व ही इस प्रकार पुष्प वाटिका के प्रसंग में सीता की भावनाओं का जो चित्रण किया गया है वह उचित नहीं लगता । आज जिस प्रकार से सतियों की नामावली ली जाती है उस नामावली में मूर्धन्य स्थान प्राप्त सीता के लिए यह बात ठीक नहीं लगती ।

सीतापहरण :

सीताहरण प्रसंग में सीता का चरित्र वैदिक रामायण में जिस प्रकार से चित्रित हुआ है वह सीता के स्वभाव के लिए विरोधी सा लगता है और अन्याय-जनक प्रतीत होता है ।

राम उस मृग के पीछे पडे हैं । रावण ने माया मे राम के द्वारा जाली पुकार कराई । सीता मानती है कि राम खतरे में है इसलिए उनके रक्षणार्थ लक्ष्मण को भेजना चाहती है । [५६] राम के सामर्थ्य से परिचित लक्ष्मण राम की कुशलता की दुहाई दे सीता की रक्षा के उत्तरदायित्व के कारण वहाँ से जाना नहीं चाहते । तब सीता लक्ष्मण पर सन्देह प्रकट कर उनकी भर्त्सना करती है और लक्ष्मण के मुख से भी कठोर वचन निकलते हैं । [५७]

यहाँ सीता का पतिप्रेम प्रकट होता है । अतिस्नेहः पापशंकी इस दृष्टि से

---

५६. वा. रा. ३१।३३
५७. वा. रा. ३१।५७

राम की सुरक्षा कीं चिन्ता भी समर्थनीय है किन्तु लक्ष्मणके वचनों का सीता का प्रतिवाद और उसके प्रति शंकित मानस दोनों भी मैथिली के लिए अन्यायमूलक है। सीता लक्ष्मण की रामभक्ति जानती है। केवल उन्हींकी सेवा के लिए स्वेच्छा से लक्ष्मण ने वननिवास का स्वीकार किया। वनमें भी सेवा महान आदर्श प्रस्थापित किया है। रामके सामर्थ्य की महानता पर श्रद्धा और अटल विश्वास प्रकट किया है और केवल रामकी आज्ञा के कारण ही वह सीता को अकेली छोडकर जाना नहीं चाहते थे। सीता ने उन्हें जाने के लिए जिस प्रकार बाध्य किया वह दिल में खेद पैदा करता है ओर मीता की गरिमा को घटाता है।

जैन रामकथा में सीता :

सीता के इस प्रसंग का बड़े ही समर्पक ढंग से जैन रामकथा में चित्रण किया गया है।

सबसे पहली बात तो मृग के पीछे राम नहीं गये थे। वरन लक्ष्मण गये थे। इस बात में भी औचित्य है। लक्ष्मण के होते हुए वह राम को किस प्रकार मृग के पीछे जाने देगा ? उसकी सेवा लज्जा का अनुभव करेगी। इससे "न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी" के अनुसार लक्ष्मण पर कठोर शब्द की वर्षा करने का या सुन लेनेका अवसर ही जैन रामायण में नहीं है।

चन्द्रनखा के उकसाने पर उसका पति खरदूषण सेना के साथ आया। लक्ष्मण ने राम से कहा "आप सीता देवी की रक्षा करें मैं दुष्मनों को मार भगाता हूँ। यदि मुझे आपकी मदद आवश्यक जान पडी तो मैं सिंहनाद करूंगा। रावण ने विद्या के बल से यह वात जान ली और उसी विद्या के द्वारा लक्ष्मण की आवाज में सिंहनाद कराया। राम उस आवाज को सुनकर व्यग्र हो गये और जटायु के द्वारा रक्षित रहने का सीता से कहकर वे शीघ्र ही गये और रावण ने सीता का अपहरण किया। सीता में जो विनय, विवेक, बडों के प्रति बहुमान, मधुरभाषिता और चतुराई थी इन सब पर पानी फेर देनेवाले इस वैदिक प्रसंग से होनेवाली खंडित सीता की प्रतिमा जैन रामायण में बच गई है और उसका चरित्र अधिक निखर उठा है।

रावण के नगर में रहते हुए भी उसने अपना शील खंडित नहीं होने दिया। रावण की धमकियाँ या प्रलोभन उसे अपनी राह से चलायमान नहीं कर सके। पति के प्रति अटूट प्रेम और धर्म की दृढ श्रद्धा दोनों द्वारा सीता का चरित्र बडा ही उज्ज्वल बन गया है।

रामने सीता के लिए जो व्याकुलता बतलाई है या उसकी खोज के लिए जो प्रयास किये उसमें सीता ने अपने पति के हृदय में किस प्रकार अनोखा स्थान

पा लिया था इसका अंदाजा लग जाता है। इससे स्त्री के रूप में वह पत्नीधर्म में सफल रही है।

जैन रामकथा ने सीता का चरित्र इतना ऊँचा उठाया है कि रावण-सा रूपलुब्ध भी अन्त में उसके चरणों में नत हो जाता है और वह संकल्प करता है कि मैं सीता को रामलक्ष्मण को जरूर सौंप दूंगा किन्तु आज अगर सौंप दिया जाय तो लोग उसे कायर और डरपोक कहेंगे इसलिए रामलक्ष्मणादि को पराजित करने के बाद ही वह सौंपना चाहता था। वह सीता के पतिव्रता धर्म एवं अपने धर्मपर अटल रहने की शक्ति की विजय है।

रावण का अपार वैभव भी उसे मोह नहीं पैदा कर सका। अपने पतिपर उसकी अटूट श्रद्धा थी। हनुमान ने अपने कन्धेपर बिठा उसे राम के पास ले जाने का प्रस्ताव रखा पर उसने ठुकरा दिया।

पर वैदिक रामकथा में राम के पास रावण वध के बाद वह उल्लसित हृदय से उपस्थित होती है तो राम के द्वा । उसका जिस प्रकार तिरस्कार एवं अवहेलना होती है उससे सीता के प्रभाव को हानी पहुँचती है। वास्तव में ऋषिमुनि और देवताओं के द्वारा सीता की शुद्धता की पुष्टि की जाती है फिर भी राम उसे ठुकरा देते हैं और दिव्य करने के लिए बाध्य करते हैं। पर जैन रामकथा इस प्रसंग को इस प्रकार नया मोड देती है।

" राम ने सीता को देखा। हनुमान के वर्णन के अनुसार ही वह थी। अपने को केवल उसी समय जीवित माननेवाले रामने अपने प्राणों के समान सीता को अपने उत्संग में बिठाया। महासती सीता की जय के नारों से आकाश परिव्याप्त हो गया। अश्रुजल से उनका पादप्रक्षालन करते हुए लक्ष्मण ने उनके चरणों में प्रणाम किया। सीता ने लक्ष्मण के मस्तक का अवघ्राण कर चिरंजीव हो इस आशिष से उनका सत्कार किया। राम सीता के साथ शांतिनाथ मंदिर पहुँचे और उन्होंने पुष्पादि से उनका पूजन किया। "[५८]

सीता के चरित्र के अनुसार ही राम के द्वारा उसका आदर हुआ और प्रीति से उसका स्वीकार भी हुआ।

सीता का निर्वासन :

सीता के निर्वासन का वाल्मीकि रामायण का प्रसंग राम को एक संशयग्रस्त राजकुमार सा चित्रित करता है पर सीता के चरित्र को भी ठीक तरह न्याय नहीं देता।

---

५८ त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र पृ. १४६–४७ १९६१ ई.

वैदिक रामकथा की सबसे भयानक बात तो यह है कि एक बार सीता ने अग्निदिव्य किया है। रामायण के सारे प्रमुख पात्रों एवं देवों ने भी उसकी पवित्रता की पुष्टि की है। फिर भी केवल एक सामान्य धोबी के द्वारा किये गये प्रवाद के कारण राम सीता को निर्वासित करते हैं।

जैन रामकथा में अग्निदिव्य पहले नहीं हुआ है। इसलिए केवल लोकप्रवाद से बचने राम कुछ इस प्रकार कर बैठते तो भी वह उचित माना जाता। लोकप्रवाद की कथा के साथ दूसरी भी एक यह कथा है। राम को साशंक बनाने का षड्यंत्र सीता के गर्भाधान से ईर्ष्यालु बनी हुई राम की अन्य रानियों ने किया था।

सीता गर्भवती बनी। इससे वह अन्य रानियों के लिए ईर्ष्या करने योग्य बन गई। उन्होंने एक दिन सीता से पूछा "इतने दिन रावण के घर रही तो हमें बताओं तो सही उसका रूप कैसा था ? चित्र में चित्रित ही करके बता दो न।" परपुरुष का गुणवर्णन सीता नहीं करेगी यह समझकर हीं ऐसा कहा गया। सीता ने सरलता से यथार्थ कहा, "बहन। मैंने रावण की ओर कभी नजर नही उठाई इसलिए उसका वर्णन कैसे कर सकूंगी। हां मैं जब नीचे देखती थी तब रावण के चरण ही मेरी नजर में आते थे।"

रानियों को यह एक कच्चा धागा ही मिला। उन्होंने आग्रह किया कि उस पैरों का ही चित्र सही, उसपर से रावण की कल्पना तो आ ही सकती है ? सीता ने पैरों का चित्र बताया। रानियों ने उसे राम को दिखाया ओर चारों और प्रवाद फैलाया कि रावण के प्रति सीता को आकर्षण था और वह अब भी मौजूद है। नगर में भी अपने लोगों के द्वारा उन्होंने यही प्रवाद फैलाया था जिसके परिणाम स्वरूप सीता को वन में जाना पडा।

यहां भी राम का आचरण वैदिक और जैन रामकथा में बिलकुल भिन्न है। सीता का प्रत्याघात भी भिन्न है।

वैदिक रामकथा में राम दु:खी बन लाचारी से उसे वनमें भेजने का काम लक्ष्मण को सौंपते हैं। यह कठोर आज्ञा देते समय उन्हें अति खेद होता है। रामने उसका परित्याग किया है यह जानकर अति दु:खित हृदया सीता बेहोश हो गई। अति दीन वाणी से उसने लक्ष्मण से कहा "केवल दु:ख सहने के लिए विधि ने उसे पैदा किया है। अपयश पाने के भय से आपने मुझे त्यजा पर धर्म को छोडने की इच्छा न हो।" वह राम के अभाव में इस जंगल को भीषण मानने लगी।

जैन रामकथा में सीता को छोडते समय राम ने सीता को जंगल में छोड आने का कार्य सेनापति कृतांतवदन को सौंपा। यहाँ सीता का चरित्र केवल छायारूप नहीं है उसका अपना अनोखा व्यक्तित्व है। वह कहता है--

"अगर लोकापवाद से मेरा त्याग हुआ तो मेरी परीक्षा क्यों न की गई ? अभागी मैं तो अब यह दैवदुर्विलास सहूंगी पर आपका यह कार्य कुल के अनुसार विवेकी या उचित नहीं कहा जायगा। दुर्जनों के वचनों से आपने मुझे त्यजा उसी प्रकार आप धर्म को न छोडें ?" वह बेहोश हो गई। होश में आने के बाद उसने कहा--" अरे मेरे बिना रामचन्द्रजी को कैसा सुहायेगा ? श्रीराम के प्रति कल्याण भावना और लक्ष्मण को आशीष कहना।"

इस प्रकार जैन रामकथा सीता के चरित्र को निखारती है। लवकुश याने अनंगलवण और मदनांकुश के द्वारा राम सीता का परिचय पाते हैं। और दिव्य की मांग करते हैं।

वैदिक रामकथा के अनुसार सीता ने कहा कि -

" अगर मैंने मन से, कर्म से या वाणी से राम के सिवा अन्य किसी की भी इच्छा की हो तो हे पृथ्वी देवी, तू अपने उदर में मुझे स्थान दे। पृथ्वी के उदर में सीता समा गई। राम अति दुःखित हुए।

जैन रामकथा के अनुसार–

रामलक्ष्मण ने लवकुश के साथ नगरी में प्रवेश किया। लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान और अंगदादि ने इकठ्ठे होकर कहा, "सीता देवी आपके विरह में परदेश में अति दुःखित दशा में निवास करती हैं। आप यदि आज्ञा दें तो उन्हें हम यहाँ ले आयें। रामने विचार किया और कहा– " अब सीता को किस प्रकार यहाँ रखा जाय। लोकापवाद झूठा होने पर भी बलवान है। मुझे पूरा विश्वास है कि सीता सती है, पवित्र एवं शुद्ध हृदया है फिर भी उसे दिव्य करके लोगों को प्रतीति करानी होगी जिससे मैं उसका स्वीकार कर सकूं।"

सीता ने सबकुछ सुना। वह आई पर उसने अपने गृह में जाने से इन्का किया। पतिव्रता प्रमाणित होनेपर ही गृहप्रवेश का अपना निश्चय उसने प्रकट किया। जब रामने उसे दिव्य करने के लिए कहा तब प्रत्युत्तर में वह बोली, " वाह ! अच्छा न्याय किया और बाद में दिव्य करने के लिए कहा। मैं पांचों दिव्य करने प्रस्तुत हूँ। " (अग्निप्रवेश, मंत्रित तंदुलों का ग्रहण, तोलपर चलूंगी, तप्त लोहरस प्राशन करूंगी, जिह्वा से खड्ग ग्रहण करूंगी) अन्त में सीता ने अग्निदिव्य किया। अग्निकुण्ड शीतल जल कुण्ड सा बन गया जिसमें कमलाधिष्ठित-सी सीता दिखाई देने लगी। सीता पर पुष्पवृष्टि हुई। उसके शील की प्रशंसा की गई। रामने क्षमा मांगी और स्वीकार करने की उत्कंठा बताई। सीता ने अब गृहत्याग ही चाहा। उसने अपने हाथ से केशलुंचन कर संयम मार्ग ग्रहण किया। साध्वी बन उसने अपनी आतमा का उद्धार किया। मृत्यु के पश्चात वह देवेन्द्र बनी। लक्ष्मण की

मृत्यु से दुःख से शोकाकुल बने हुए राम को उसने उपदेशद्वारा सन्मार्गदर्शन किया।

समीक्षा

सीता का चरित्र जैन रामकथा में निखर उठा है ऐसा ज्ञात होता है। सीता के जन्म का कुतूहलमय आवरण हटा दिया गया है। भूमिकन्या के रूप में जनक के घर वह आई इस मान्यता को भी वास्तविकता की पृष्ठभूमि प्रदान कर उसमें सजीवता लाई गई है। रावण के घर में इतने वर्षतक रहने पर भी सीता के शील में अपार विश्वास रखनेवाले राम ने ग्रहण कर लिया - इस प्रकार सीता के चरित्र की महानता प्रकट हो गयी है। निर्वासित होनेपर भी उसने दुर्बलता नहीं प्रकट की है। प्राप्त परिस्थिति में वह अधीर नहीं बनी। पति पर उसने क्रोध नहीं प्रकट किया फिर भी विवेकपूर्वक उचित कथन करने के लिए वह नहीं भूलती।

वह सचमुच ही एक स्वाभिमानी स्त्री है। इस लिए आत्मघात के रूप में वह देह त्याग नहीं करती। अपितु अध्यात्ममार्ग पर चलकर अपने मानव जन्म को वह सफल एवं सार्थक करती है।

जैन रामकथा के अनुसार कैकेई का चरित्र चित्रण :

जैन रामकथा के अनुसार भरत प्रकृतिसे विरागी था। इसी से कैकेई हमेशा चिन्तित रहती थी। भरत राजवैभव से अधिक आत्म वैभव चाहते थे। इससे राजा बनने की अपेक्षा वह राजर्षि ही बने। भरत के इस वैराग्य प्रवणता की झलक हमें "धनुरयण-लाभा" के प्रसंग में स्पष्ट रूप में मिल पाती है।

रामने धनुष्यपर डोरी चढाई जिससे सीता ने उसके गले में वरमाला पहना दी। उस समय भरत ने सोचा–" इसके और मेरे पिता एक ही हैं। केवल पूर्वजन्म में किये हुए पुण्य के कारण राम अभ्युदय कर्मवाले हैं। अपने कर्मों के प्रभाव से ही पद्मदल के समान नेत्रवाली पद्ममुखी और पद्मगर्भसम गौरवर्णा पत्नी के रूप में उन्हें मिली।"

कैकेई ने अपने पुत्र की चिन्तन धारा को पहचान लिया और अपने पति से कहा –" मुझे भरत शोकमग्न प्रतीत होता है। शीघ्र ऐसा करो जिससे वह निर्वेद ना पाये।" दशरथ के कहने से जनक राजा के भाई कनक ने अपनी पुत्री सुभद्रा का स्वयंवर करने की घोषणा की। सुभद्रा ने भरत का वरण किया। स्वभाव में निहित एवं स्थित यह विरागी भाव दशरथ राजा के प्रव्रज्या लेने का निश्चय प्रकट होते ही अधिक तीव्र बन गया और भरत ने भी अपना मनोदय जाहिर किया कि वह भी प्रव्रज्या ले रहा है। मुनिवर का उपदेश सुनकर दशरथ राजा अपने निश्चय पर अधिक दृढ बन उसने अपने अमात्यादि को कहकर राम को राज्याभिषेक करने का प्रबन्ध भी किया।

अपने पिता को राज्य छोडकर प्रव्रजित होते देख भरत का वैराग्यभाव तीव्रतर हुआ। उसने देखा राजसिंहासन, शरीरादि सब क्षणिक हैं अब इनके आधीन रहना कहाँतक उचित है? इस प्रकार के भरत के विचार जानकर कैकेई ने अपनी ओर से उसकी सुरक्षितता के लिए कुछ विचार किया। पति और पुत्र दोनों को खो देने का अवसर उपस्थित हो गया था। पति का रुकना असंभव था इस लिए उसने भरत के मार्ग में रूकावट डालने की सोची। और पति से वर की माँग की। प्रव्रज्या के उत्साह में मग्न राजा ने तुरन्त ही वर देने का निश्चय किया। कैकेई ने अपने पुत्र के लिए अयोध्या का राज्य माँगा।"[५९]

रघुकुल भूषण राजा ने तुरन्त ही वर दे दिया। अब राजा को भरत की दीक्षा को अपनी सम्मति देना असंभव हो गया। उसने राम को बुलाकर परिस्थिति का चित्र खडा किया। रामने सिंहासन का हक छोड दिया किन्तु यह सोच कर कि भरत अपनी उपस्थिति में राज्य कदापि ग्रहण नहीं करेगा, वननिवास का निश्चय जाहिर कर दिया। अपने पिता का वचन मिथ्या न हो इस लिए राम स्वेच्छा से वनगमन की घोषणा कर बैठे। कैकेई के दूसरे वर का यहाँ अस्तित्व भी नहीं है। इस प्रकार का वर माँग कर भी वात्सल्यमयी माता का हृदय ही उसने धारण किया था न कि सौतिया डाह की अग्नि से प्रज्वलित डायन का।

राजा ने भी तुरन्त ही उससे कहा कि, "मेरी प्रव्रज्या को छोड चाहे जो माँग लो।" तब कैकेई बोली "आपने वैराग्य खड्ग से स्नेहबन्धन काट डाला है" पैरों से जमीन कुरेदती हुई कैकेई ने कहा–"स्वामी, मेरे पुत्र को सारा राज्य दे दिया जाय।" तब दशरथ ने तुरन्त ही कहा, "तेरे पुत्र को मैंने सारा राज्य दे दिया।"

रामसे भी दशरथ राजा ने यही कहा। रामने पिता की इच्छा शिरोधार्य कर ली। दशरथ राजा ने लक्ष्मण के साथ राम को बुलाकर स्पष्ट रूप से कह दिया कि, "वत्स। महासंग्राम ने कैकेई में मेरा सारथ्य किया था। तुष्ट होकर मैंने सब राजाओं के सम्मुख उसे एक वर दिया था। अब कैकेई ने पुत्र के लिए राज्य माँगा है। हे वत्स। मैं क्या करूँ? मैं तो चिन्तारूपी समुद्र में डूब गया हूं। भरत दीक्षा ले रहा है और उसके वियोग में कैकेई मर रही है। इधर मैं भी अवश्य ही संसार में मिथ्याभाषी कहलाऊँगा।"[६०]

यहाँ का कैकेई, दशरथ और राम का यह संघर्ष एक कुटुम्ब में होता हुआ विचारविनिमय है। यहाँपर सौतिया डाह नहीं अथवा किसी की दुष्टता भी नहीं है। रघुकुल के एवं राजकुटुंब के लिए शोभा दे ऐसी ही यह घटना है।

---

५९. प. च. वि. ३१।५७ से ७१।

६०. प. च. वि. ३१।७३ से ७५।

इसीलिए हम कहते हैं कि कैकेई के चरित्र को उचित न्याय इसमें प्राप्त हुआ है। उसके स्वभाव के विपरीत यहाँ कुछ भी नहीं है। उसके चरित्रपर धब्बा लगने का कोई प्रश्न पैदा नहीं होता।

राम, लक्ष्मण और सीता के साथ स्वेच्छा से वन में चले गये यह बात सुनकर भरत दुःखाकुल हो गये। राजा दशरथ की प्रव्रज्या हो गयी। अपने पति और पुत्र दोनों को भी खोने के कारण अपराजिता और सुमित्रा अति शोकामग्ना बन गयी।

कैकेई से उनकी यह दशा देखी न गई तब कैकेई ने अपने पुत्र से कहा, "हे पुत्र। तूने निष्कण्टक एवं अनुकूल राज्य प्राप्त किया है किन्तु रामलक्ष्मण के सिवा यह सुहाता नहीं है। पुत्रदुःख से उनकी माताएँ कष्ट न करें अतः तुम शीघ्र उन्हें वापस लाओ। माता के वचन को सुनकर भरत तुरन्त ही खोज में निकले। छः दिनों के प्रवास के बाद वह राम के चरणों में जा पहुँचे। उनके पीछे कैकेई भी वहाँ पहुँच गई। रथ से उतरते ही राम को आलिंगन देती हुई वह बोली, "हे पुत्र, चलो हम साकेतपुरी में लौट जायें। तुम अपना राज्य करो और भरत को भी शिक्षा दो। स्त्री स्वभाव से ही चंचल, अदीर्घदर्शी और माया करनेवाली होती है। अतः मैंने जो कुछ तुम्हारे प्रतिकूल किया है उसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करो।" रामने कैकेई को समझाया और कहा, "माँ, श्रेष्ठ कुल के क्षत्रिय मिथ्याभाषी नहीं होते। अतः भरत ही राज्य करे।" भरत को वापस लौटना पडा और राम दक्षिण की ओर आगे बढे।

कैकेई ने केवल भरत की दीक्षा रोकने के लिए ही राज्य माँगा था इसी कारण राम का वननिवास टालने के लिए भी उसने प्रयास किया।

यहाँ पर हमें कैकेई के मातृहृदय का परिचय होता है। अपने पुत्र से वह बिछुडना नहीं चाहती थी; उसी प्रकार राम और लक्ष्मण का अपनी माताओं से बिछुडना भी उसे असह्य बना। इसीलिए उसने राम लक्ष्मण को लाने के लिए भरत को भेजा और स्वयं भी वहां पहुँच कर राम को वापस लौटाने के लिए कोशिश करने लगी।

रघुकुल की यह रानी दुर्देवी नहीं है। कुलटा या पतिघातिनी भी नहीं है। हम कैकेई के साथ सहानुभूति ही रखते हैं। उसका कार्य निन्दनीय कहीं भी नहीं प्रतीत होता। इसीलिए हम कहेंगे कि जैन रामकथा में हमें एक ऐसी कैकेई मिली जिसकी कल्पना भी वैदिक रामकथा में नहीं है। उसका स्त्रीत्व सजीव एवं सशक्त है। उसके विचार और कार्यों में गति है। संकटकाल में वह मूढ बनती है फिर भी धीरज और दीर्घदृष्टि से काम लेती है। वह न तो कच्चे कान की है न कच्चे हृदय की। वह एक वीरबाला, वीर पत्नी और वात्सल्यमयी वीरमाता भी है।

विशल्या

विशल्या का पात्र जैन रामकथा की अपनी निर्मिति है। द्रोणमेघ राजा की वह कन्या थी। पूर्व भव में तीव्र तप के कारण उसमें एक महान शक्ति जन्म से ही प्राप्त थी। उसके चन्दनसिंचित स्नात जल से चाहे जैसा असाध्य रोग नष्ट हो जाता था। लक्ष्मण जब शक्ति के प्रहार से मूर्च्छित हो गये तब राम ने किसी विद्याधर के कथन से हनुमान को विशल्या का स्नात जल लाने भेजा। राजा भरत के पास जाकर हनुमान ने सारी बात कही। तब कैकेई ने राजा द्रोण मेघ को समझाकर विशल्या को रामके पास भेजा और उसके चन्दन से युक्त सुगन्धी स्नातजल के सिंचन से लक्ष्मणजी होश में आये। राम के कथन से विशल्या का लक्ष्मण से विवाह सम्पन्न हुआ।

विशल्या का चरित्र तप की महिमा बढानेवाला है। साथ ही उसके द्वारा वैदिक रामकथा की हनुमान के द्वारा पर्वत उठा लाने की घटना का परिहार हुआ था।

राक्षस वंशीय रावण का चरित्र-चित्रण

जैन रामकथा में रावण का चरित्र - चित्रण :

जैन रामायण का प्रारंभ राम से पूर्व रावण के चरित्र से ही हुआ है। रावण की सम्पूर्ण जीवनी को विस्तार से प्रकट करने की परम्परा जैन रामायण की है। इससे रावण की महत्ता पर प्रकाश पडता है।

वास्तव में रावण ने सीताहरण किया। युद्ध में वह मारा गया। फिर भी त्रिषष्टि शलाका पुरुषों में उसे स्थान देकर रावण चरित्र को आदर्श से अधिक यथार्थ बनाया गया है। रामके देवत्व के प्रकाश में रावण चरित्र पर जो कलंक लगाया गया है उसका एक अंश मात्र भी यहां कहीं दिखाई नहीं देता।

रावण यज्ञयाग का विरोध करनेवाला था इसीलिए उसे राक्षस यह नामाभिधान प्रदान हुआ है। वस्तुतः राक्षस शब्द में रक्ष धातु होने से यज्ञों में बलि दिये जानेवाले प्राणियों के ये रक्षक होने से तो कहीं राक्षस की संज्ञा उन्हें नहीं मिली होगी ऐसा अनुमान यदि किया जाय तो वह उचित ही है।

जैन रामायण में न राम कोई अवतारी पुरुष हैं न उनका रावण वध करने का कोई उद्दिष्ट है। जैन रामकथा मानो एक ऐसी कविकथा है कि जिसका प्रारम्भ होने पर मात्र अपने आप आगे बढकर अपने रचनाकार को खींचकर किसी अनियुक्त अंतपर ले जाती हैं।

रावण जन्म का वर्णन करते हुए विमल सूरि ने कहा है–" रावण जब माता के गर्भ में आया तभी से माता की वाणी निष्ठुर हुई, अंगों में कठोरता आ गई, रण का हौसला बढने लगा और देवेन्द्र को भी आज्ञा करने की इच्छा उस माता हृदय में पैदा हुई और दर्पण की अपेक्षा तलवार में उसे अपना मुख देखने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।

सूतिका गृह में बाल रावण ने किसी विद्याधर राजा ने भी जिसे धारण नही किया था उस नवरत्नहार को अपने गले में धारण किया। उसका मुख हार के नवरत्नों में प्रतिबिंबित हो गया और इस प्रकार रावण को दशानन यह नाम प्राप्त हुआ, जो बडा अन्वर्थक लगता है।

इस प्रकार जन्मकाल से ही अपनी अपार बलशक्ति का प्रदर्शन रावण में प्रकट हुआ जो रावण के चरित्र को महानता के साथ दिव्यता भी प्रदान कर देता है। " होनहार बिरवान के होत चीकने पात " यहाँ ठीक ढंग से चरितार्थ होता है।

जैन रामकथा में जन्म के समय से ही जितनी रावण की महत्ता प्रकट हुई है उतनी राम की नहीं प्रकट की गई है। इससे हम अवश्य ही प्रभावित होते हैं। रावण का यह चरित्र चित्रण वैदिक रामकथा में हमें कहीं भी नहीं दिखाई देता।

स्वयम्भू ने रावण के गुणों को देख रत्नश्रवा द्वारा कथित भविष्य वाणी इस प्रकार कही है––

" तुम्हारा पहला पुत्र युद्ध में रौद्र, जगकण्टक और आधे भरत खण्ड का अधिपति (तीन खण्डों का अधिपति) बन इन्द्र को भी डरानेवाला चक्रवर्ती होगा। "[६१]

आगे चलकर स्वयम्भू लिखते हैं कि–

" अतुल बलशाली रावण का जन्म हुआ। उसकी भुजाएँ लंबी थीं। नितम्ब प्रौढ और विशाल वक्षस्थल था। ऐसा लगता था मानो स्वर्ग से कोई सुर ही आ गया हो "[६२]

रावण वीर तो था ही पर बडी आकांक्षाओं से भी युक्त था। माँ से उसने अपने पूर्वजों से छिनी गयी पाताल लंका एवं लंका के राज्य का उल्लेख सुनते ही उसका खून खौल उठा। उसने मन ही मन संकल्प किया कि मैं वह अपना पैतृक राज्य अवश्यमेव हथिया लूंगा। इसके लिए विद्या की महान साधना में वह मग्न हो गया।

---

६१. प. च. स्वयम्भू ९।३

६२. प. च. स्व. ९।३।१ से ७

उसको तप से डिगाने वा गिराने के लिए अनेक उपद्रवों में भी वह अक्षुब्ध रहा। अन्त में उसने विद्याएँ सीखी और इस प्रकार अपने लक्ष्य में अटल रहकर सफलता पाई।

रावण ने विद्याधर राजा इन्द्रादि अष्ट दिक्पालों को पराजित कर अपनी अनोखी वीरता प्रकट की है। तीन खण्डों का विजेता और चक्रवर्ती राजा के रूप में वह सचमुच ही बहुत महान था।

जैनेतर रामकथा में रावण :

रावण की महान साधना तो वैदिक रामकथा में भी वर्णित है। वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस रावण को पुलस्त्य वंशीय उत्तम कुल का बताते हैं।

रावण का चरित्र वैदिक रामायण में एक खल पुरुष के रूप में चित्रित किया है। इस दृष्टि से हम पहले वाल्मीकि रामायण के रावण के दर्शन करेंगे।

एकादश सर्ग का शीर्षक ही 'रावण वधोपाय' है। ब्रह्मा के आगे सब देवता उपस्थित होकर कहने लगे कि "हे भगवन्। आपके वरदान से रावण नाम का राक्षस ऐसा प्रमत्त बन गया है कि उसका उपाय करना हमारे लिए अशक्यप्राय हो गया है। इसलिए इस दुरात्मा के वध के लिए कोई उपाय सोचना आवश्यक है।"[६३]

तब ब्रह्मादि सब विष्णु के समीप जाकर विज्ञप्ति करने लगे कि, "लोक के कल्याण के लिए आपकी नियुक्ति की जाती है। अपने को चार रूप में विभाजित कर राजा दशरथ के घर पुत्ररूप से आप जन्म लेकर रणभूमि में रावण को मृत्यु के घाट उतारें।"[६४]

विष्णु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और कहा– "तुम भय छोड दो। हे भद्र, आपके हित के लिए युद्ध में मैं पुत्र, पौत्र, अमात्य और जातिबान्धवों के साथ रावण को मारकर दस हजार वर्षोंतक मनुष्य लोक में रहूंगा।"[६५]

रामकथा का उद्देश ही रावणादि राक्षसों का वध है। दुरात्मा आदि विशेषणों के द्वारा रावण को महान दानव, लोककण्टक; देव, गन्धर्व, किन्नर आदि सब के लए भीषण भयकारी खल का नाश ही रामजन्म का प्रधान हेतु है।

"लीलाओं के भण्डार कृपालु हरि ने जालंधरपत्नी वृन्दा के शाप को

---

६३. वा. रा. बालकाण्ड ११।५ से १४

६४. वा. रा. ११।१७ से २१

६५. वा. रा. ११।२७ से २९

प्रामाण्य दिया। वही जालंधर रावण हुआ, जिसे श्रीरामचन्द्र ने मारकर परम पद दिया।"[६६]

तुलसी ने कहा है कि–

" सुर मुनि गन्धर्वा मिलिकरि सर्वा गे विरेंचि के लोक।
सँग, गोतनुधारी भूमि बिचारी परम विकल भय सोक।
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछु न वसाई।
जा करि तें दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई।"[६७]

इस प्रकार वैदिक रामकथा में रावण को खल, राक्षस एवं अत्याचारी के रूप में चित्रित किया है। तुलसीदास के चरित्रों की विशेषता तुलसी की इस मान्यता का फल है––[६८]

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि वैरी सम
जद्यपि परम सुने ही। –– विनय पत्रिका ३४५

फिर भी रावण का चित्रण लोकव्यापी आतंक के रूप में ही है। " उस उग्र पापकर्मी रावण को देखकर जन्मस्थान के न वृक्ष कंपित होते थे और न वायु ही चलती थी। शीघ्र बहनेवाले स्रोत उस लाल नेत्रवाले रावण को देखकर मन्द चलने लगे।"[६९]

रामायण में उसकी कामुकता का भी विस्तृत उल्लेख किया गया है। वेदवती एवं पंजिक स्थली नामक अप्सरा के प्रसंग एवं उनके कारण उसे प्राप्त शाप उसके पर्याप्त उदाहरण हैं।

वह परम तेजस्वी, दिग्विजयी, सार्वभौम सम्राट की भाँति अपने संपन्न राज्य में अनुशासन करता है। उसके राज्य की कुशलता का प्रमाण उसके प्रजा की धनधान्यपूर्ण ऐश्वर्यसंपन्नता है। उसके राज्य में निर्माण कला अपनी चरम सीमा पर प्रतिष्ठित थी। उसकी नगरी समृद्धि एवं शोभा में स्वर्गलोक के समान थी।

इसके अतिरिक्त वह अत्यंत व्यवहार कुशल एवं वाक्य कोविद राजा की भाँति मंत्रिमण्डल से सदैव आवश्यक समस्याओं पर परामर्ष करता था।[७०]

---

६६. रा. च. मा. बालकाण्ड १२३।१ सन १९६२ ई.
६७. रा. च. मा. बालकाण्ड १८३।६
६८. सं. तुलसीदास – विनयपत्रिका – ३४५
६९. वा. रा. ३।४६।६ से ८
७०. डॉ विद्या मिश्र – रा. च. मा. एवं वा. रा. तुलनात्मक अध्ययन, पृ. ५२२ सन १९६३

डॉ. विद्या मिश्रा ने आगे चलकर यह स्पष्ट किया है कि फिर भी वह तुलसी के राम का प्रत्यक्ष विरोधी है इसीलिए उसकी प्रछन्न भक्ति के लिए तुलसी उसकी सराहना नहीं करते अपितु सम्पूर्ण मानस में उसकी कटु आलोचना करते हैं। उसे नीच, खल, अधम आदि कटु विशेषणों से ही विभूषित करते हैं।[७१]

स्व. डॉ. माताप्रसाद गुप्तजी अपनी मान्यता प्रकट करते हुए कहते हैं कि "उनका रावण उनके पूर्व के रावणों से माल्यवंत, प्रहस्त और कुम्भकर्ण के परामर्षों एवं अपनी पत्नी मन्दोदरी की बार बार की गई प्रार्थनाओं पर किंचित भी ध्यान नहीं देता। निःसन्देह इस समस्त अभिमान, दुराग्रह और दंभ के होते हुए भी इस रावण में एक बात आश्चर्यजनक दिखाई देती है--वह उसकी चतुरता और वाक्पटुता, आत्मविश्वास एवं विनोदप्रियता है। किन्तु खेद है तुलसी अपने नायक के प्रति उत्कट भक्ति के कारण इस वीर चरित्र के साथ पर्याप्त न्याय नहीं करते। स्पष्ट ही इन स्थलों पर भक्त तुलसी के आगे कलाकार भाग खड़े हुए हैं।[७२]

इन अवतरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं--

१) वैदिक रामकथाकार की रावण के विषय में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि नहीं हैं

२) राम के चरित्र के उन्नयन करने में रावण को अधिकाधिक खल के रूप में चित्रित करने का उसमें प्रयास किया गया है।

जैन रामकथा में रावण का चित्रण इस प्रकार के प्रभाव से मुक्त है।

रावण का दिग्विजय और उसने प्राप्त की हुई विविध विद्याओं का वर्णन पढकर रावण की महत्ता और चरित्र की दृढता अपने आप स्पष्ट हो जाती है। विद्या-साधना में विविध उपसर्ग और उपद्रवों से अप्रभावित बनने की उसकी चारित्रक दृढता सचमुच ही प्रशंसनीय है।

वाली द्वारा रावण पराभूत होता है –

रावण का युद्ध में पराजय केवल दो बार ही हुआ है। वाली को रावण ने अहंकारवश युद्ध के लिए ललकारा था। वाली ने उसे बगल में दबाकर जम्बुद्वीप की परिक्रमा की थी। यहाँ रावण अपमानित हुआ किन्तु वाली ने तुरन्त दीक्षा ग्रहण कर सुग्रीव को रावण का आज्ञांकित बनाया।

दूसरा प्रसंग है अष्टापद गमन का।

वाली मुनि तपस्यामग्न है। रावण का विमान अंतराल में मुनि के प्रभाव

७१. वही. पृ. ५२८।

७२. तुलसीदास, स्व. डॉ. माताप्रसाद गुप्त पृ. २८६, २८७। सन १९५३।

से अपने आप रुक जाता है। रावण इसे अपमान समझ अष्टापद को जड से हिलाने की कोशिश करता है। यहांपर रावण के स्वाभिमानी एवं अहंकारी व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इसके लिए वह किसी भी साहस के लिए सचेष्ट बनने से मुकरता नहीं। लेकिन यह सब उसके अहंकार के कारण है। वाली मुनि जान बूझ-कर उसे अपमानित कर रहे हैं केवल इसी अहं भावना के कारण ही यह सब उसे भोगना पडा।

रावण धर्मशील है। उसकी श्रद्धा अडिग है इसी कारण सहस्रकिरण के द्वारा उसकी पूजा भंग होते देख वह क्रुद्ध होता है। मुनिवर की आज्ञा को शिरोधार्य कर वह कैदी बनाये हुए सहस्रकिरण को तुरन्त मुक्त कर देता है। इससे उसकी धर्म भावना का ही उद्घाटन होता है।

मुनि के आग्रह से उसे नियम ग्रहण करना पडता है। तब वह नियम ग्रहण करता है कि,

"रूपवती होनेपर भी वह परस्त्री यदि अप्रसन्न हो तो मैं उससे जबरदस्ती से भोग की अभिलाषा नहीं करूंगा।"

नियम को न अपनानेवाला वैभवसंपन्न, तीनखण्ड का स्वामी रावण इस प्रकार की प्रतिज्ञा लेता है यही उसकी महानता और सदाचारशीलता का प्रमाण है। रावण ने अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह जिस दृढता के साथ किया है साहित्य में शायद ही इसकी कोई मिसाल मिल सकती है। परस्त्री ही नहीं किन्तु स्वपत्नी भी अगर अप्रसन्न हो तो उससे भोग न करना त्रिखण्ड सम्राट के लिए बडा कठिन एवं दुष्कर कार्य था।

रावण की कामविवशता में भी नियमदृढता :

सुररमण उद्यान में सीता को रखा था। उस समय रावण इतना काम-विव्हल हुआ था कि उसकी पट्टमहिषी मन्दोदरी सीता को समझाने के लिए उद्यत हुई। सीता मानती नहीं यह ज्ञात होनेपर मन्दोदरी ने रावण से पूछा, "हे स्वामी! केयूर से भूषित तथा हाथी की सूंड जैसी इन भुजाओं से तुमने बलात्कारपूर्वक उस स्त्री का आलिंगन क्यों नहीं किया ?" फिर भी रावण अपने नियम पर अटल रहा। कामवेदना से विव्हल होने पर भी उसने सीता से प्रार्थना ही की। उसे समझाने की पराकाष्ठा की। किन्तु जबरदस्ती से अपने नियम को भंग नहीं होने दिया। उस समय की रावण की अवस्था का वर्णन इस प्रकार है– "भवन में बैठा रावण शोक करता था, गाता था, विलाप करता था, हाथ पटकता था। एकदम खडे होकर और भवन में से बाहर निकलकर वह चलने लगता था और

तुरन्त ही 'सीता। सीता' कहता हुआ वापस लौट आता था।"[७३] काम-विव्हल एवं उन्माद की इस अवस्था में नियमपालन की दृढता उसकी श्रेष्ठता को प्रकट करती है।

रावण की द्विधा वृत्ति :

रावण के चरित्र का एक और उज्ज्वल पक्ष हम देखते हैं कि हनुमान ने रावण के सम्मुख धर्म का स्वरूप प्रकट किया। रावण उसपर श्रद्धा रखता था इसलिए वह दुविधा में पड गया। एक तरफ सीता के प्रति उसकी अभिलाषा उसे कुछ सूझने नहीं देती थी। दूसरी ओर धर्मभ्रष्ट होने का उसे डर था। अन्त में धर्म ने काम पर विजय पाई। रावण ने निश्चय किया कि वह सीता को लौटा देगा। पर धर्म की अश्रद्धा नहीं करेगा। रावण अगर कामांध होता तो इस प्रकार का निर्णय नहीं ले सकता था।

पर रावण का अहंकार उसके विवेक बुद्धि को झकझोरने लगा। राम लक्ष्मण के साथ लडाई के समय सीता को लौटाना याने लोगों के इस प्रवाद को अवसर देना था कि "उसने डर के मारे सीता को लौटा दिया।" इसी लिए उसने संकल्प किया कि राम-लक्ष्मण को पराजित करने पर वह तुरन्त ही सीता को लौटा देगा।

अंतिम समय में युद्ध के पूर्व मंत्रियों की सलाह को उसने ठुकराया। युद्ध के भीषण वातावरण और चिन्ता के समय बहुरूपा विद्या की साधना के लिए वह प्रयत्नशील एवं एकाग्र हो सकता है इस में रावण की मानसिक शक्ति और संयमपूर्ण धर्मज्ञता का ही परिचय प्राप्त होता है।

विद्या प्राप्त करने पर वह सीता को धमकाता है। वह कहता है कि "अब तक मैंने अनुनय विनय बहुत किया पर अब तेरे पति और देवर को मौत के घाट उतार कर बलात् मैं तुझे अपने वश में करूंगा।" रावण की इस धमकी से भय-भीत हो कर सीता को मूर्च्छा आयी। होश में आनेपर सीता ने अपना संकल्प प्रकट किया कि, "अगर राम लक्ष्मण की मौत हो जाय तो मैं आमरण अनशन करूंगी।" इसपर – रावण की प्रतिक्रिया देखने योग्य है।

रावण सीता की मृत्यु के विचार मात्र से काँप उठा। उसके अभिग्रह ने

---

७३. सोयइ, गायइ, विलइ वीहुव्हे तत्थ मुयइ नीसासे
सहसा समद्विऊणं वच्चइ भवणाऊ निग्गओ संतो
पुणरवि नियत्तइ लहु सीया जमान्तो – प. च. वि. ४६ । ८२, ८३

उसे पश्चात्तापदग्ध बनाया और उसे राम को सौंप देने के लिए वह कृतसंकल्प हुआ।[७४]

रावण के चरित्र में इस प्रकार हम देखते हैं कि खलता की अपेक्षा उदारता अधिक है। इतने बडे वीर सम्राट को इस प्रकार अहंकारी होना लांच्छन की बात नहीं है।

अंत में समरांगण में उसने वीर मरण पाकर अपने क्षत्रियत्व को यशोज्ज्वल किया।

रावण को कलंकित बनानेवाले प्रसंग :

रावण को कलंकित या खल पुरुष के रूप में चित्रित करनेवाले केवल दो प्रसंग हैं। उसमें एक है सीता का अपहरण और दूसरा है सीता को अशोक वन में रखकर उसे धमकियों से वश करने का प्रयास। इसमें दूसरे प्रसंग का गाम्भीर्य रावण के संकल्प से अपने आप कम हो गया है। धमकाने पर सीता की भयाकुल दशा देखकर शीघ्र ही उसने राम को सीता सौंप देने का संकल्प किया इससे यह दूसरा प्रसंग रावण के चरित्र पर कलंक रूप नहीं बनता पर पहले प्रसंग के विषय में ही रावण के चरित्र के सम्बन्ध में विवेचन करना आवश्यक है।

सीतापहरण के प्रसंग की पृष्ठभूमि महत्त्वपूर्ण है। यह पृष्ठभूमि हमें रावण के इस दुष्ट कार्य के गाम्भीर्य का स्वरूप समझाने में सहायक होगी। इसमें प्रमुख कारण बनी है शूर्पणखा।

वाल्मीकि ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया है —

" कामपाशबद्ध होकर शूर्पणखा राम के पास आई। उसने राम से प्रार्थना की। राम ने कहा, " मैं पत्नीयुक्त हूँ इसलिए तुझसी सुन्दरी के लिए सौत बडी दुखदाई सिद्ध होगी। यहां मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है जो बडा शक्तिशाली एवं शीलसंपन्न है। उसके पत्नी नहीं है और वह युवक एवं रूपवान भी है। अतएव वह तेरे लिए योग्य, अनुरूप है। इसलिए तू उसके पास जा। "[७५]

यहाँ राम के पास अभ्यर्थना के लिए आ उपस्थित हुई शूर्पणखा की काम भावना राम के वचनों से और उत्तेजित हुई। यदि राम से उसे उत्तेजना प्राप्त नहीं हुई होती तो घटना कुछ और ही होती। राम के समान धीर ललित नायक ने उसको निरुत्साही नहीं किया। किन्तु उसने केवल अपना पिंड छुडा लिया।

---

७४. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, पर्व ७, पृ. १४३, सन १९६१ ई.

७५. वा. रा. १४।३० से ३४।

लक्ष्मण के पास भेजते समय भी लक्ष्मण के बारे में गलत बात बताई कि वह क्वारा है। सपत्नी के लिए वहां कतई अवसर नहीं है। यहाँ भी लक्ष्मण के बारेमें इस प्रकार की बातें कही कि जिससे शूर्पणखा अपने आप अधिक उत्तेजित होकर कामान्ध बन गई। राम के ये वचन चाहे विनोदपूर्ण रहे हो अथवा व्यंगपूर्ण किन्तु उसके फलस्वरूप तो शूर्पणखा की काम वासना प्रज्ज्वलित हुई क्योंकि राम के कहने से लक्ष्मण उसे प्राप्य लगा। वह लक्ष्मण के पास गई तो लक्ष्मण ने उससे कहा कि, "मैं तो राम का दास हूँ इसलिए दास की दासी बनने से क्या लाभ। इसलिए राम ही तेरे भर्त्ता बनने योग्य हैं"[७६]

यहाँ पर भी लक्ष्मण ने राम ही अपने से कैसे श्रेष्ठ हैं और शूर्पणखा के पति बनने के लिए अनुरूप हैं इस बात को शूर्पणखा के मन में दृढ किया।

उत्तेजित शूर्पणखा और अधिक उत्तेजित एवं कामान्ध बन गयी। राम ने असत्य वचन कह कर उसे लक्ष्मण की ओर मोडा और लक्ष्मण ने फिर उसे राम की महिमा समझाकर रामचन्द्र की ओर भेजा।

वह कामपीडित तो थी ही। राम के असत्य वचन और झूठे सहानुभूतिपूर्ण वचनों ने उसके विकारों को अधिक उत्तेजित किया। लक्ष्मण के द्वारा सत्य बात का कथन होने के बदले उसे राम की ओर भेज कर उसकी हँसी उडाई गयी। इसने उसकी कामाग्नि अधिक प्रज्वलित हो गई और उसमें असफलता पाने पर वह आगबबूली हो गई और उसने अपना रौद्ररूप प्रकट किया। वास्तविक रूप से यदि राम उसे टकासा जवाब दे देते और लक्ष्मण के द्वारा सही बात बताई गयी होती तो शूर्पणखा आपे से बाहर न होती। परन्तु कामाग्नि को इन्धन मिलनेपर वह प्रखर रूप से प्रज्वलित हुई तथा उसमें रावण के साथ राक्षस कुल एवं लंका भी जलकर भस्म हो गई।

शूर्पणखा रौद्र एवं भीषण बन गई। रौद्र रूप धारण कर उसने बदला लेने की धमकी दी। इस प्रकार का यह प्रसंग राम के गाम्भीर्य और धीरोदात्त चरित्र के लिए अनुचितसा लगता है। यहीं पर यह बात नहीं रूकी; उसने बडा ही उग्र रूप धारण किया। वाल्मीकि ने इस प्रसंग का वर्णन करते समय कहा कि, "यह भीषण रुद्राकृति, कुलटा, राक्षसी का रूप विकृत करना ही उचित है," इस प्रकार कहकर राम के सामने लक्ष्मण ने उसको नाक, कान काटकर विकृत किया।

राक्षसी होनेपर भी इस प्रकार एक स्त्री की की गई विडंबना राम के महान

---

७६. वा. रा. १४३७ से ३९

चरित्र के लिए कहाँतक शोभादायी या स्वीकृत हो सकती है ? वास्तव में शूर्पणखा की हँसी उडाना तथा उसकी भावनाओं को उत्तेजित करना और जब वह आपे से बाहर हो जाती है तब नाक कान काटकर उसे विकृत करना इन सारे कार्यों में कहाँ तक संगति बैठती है ? इस प्रकार की विडंबना से आग बबूला बनी हुई शूर्पणखा रावण के पास गई। उसने अपने भाई को भडकाया और सीता के रूप के वर्णन से रावण को उत्तेजित किया। इसमें अस्वाभाविक क्या है ?

इससे क्रुद्ध बनी हुई वह रावण को आप बीती कहती है और अपनी बहन की इस दुर्दशा से क्रुद्ध रावण अगर अपनी बहन का बदला सीताहरण से लेना चाहता हो उसमें हम रावण को खल या दुष्ट कैसे कह सकेंगे ?

तुलसी ने भी शूर्पणखा द्वारा रावण को भडकाया जाना स्वीकार कर कहा है,

" खरदूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा ने जाकर रावण को भडकाया वह बडा क्रोध करके वचन बोली–' तूने देश और खजाने की सुधि ही भुला दी। '[७७]

आगे चलकर वह कहने लगी --

" सभा माझ परि ठया कुल बहुप्रकार कह रोइ।
तो हि जिअत दस कंधर मो रि कि असि गति होइ ॥ "

सभा के बीच वह व्याकुल होकर पडी हुई, बहुत प्रकार से रो रोकर कह रही है कि, " अरे दशग्रीव। तेरे जीते जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिए ?" शूर्पणखा के वचन सुनते ही सभासद अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखा की बाँह पकडकर उसे उठाया और समझाया। लंकापति ने कहा, " अपनी बात तो बता। किसने तेरे नाक कान काटे ? "[७८]

इस पूर्व पृष्ठभूमि को देखते हुए हम रावण के कार्य को खलता या दुष्टता युक्त नहीं कह सकते। यह पृथ्वी का महान सम्राट अपनी बहन के अपमान का बदला अगर इसी प्रकार से लेता तो भी वह निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। वह तो गया था सीता को लेने। अपनी बहन के अपमान का बदला चुकाने पर सीता के सौन्दर्य का शिकार बन गया। फिर भी अपने वचन पालन के कारण उसने उसपर जबरदस्ती नहीं की यह उसके चरित्र की महानता है।

शूर्पणखा का यह प्रसंग जिस प्रकार वैदिक रामकथा में वर्णित है रामके

---

७७. धुआँ देखि खरदूषण केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा।
बोली वचन क्रोध करी भारी। देस कोस के सुरति बिसारी ॥
रा. च. मा. अ. काण्ड २०।३० सन १९६२ ई.

७८. रा. च. मा. अरण्यकाण्ड २१ ख १

चरित्र को नीचे उतारता है और रावण के कुकार्य की दुष्टता भी घटाता है।

जैन रामकथा में – चन्द्रनखा का प्रसंग

शूर्पणखा ही जैन रामकथा में चंद्रनखा है। जैन रामकथा का यह प्रसंग भिन्न प्रकार से वर्णित है। निशाचरी बनकर शूर्पणखा घूमने नहीं आई है। वह तो आई है अपने पुत्र शम्बूककुमार की तपःसाधना की विजय मनाने। सूर्यहास खड्ग पाने के लिए महान तपपूर्ति का समय आया था। बाँसों के झूण्ड में तपमग्न शम्बूक की विद्या की फलप्राप्ति का समय आ गया था। चमकता हुआ सूर्यहास खड्ग आकाश से नीचे उतर रहा था। कौतूहलवश लक्ष्मण ने वह ले लिया। बाँस के झुण्डपर उसने खड्ग चलाया, बाँस के साथ शम्बूक का सर कटकर भूमि पर गिरा। चन्द्रनखा पुत्र की विजय मनाने आई पर अपने पुत्र की मृत्यु देखकर क्रुद्ध बन वह उसके घातक की खोज में राम लक्ष्मण के पास पहुँची। उनके सौन्दर्य पर इतनी मुग्ध हुई कि अपने पुत्र की हत्या का क्रोध भी वह भूल गई। यहाँ राम का शूर्पणखा के साथ का वार्तालाप उसके चरित्र की गरिमा को कलंकित करने में समर्थ नहीं है।

विमल सूरि ने लिखा है––

" वहाँ घूमती हुई उसने रामचन्द्र एवं लक्ष्मण को देखकर मदन के बाण से पीडित अंगवाली वह क्रोध और शोक को भूल गई। उसने कन्या का रूप धारण किया और आँखो से आँसू बहाती हुई पुन्नाग वृक्ष के नीचे बैठी। सीता ने उसे आश्वासित किया। राम ने पूछा––" बोलो, तुम कौन हो ? सिंहादि से व्याप्त इस जंगल में क्यों घूमती हो ?" चन्द्रनखा बोली, " मेरी माता मर गई है, उसके शोक से पिता की मृत्यु हुई है। पापी स्वजनों द्वारा परिगृहीत और परित्यक्त मैं वैराग्नि को धारण कर इस दण्डकारण्य में आई हूँ। अशरण और दुःखपूर्ण मेरे लिए तुम निश्चित ही शरण रूप हो। इसके बाद काम के वशीभूत होकर वह राम को प्रणाम कर कहने लगी कि, हे महाराज, जब तक मैं प्राण नहीं छोडती तब तक मेरी इच्छा पूर्ण करो। यह कथन सुनकर परस्त्री के संग से दूर रहनेवाले उन दोनों ने एक दूसरे का संकेत जानकर उसे उत्तर नहीं दिया। उनके मौन से दीर्घ निःश्वास और गरम आँसू छोडती हुई वह बहुत बक बक करके उनके आगे से दूर अपने स्थान पर शीघ्र ही चली गई। [७९] यहाँ राम का चरित्र अपनी महानता एवं धीरोदात्त मनोवृत्ति के अनुकूल दिखाई देता है। लक्ष्मण राजसी एवं तामस प्रकृति के हैं, इसी लिए उनके बारेमें कहा है कि, उस दिव्य अंगना के रूप

---

७९. प. च. वि. ४३। ३७ से ४७

एवं गुणों से अनुरक्त होकर विमल प्रभाववाले लक्ष्मण ने दूसरे बहाने से जंगल में उसकी खोज की। बाद में वह लौट आया।[८०]

किन्तु अपने पुत्र की हत्या का बदला लेने उसने रावण को उकसाया। अपनी बहन के प्रिय पुत्र के घातक का वध करने के लिया आया हुआ रावण सीता को देख कर मुग्ध हुआ। सीता के अपहरण के लिए शम्बूकवध और लक्ष्मण ही कारण-रूप है। इन घटनाओं के आधार पर रावण की खलता हमें नहीं खलती। वैभवशाली सम्राट् का स्त्री के रूप पर इस प्रकार मुग्ध होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।

विमल सूरि ने चन्द्रनखा की घटना का वर्णन इस प्रकार किया है--

"तब चन्द्रनखा ने कहा कि मैं पुत्र की खोज के लिए गई थी। वन में मैंने सिर कटे हुए पुत्र को जमीन पर पड़े हुए देखा। मेरे पुत्र को मारकर किसी पापी ने विद्यासिद्ध तथा खेचरों द्वारा पूज्य सूर्यहास खड्ग भी ले लिया। शोक से संतप्त होकर मैं भी पुत्र के शिर को गोद में रखकर विवस्त्र हो कर गाय की तरह आँसू बहाती रही। हे प्रभो, उस समय पुत्र के दुष्ट दमन ने किसी प्रयोजन से रोती हुई मेरा आलिंगन किया। उनसे घृणा करने पर भी अरण्य में मुझ जैसी एकाकिनी को उन पापियों ने दाँत और नखों से ऐसी अवस्था कर डाली है।"[८१] चन्द्रनखा ने अपना सारा वृत्तान्त अपने पति को सुनाया तथा रावण को भी सारी घटना सुनाई। यह सब सुनकर खरदूषण के द्वारा आमंत्रित रावण भी वहाँ आया। उसका वर्णन करते हुए विमल सूरि ने इस प्रकार कहा है--

"इसी समय गुस्से से भरा हुआ, शम्बूक के शत्रु को मारने को कृतसंकल्प रावण पुष्पक विमान में बैठकर वहाँ आ पहुँचा। उसने सम्मोहित करनेवाली सर्वांगसुन्दर तथा इन्द्रपत्नी शची जैसी सौन्दर्यवती सीता को देखा। मदनाग्नि से संतप्त होकर दश-मुख रावण एकाग्रचित्त से सोचने लगा कि राज्य लेकर भी मैं इसके बिना क्या करूँगा?"

रावण के ये मनोविकार घटना के अनुसार स्वाभाविक ही लगते हैं। एक ओर वह राम-लक्ष्मण से बदला लेना चाहता है तो दूसरी ओर सीतापर वह मुग्ध हो जाता है। उसके मन को लुभानेवाली सीता को अपहृत करने से उसके दोनों अभिलषित सफल होते हैं। अपने बहन के अपमान एवं अत्याचार का बदला भी वह लेता है तथा साथ ही में मुग्ध करनेवाली मनमोहिनी सीता का भी उसे लाभ होता है।

---

८०. प. च. वि ४३। ४८

८१. प. च. वि. ४४।३ से ७

रावण की यह विचार-प्रक्रिया स्वभाविक ही लगती है।

मूल्यांकन :

रावण का चरित्र वास्तव में अतीव पुरुषार्थपूर्ण और आदर्श है। भव्यता और दिव्यता की दृष्टि से देखा जाय तो वह राम चरित्र से भी ऊपर उठ जाता है। रावण के माथे पर कलंक का एकमात्र टीका लगा है सीतापहरण का। इसी दोष ने रावण के व्यक्तित्व को खल, नीच या दुष्ट बनाया। कालिदास का वह अवतरण यहाँपर चरितार्थ होता सा दिखाई देता है कि –

" एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्क:।" गुण-समूह में स्थित एक दोष भी चन्द्र के कलंक की तरह सबको कलंकित कर देता है।

वास्तव में रावण मनुष्य है। मानव मात्र से भूल हो सकती है इसलिए किसी एक भूल को लेकर हम उसके चरित्र पर अन्याय नहीं कर सकते।

इसके लिए रावण के बारे में वैदिक रामकथा से प्रभावित बुद्धि ही उत्तर-दायी है अन्यथा उसके आचार विचार और व्यवहार से हम रावण को खलनायक नहीं मान सकते।

रावण को खल पात्र के रूप में चित्रित करने के लिए रामकथा के समय का वातावरण, परंपरा का मोह, पुरातन कवियों की श्रद्धा का अनुकरण करने की प्रवृत्ति ही उत्तरदायी है।

इससे हमें कहना पडता है कि जैन रामकथा लेखकों ने रावण का चरित्र-चित्रण सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से करने का एक बहुत बडा कार्य किया है।

रावण के जन्म से लेकर अन्ततक उसका गौरवपूर्ण व्यक्तित्व अपने आप प्रकट होता गया है।

उसका जन्म तोयदवाहन के वंश में हुआ। गर्भावतरण के समय ही गर्भ की गरिमा को प्रकट करनेवाले सपने उसकी माता देखती है। वे स्वप्न यह संकेत देते हैं की रावण एक महान कीर्तिशाली सम्राट् बनेगा। रावण का जन्मोत्सव बडी धूमधाम के साथ मनाया गया है।

बाल्यावस्था में उसकी बाल क्रीडा माता पिता के हृदय को हर्षविभोर कर देती हैं। कुमारावस्था में वह समस्त शास्त्रों में पारंगत हो जाता है। विविध प्रकार की विद्याओं की साधना में वह निपुण हो जाता है। अनेक विद्याएँ और चन्द्रहास खड्ग का स्वामी बनता है। पाताल लंका और लंका पर वह विजय प्राप्त कर लेता है। त्रिभुवनालंकार हाथी का दर्प चूर करके वह उसे अपने वश में कर लेता है। इससे उसके बल एवं चतुराई का अभूतपूर्व परिचय प्राप्त होता है। उसकी अभूतपूर्व

शक्ति एवं सामर्थ्य अष्टापद (कैलास) पर्वत को हिलाने की घटना से प्रकट होता हैं। वैभव, बल और सत्ता के कारण उसका अहंकारी बनना स्वाभाविक ही है।

रावण की वीरता एवं पराक्रम का परिचय उसके दिग्विजय में हम पाते हैं। फिर भी राजा महाराजाओं को जीतकर वह उन्हें उनका राज्य लौटा देता है। उन्हें मौत के घाट उतारनेकी उसकी अत्याचारी आकांक्षा को हम कहीं भी नहीं पाते। कैद में से महिष्मती नगरी के सहस्त्ररश्मि राजा को वह पुनः राजगद्दीपर बिठाता है। इस कार्य से उसकी अपार उदारता के दर्शन होते हैं। रावण की दिग्विजय लोगों को सतानेवाली लोककण्टक परम्परा को निभाने के लिए नहीं है किन्तु अपने ऊपर होनेवाले अन्याय को मिटाने और अपने पुरुषार्थ को प्रकट करने के लिए की गई है।

उपरम्भा प्रसंग से रावण का कलंक घुल जाता है।

रावण चरित्र पर सीता अपहरण का जो कलंक लगा है वह उपरम्भा की घटना से घुल जाता है। उपरम्भा नल कुबेर की पत्नी है। नल कुबेर का किला यंत्रोद्वारा अजेय था। इसके दुर्बल स्थान की जानकारी आवश्यक थी। नलकुबेर की पत्नी उपरम्भा रावण पर आसक्त हुई थी। उसने सन्देश भेजा कि, " मैं अपने आपको किले के साथ समर्पित करने के लिए समुत्सुक हूं।" शीलव्रतधारी रावण उसकी माँग ठुकरा देता है। मन्त्रियों की सलाह से रावण को सन्दिग्ध प्रत्युत्तर देना पडा कि, "रणभूमि में इसके लिए अवकाश कहाँ ?" उपरम्भा ने रावण को अपना समझ कर सालमैत्रिणी विद्या दी है। नलकुबेर के पराजित होनेपर जब उपरम्भा रावण से प्रार्थना करने आई तब रावण ने स्पष्ट रूप से कहा कि, " तुम उत्तम वंशीय युवती हो, आज तुम्हें दुराचरण शोभा नहीं देता। तुम्हारा सुँदर पति जीवित है। तुम उसे ही सुखी करो"। यह कहकर उसने नलकुबेर की मुक्तता की। पर स्त्री के प्रति वास्तव में रावण का यह शिश्ट एवं प्रशंसनीय आचरण ही उसके चरित्र की महानता का समर्थन करता है।

रावण तो हमें इस प्रकार का पुरुषसिंह दिखाई देता है जिसमें सौम्यता, दया, क्षमा, सौजन्य, धर्मभीरूता और गांभीर्य आदि गुणों का प्रादुर्भाव दिखाई देता है।

सीता का अपहरण करते समय वह सीता का जो अनुनय विनय करता है उसके रावण की कामातुरता का ज्ञान हमें हो जाता है। इतना कामान्ध बनने पर भी वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा और उसने सीता को जबरदस्ती से पत्नी बनने को बाध्य नहीं किया। रावण के चरित्र की यह दृढता वास्तव में महान एवं प्रशंसनीय है।

सीता के प्रति उसका अनुराग कितना गहरा था यह तो उसने रामके पास

सुलह के लिए जो संदेश भिजवाया उससे साफ प्रकट होता है। उसने कहा था – " यह समुद्रवेष्टित राज्य देकर बदले में मैं अपने पुत्र और भाई की मुक्ति और सीता को चाहता हूँ।"

लडाई के अन्तिम दोर में वह शान्तिनाथ के मंदिर में बहुरूपिणी विद्या साध्य करने जाता है। विद्या प्राप्त होने पर वह सीता को समझाता है कि वह उसे पतिरूप में स्वीकार करे। अन्यथा वह रामलक्ष्मण का सर्वनाश करने पर बाध्य होगा। सीता जब अपना निश्चय प्रकट करती है कि जब तक राम लक्ष्मण जीवित हैं तबतक वह जीवित रहेगी।

सीता की यह प्रतिज्ञा सुनकर रावण निश्चय करता है कि युद्ध जीतनेपर वह राम को सीता सौंप देगा। वह शीघ्र ही सीता को सौंपता पर लोग उसे कायर समझेंगे और समझेंगे कि उसने राम को भय के मारे सीता सौंप दी।

जीवन की अन्तिम घडी में हम रावण का हृदयपरिवर्तन देखते हैं। जो द्रष्टव्य है।–

" हा विभीषण, मैंने तेरा उपदेश ठुकरा दिया। बहुत से वीर मौत के घाट उतार दिये, मेरे कारण कितने ही लोग शत्रु के हाथ कैदी बने। मैंने राम को बिना-कारण ही अपमानित किया है। मैं सीता को यूँही सौंप दूं तो मेरी कीर्ति एवं पौरुष कलंकित होगा इसलिए युद्ध ही श्रेयस्कर है। युद्ध जित कर ही मैं सीता को लौटा दूंगा।" यहाँ हमें उसके असली स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

युद्ध में हारने पर भी वह धीरोदात्त और वीरोचित मरण पसंद करता है। दैव के हाथ का खिलौना बनने के बजाय वह अपने पुरुषार्थ पर ही निर्भर रहता है। इस प्रकार रावण में हम मानवोचित दया, क्षमा, सौजन्य, गाम्भीर्य और उदारता आदि गुणों का समावेश पाते हैं।

चन्द्रनखा के पुत्र की हत्या से उसे जो अत्याचार सहना पडा उसे अपना अपमान समझकर रावण ने शठं प्रति शाठ्यम् के सिद्धान्त का पालन किया है।

राम लक्ष्मण की तरह उसने अपनी वीरता का उस अबला के सामने प्रदर्शन नहीं किया इसी में उसकी महानता है। उसकी यह श्रेष्ठता उसे खल पुरुष के रूप में नहीं बल्कि वीर पुरुष के रूप में ही प्रकट करने में सहायक सिद्ध होगी।

हम रावण के जिस चरित्र को देखने, सुनने के आदी हो गये हैं उसमें यह चित्र सर्वथा भिन्न है। यह रावण वाल्मीकि और तुलसी के रावण से बिलकुल साम्य नहीं रखता। दक्षिण के कुछ विद्वानों की राय है कि लंकावासी दर असल वैसे नहीं थे, जैसा कि संस्कृत या अन्य भाषा के कवियों और लेखकों ने उन्हें

चित्रित किया है। ऐसे विकृत चरित्र गढने की प्रवृत्ति के मूल में आर्य और अनार्य की भावना काम कर रही है। अनार्यों के प्रति आर्यों द्वारा किया गया यह बडा ही अन्याय प्रतीत होता है।

जैन शास्त्रकार रावण के चरित्र को मानवीय तथा अति उच्च सिद्ध करने में सफल हुए हैं। बौद्धों का ध्यान भी इस ओर नहीं पहुँचा था। प्रारम्भ में ही विमल सूरि ने कह दिया रावण दुष्ट प्रकृतिवाला राक्षस न था। वाल्मीकि के अनुसार वह राक्षस, अनार्य तथा मनुष्य और देवताओं का प्रबल शत्रु था। उनकें मतानुसार उसके कालिमा युक्त चरित्र में कोई भी उज्ज्वल स्थान नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह संसार के सम्पूर्ण दुराचारों का साकार पुतला था।

मनुष्य की प्रवृत्ति पूर्णतया मानवीय या अमानवीय नहीं होती। मनुष्य की प्रकृति सदाचार और दुराचार से संयुत होती है। इन दो में से किसी एक का दूसरे से बढ जाना मनुष्य को भला या बुरा बता देती है। इसलिए वाल्मीकि द्वारा उपस्थित किया गया रावण का चित्र अतिशयोक्तिपूर्ण है। यह एक ओर अनार्य के प्रति घृणा प्रदर्शित करता है तो दूसरी ओर वह अतिशयोक्ति पूर्ण भी है। विमल सूरि ने इस अन्याय को समझकर उसे मनुष्यत्व प्रदान किया है जिससे वह बडा सर्वगुणसंपन्न मानव बन गया है।

रावण का रूपवर्णन :

उसका शरीर गेहूँआ एवं रजत के समान कांतिमान है। मुख पूर्ण विकसित कमलस्वरूप है, दीर्घकाय वक्ष:स्थल है, बलवान लंबी भुजाएँ हैं, उसकी पतली कमर, सिंह के समान पुठ्ठे तथा हाथी के समान राने, ग्राह के समान पैर, रत्न-जडित वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर जब सामने आते हैं तब वह रावण संसार के पुरुषों के राजा इन्द्र-सा प्रतीत होता है।

वास्तव में यह रूप एक हदतक मानने योग्य है। उसके असाधारण सिर और भुजाएँ उसमें विलीन हो जाती हैं और वह एक साधारण मनुष्य का शरीर धारण करता है। विमल सूरि के जादूभरे स्पर्श से न केवल रावण को मनुष्यरूप प्राप्त हो गया वरन मनुष्य हृदय भी प्राप्त हुआ। उसके हृदय में कोमल एवं सुन्दर विचारों का वास था। पउमचरियं में बहुत से उदाहरण हैं जिनसे रावण के हृदय की उच्चता प्रमाणित होती है।

(१) त्रैलोक्य विजय में वरुण को परास्त कर कैदी बनाया पर प्रजा का दुख (बिलख बिलख रोना) देखकर उसे उसने मुक्त कर दिया।

(२) जीवन की अन्तिम घडियों में जब मृत्यु और अपमान उसकी शोकाकुल

आत्मा के निकट मंडरा रहे थे तब वह अपने उस दुष्कार्य पर पछताता है कि सीता को उसके पति से दूर रख कर उसे दुख देने का जो पाप उसने किया था उससे वह स्वयं अपने आपसे घृणा करता है तथा विलाप करता है। अपनी माता से बिछुडे हुए बालक के समान बेचारी सीता के दुःखों पर रोता है। कविता द्वारा विमलसूरि रावण को सर्वोच्च मनुष्य से भी उच्च मानने के लिए हमें बाध्य करते हैं।

रावण को जैन धर्मानुयायी बताकर कवि एक पग आगे बढता है। इसका अर्थ रावण हिंसा से दूर किसी जीवधारी को दुखी बनाने से भी दूर, रहता है यही होगा। रावण की लडाइयों का वर्णन करते समय कवि ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि रावण सब राजाओं को मारकर नहीं वरन् पराभूत कर चक्रवर्ती बना है। शायद ही कोई राजा उसके हाथ से मारा गया हो। इस प्रकार जैनेतर रामकथा का लक्ष्य रावण वध तथा राक्षस संहार होने से उनका विकृत एवं विशेष हेतुपूर्ण चित्रण हुआ है। जैन रामकथा में रावण एक श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण राज्यगुणविभूषित राजा था। वह बलवान, महान और अद्वितीय शासक था। विजय यात्रा के पश्चात रावण अतुल संपत्ति, कीर्ति एवं वैभव का स्वामी बन गया। अनेक विद्याधर उसके दास बने। तीन खण्ड के वे राजा बने। जिस देश में उसका शुभागमन हुआ वह देश स्वर्ग बना। वहाँ कभी अकाल नहीं पडा, वरन वहाँ पुण्य का वास हुआ। पूर्व जन्म के शुभ कार्यों के अनुसार सुख, कीर्ति, ऐश्वर्य भोगता हुआ वह पुरुषप्रवर बन गया है।

रावण की मृत्यु का कारण उसका सीता के प्रति अनुचित अनुराग था। मन्दोदरी के अतिरिक्त उसकी अनेक रानियाँ थीं। नलकुबेर की राजधानी में उसका आगमन हुआ। उपरंभा लडकपन से ही रावण के प्रति अनुराग रखती थी। उसने रावण को अपने रूप के जाल में फँसाना चाहा। पर वह न फँसा। सीता पर आसक्त होना उसकी दुर्बलता का द्योतक है। रावण की दुःखद घटना पाठकों के हृदय में दया का संचार करती है। जैन रामकथाकारों ने रावण को ही अपनी कथा का नायक बनाया है और रामचन्द्र की अपेक्षा रावण ही हमारी सहानुभूति का आकर्षण केन्द्र बनता है।

जैनेतर रामकथा में कुम्भकर्ण का चरित्र-चित्रण

कुम्भकर्ण एक ऐसा चरित्र है जिसकी आकृति बडी विशाल और महदाकार है। उसके शरीर का वर्णन वाल्मीकि की रामायण में इस प्रकार किया गया है --

"प्रहस्त के मारे जाने पर कुम्भकर्ण को जगाने के लिए आदेश दिया गया। वह राक्षस छः-सात-आठ या नौ मास तक सोता है। उसकी शय्या में पडा हुआ

उसका सर्वांग मेद और रुधिर की गन्ध से परिव्याप्त हैं। मृग, महिष, वराह आदि के मांस ढेरों से वहाँ संचित हो गये थे। खून और विविध प्रकार के मद्यों के कुम्भ यत्रतत्र बिखरे पडे थे।

उसे जगाने के लिए दस हजार राक्षसों ने एक साथ मृदंग, पवन, भेरी, शंख आदि वाद्यों का निनाद किया। फिर भी जब वह न जागा तब उसे जगाने के अन्य प्रयास किये गये। उन्होंने हाथी, ऊँट, गर्दभ आदि पशुओं पर बडे कठोर कशाघात किये। समस्त शक्ति लगाकर भेरी, शंख एवं मृदंग बजाए। मुद्गर तथा मुसलादि से उसके गात्रों पर कठोर प्रहार भी किये। एक हजार भेरियाँ एक साथ बजाई गयीं। उस भीषण शब्द से सारी लंका जाग उठी पर कुंभकर्ण निद्रावस्था से जागृत नहीं हुआ। तब उसके कानों में भेरियाँ बजाई गईं। उसके बाल खींचे गये। उसके कानों में सैंकडों घडे पानो उंडेला गया। फिर भी शाप के कारण कुंभकर्ण नहीं जग पाया। शक्तिसंपन्न हट्टे–कट्टे वीरों ने उसके सिर और छातीपर मुद्गरों के भीषण प्रहार किये। उसका शरीर रस्सियों से जकड दिया गया। उसके शरीरपर हजारों हाथी दौडाये गये। तब कही वह हिला। उसका मुख पातालसदृश विशाल था। वह उठा तो मेरु पर्वत का शिखर ही मानो हिल उठा हो ऐसा प्रतीत हुआ।

तब उसको वे विविध प्रकार के भक्ष्य दिखाई दिये। इसने वराह, भैंसे आदि का भक्षण किया। भूखे कुम्भकर्ण ने मांस भक्षण किया और तृषातृप्ति के लिए रुधिर प्राशन किया। मेद और मद्यों के घडे वह पी गया।"[८२]

कुम्भकर्ण का यह वर्णन राक्षसों के प्रति स्थित विद्वेष की भावना का द्योतक लगता है अथवा भीषण और बीभत्सतायुक्त अतिशयोक्तिपूर्ण किया गया वर्णन जान पडता है। इस प्रकार उसे भद्दा चित्रित किया है। डॉक्टर विद्या मिश्र का कथन है कि–

" रामायण के कुम्भकर्ण में महाबली तेजस्वी, युद्धकौशल में निष्णात रूप का चित्रण किया गया है। वह राजनीति विशारद है। पराक्रम में नारायण एवं इन्द्र के समान ही नहीं अपितु देवविजयी है। उसका बाह्य आकार अत्यन्त विशाल, भीषण एवं भयोत्पादक है। उसकी शरीरशक्ति के निदर्शक अनेक युद्धस्थल के प्रसंग हैं। वही एक महारथी है जिसने हनुमान, नील, अंगद, सुग्रीव, लक्ष्मण तथा राम सभी के साथ युद्ध कर अपनी अप्रतिम वीरता को प्रमाणित किया। दिग्विजयी रावण स्वयं उसकी वीरता के कारण उसका समादर करता था। वह भी अपने भाई रावण का हितचिन्तन, स्नेहभाव से करता था। इसी कारण अपने भाई रावण के दोषों की आलोचना भी उसने निर्भीक भाव से की। अन्ततोगत्वा प्रत्यावर्तन

---

८२. वा. रा. ४५।११ से ५५।

का कोई उपाय न देख उसने अपने पराक्रम का अनुपमेय परिचय दिया ।

श्रीराम की अपेक्षाकृत मानस में उसके पर्वताकार रूप, शौर्य, निदर्शनादि के अतिरिक्त उसका प्रच्छन्न रामभक्त रूप विशेष है जो कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक दर्शाता है ।[८३]

डॉक्टर रामरतन भटनागर ने इस विषय पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए बतलाया है कि–

"तुलसी के कुम्भकर्ण में हम उच्च कोटि की रामभक्ति पाते हैं । उसके राक्षस स्वभाव का प्रदर्शन दबाकर और उसमें दूरदर्शिता, कर्तव्यबुद्धि, आश्चर्यमय युद्ध-कौशल्य और निरपेक्ष, निस्सीम और नितान्त रामप्रेम आदि गुणों कि स्थापना करते हुए तुलसी ने एक अद्‌भुत चरित्र बना दिया है ।" [८४]

इससे यह प्रतीत होता है कि तुलसी का चरित्र चित्रण रामभक्ति को केन्द्रबिन्दु रखकर ही किया गया है जो न तो वास्तविक है न औचित्यपूर्ण ।

जैन रामकथा में कुंभकर्ण :

कुम्भकर्ण के जन्म से पूर्व उसकी माता ने शुभसूचक स्वप्न देखे जिसमें उसने दो सूर्यों को गोद में धारण किया था । इन दो सूर्यों के फलस्वरूप कुम्भकर्ण और विभीषण थे ।[८५] कुम्भकर्ण को जैन रामकथा "भानुकर्ण" कहती है । भानु के समान उज्ज्वल कर्णवाले । कुम्भकर्ण यह लोकचर्चित नाम भी उन्होंने ग्रहण किया । जैन रामकथा का राक्षसवंशियों के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है जैसा कि ईक्ष्वाकु वंशीयों के प्रति दिखाई देता है ।

रावण के साथ कुम्भकर्ण भी विद्यासाधना के लिए कठोर तपस्या करता है । भीषण संकटों में भी वह अपने व्रत पर अटल रहता है ।

हनुमान द्वारा जब राक्षस सेना समरांगण में तितर–बितर हो गई तब क्रुद्ध होकर भानुकर्ण समर में आया । कुम्भकर्ण ने सुग्रीव, भामण्डल, दधिमुख, महेन्द्र, कुमुद, अंगद आदि वीरों को युद्धभूमि में अपनी वीरता से हतप्रभ कर दिया । अंत में सुग्रीव के रथ को भी उसने चूर्ण कर डाला । पर सुग्रीव के विद्युत दण्डास्त्र से भानुकर्ण पृथ्वी पर गिर पडा । तब मेघवाहन आगे बढ़कर लडाई करने लगा ।

---

८३ वा. रा. एवं रा. च. मा. तुलनात्मक अ. पृ. ५२९–५३० , सन १९६३ ई.

८४ डॉ. रामरतन भटनागर — तुलसी साहित्य की भूमिका, पृ. ८३ ।

८५. उयरम्मि समल्लीणो, सीहो दढ कढिण के सरा रुणिओ ।
अन्ने विचन्दसूरा, उच्छंगे घारिया नवरं ।। प. च. वि. ७।७८

तबतक भानुकर्ण होश में आया। उसने हनुमान को गदा प्रहार से मूर्छित किया। हनुमान को भी उसने पाशबद्ध किया।

लडाई के अन्तिम दिन भी कुम्भकर्ण राम से युद्ध करने लगा। घनघोर लडाई के बाद राम ने कुम्भकर्ण को नागपाश में बद्ध कर लिया।

रावण वध के पश्चात राक्षसवंशमणि रावण के समान ही वह शूर, वीर, राजनीतिज्ञ तथा सुविचारी था। अन्त में उसने वैराग्यप्रवण होकर अपने जन्म को सफल करने के लिए मुनिव्रत धारण किया।

कुम्भकर्ण का चरित्र चित्रण अपने भ्राता एवं त्रिखण्ड पृथ्वीपति रावण के शतप्रतिशत अनुरूप है।

जैन और जैनेतर रामकथा में कुम्भकर्ण का चरित्र चित्रण देखकर हमें जैन रामकथा में निम्नलिखित विशेषताएँ प्रतीत होती हैं।

(१) कुम्भकर्ण का रूप एवं आचरण भयंकर या बीभत्स नहीं था किन्तु वह रावण के समान हट्टा कट्टा, शूर वीर था तथा, राजनीतिनिपुण था।

(२) उसे नरभक्षक एवं मांसाहारी के रूप में चित्रित नहीं किया है अपितु उसमें वैराग्यप्रवणता बताकर उसके प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया है।

जैनेतर रामकथा में विभीषण का चरित्र

वाल्मीकि रामायण के विभीषण का स्वरूप राजनीतिज्ञ का है। सत्य का पक्ष ग्रहण करने के लिए अपने पक्ष को छोडकर शत्रुपक्ष में वे जा मिले इसलिए "घर का भेदी लंका ढावे" यह कहावत प्रसिद्ध हुई और वे भेद करने वाले कुटिल राजनीतिज्ञ के रूप में बखाने गये।

योग्य सलाह या मशविरा देने में वे अपनी श्रेष्ठता प्रकट करते हैं। रावण को उन्होंने उचित मंत्रणा देने का प्रयास किया पर उसमें वे असफल हुए। अन्त में राम का पक्ष ग्रहण कर उन्हें भी उपयुक्त मन्त्रणा देने का योग्य कार्य उन्होंने किया। रावण से निर्भीकता के साथ उन्होंने कहा---

"महारथी धर्म प्रधान ईक्ष्वाकु वंशीय होने से भगवान राम के आगे सभी सुर मौन हो जाते हैं।"[८६]

उन्होंने रावण के घर का भेद राम को बताया। उसके सैन्य का भी पूर्ण परिचय दिया, गुप्तचरों द्वारा रावण के सैन्य संगठन का ज्ञान कराते रहना, रावण

८६. वा. रा. ६।१४

के यज्ञों का विध्वंस और अन्त में रावण के वध का उपाय बताना आदि के कारण विभीषण घरभेदी के रूप में बहुत बदनाम हुए हैं ।

तुलसीदासजी ने तो सन्तरूप प्रदान कर उनको उबार दिया है इस विषय में डॉ. विद्या मिश्रा का मन्तव्य है कि–

" रामायण में विर्भाषण का सामाजिक रूप भी उल्लिखित है। मानस में उनके भक्तरूप के आगे अन्य पक्षों का विलयन हो गया है । रामायण में उनके अनेक मानवीय सद्भावनाओं एवं कर्मशीलता का प्रदर्शन हुआ है । वे स्वयं वीर सैनिक बनकर अपने मित्र राम कि तनमन से सहायता करते हैं । राम सैन्य के विचलित देखकर समय समय पर आश्वासित कर प्रोत्साहित करते हैं । लक्ष्मण को शक्ति लगने पर मरणासन्न सेना को उन्होंने पुनर्जीवन प्राप्त कराया । स्वयं गदा धारण कर उत्साह का संचार किया । ब्रह्मास्त्र से पीडित समस्त वानर यूथों को ढाढस बंधवाया । वे समय पडने पर राम को भी जयसूचक आशीर्वाद देते हैं । तथा मानवोचित सहानुभूति दर्शाते हैं । "[८७]

रामायण में विभीषण की एक और विशेषता बता दी है और वह है उनकी अमरता ।

उनके धार्मिक निष्ठा से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें अमरता प्रदान की । [८८]

जैन रामकथा में विभीषण :

मातृप्रेम

जैन रामकथा में विभीषण के चरित्र की महानता को कहीं भी क्षति नहीं पहुँची है । जैन रामकथा की एक घटना ऐसी है कि जिससे उनपर लगे हुए घरभेदी का कलंक भी नष्ट हो जाता है । वह घटना इस प्रकार है ।

एक नैमित्तिक से विभीषण ने सुना कि, " दशरथ का पुत्र जनकपुत्री सीता के कारण रावण को युद्ध में मारेगा । ' न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी ' के अनुसार विभीषण ने दशरथ को मारने का संकल्प किया । संकल्प नारद के मुख से ज्ञात होते ही दशरथ देशांतर कर भाग गये । मन्त्रियों ने उनकी सुन्दर लेपमूर्ति बनवायी । विभी ण के सैनिक साकेत आये । उन्होंने उस मूर्ति का सिर काट लिया । लाल लाक्षारस से सनी हुई तलवार के कारण दशरथ का सिर कट गया है ऐसा मानकर विभीषण निश्चित हुए । "[८९]

---

८७. वा. रा. एवं रा. च. मा. तु. अ. पृ. ४९५ सन १९६३ ई.

८८. वा. रा. ७।१०।३५।

८९. प. च. वि. २३।१५ से २३

रावण की रक्षा के लिए इस प्रकार प्रयत्नशील विभीषण कुलद्रोह का नीच कर्म कैसे कर सकते थे ?

निर्भयता, न्यायप्रियता और सच्चाई के प्रति प्रेम ये विभीषण के चरित्र की विशेषताएँ हैं। युद्ध के लिए रावण को प्रस्तुत देखकर विभीषण उन्हें स्पष्ट बातें सुनाते हैं। जो दृष्टव्य हैं--

" हे प्रभो, इन्द्र के जैसी अपार संपत्ति आपके आश्रय में है और चन्द्रमा, शंख एवं कुन्दपुष्प के समान आपका धवल यश सारे त्रिभुवन में परिव्याप्त है। फिर हे स्वामी, एक स्त्री के लिए क्षणभर में आप अपने विनाश को न बुलाइए। सीता को वापस लौटाइए। ऐसा करने से कोई कुयश प्राप्त नहीं होगा बल्कि त्रिभुवन में आपका यश उज्ज्वल होगा।" [९०]

इस सत्य वचन को इन्द्रजित सह नहीं सका उसने विभीषण को फटकारा। तब विभीषण ने तुरन्त उत्तर दिया कि--" पुत्र रूप से पैदा होनेपर भी तुम रावण के वैरी हो। जब तक लक्ष्मण सोने की लंका को जीत नहीं लेते तब तक तुम सीता को लौटा दो। " [९१]

लंका में प्रवेश करनेपर हनुमान केवल विभीषण के घर जाते हैं। हनुमान रावण के शत्रु बनकर लंका आये हैं। फिर भी वे विभीषण से मिलना चाहते हैं। इससे विभीषण की न्यायप्रियता, सच्चाई आदि का विश्वास ही प्रतीत होता है।

हनुमान जब अपने आगमन का प्रयोजन बताते हैं तब विभीषण के ये वचन " मैंने रावण से पहले ही कहा था किन्तु वह सीता को लौटाना नहीं चाहता तबसे उसने मुझसे बात करना ही छोड दिया है। हे हनुमान, तुम्हारे कहने से मैं रावण को फिर एक बार समझाता हूं पर वह अभिमानी अपनी हठधर्मिता नहीं छोडेगा। "[९२]

विभीषण में हृदय की सरलता तथा सत्कार्य के प्रति आत्मीयता ये गुण हमें यहाँ दिखाई देते हैं।

बार बार सीता को लौटा देने के लिए कहने से विभीषण रावण के क्रोध का भाजन बना। रावण तलवार लेकर विभीषण पर झपटा। अन्त में उसे लंका से निर्वासन मिला।

---

९०. प. च. वि. ५५।४,५,६।

९१. प. च. वि. ५५।१९ से २४।

९२. प. च. वि. ५३।६ से ८

अधर्म के कारण प्रमत्त बने हुए अपने भाई रावण की दुराचरिता असह्य होने से वह अपनी सेना सहित सत्य का पक्ष लेकर राम से जा मिला।

राम रावण के अन्तिम युद्ध के समय भी उसने रावण को सचेत करने का प्रयत्न किया। उसने कहा, "हे भ्राता। यदि जीने की अब भी इच्छा हो तो सीता को लौटा दो।" किन्तु रावण ने उसकी उपेक्षा की।

रावण की मृत्यु हो जानेपर शोकसन्तप्त विभीषण का जो रूप हमें देखने मिलता है वह विभीषण के भ्रातृप्रेम की उत्कटता एवं गहराई को स्पष्ट कर देता है। उसने कटार से अपनी छाती भेदने का प्रयास करते हुए, "हा भ्रात। हा भ्रात।" इस प्रकार ऊंचे स्वर में विलाप किया।

कर्तव्य और प्रेम में उसने कर्तव्य के कंटकाकीर्ण रास्तेपर बढते हुए अपने हृदय की भावनाओं पर भी विजय प्राप्त की।

रामचन्द्रजी ने जब अयोध्या जाने का निश्चय किया तब विभीषण ने उन्हें कुछ अधिक समय अपने यहाँ ठहराकर अपने कारीगरों को अयोध्या भेजकर उसे रमणीय बनाने का प्रयास किया।

अपने उपकारी के प्रति उनमें कृतज्ञता ज्ञापन का भाव ही दिख पडता है। विभीषण राम की आज्ञा के कारण लंका का राज्य ग्रहण करते हैं। राज्यलालसा का अंशमात्र भी उनमें नहीं है।

विभीषण के प्रति राम का विश्वास बहुत ठोस था। इसलिए अपहृत सीता को विभीषण के आग्रह से राम ने ग्रहण किया।

इस प्रकार विभीषण जैन रामकथा में एक सज्जन, न्यायपरायण, सत्यप्रेमी, कर्तव्यदक्ष, त्यागी, कृतज्ञ एवं वीर पुरुष के रूप में चित्रित हैं। राज्य और परिवार को त्यागकर भी उन्होंने न्यायोचित पक्ष ग्रहण किया। सीता को लौटाने के प्रयास में उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

•

चन्द्रनखा

राम तथा रावण के चरित्र चित्रण में शूपर्णखा का स्वरूप प्रकट हुआ है फिर भी उसकी शेष विशेषताएं स्पष्ट करने के लिए संक्षेप में उसका चरित्र-चित्रण किया गया है।

जैनेतर रामकथा में शूर्पणखा :

रावण भगिनी का शूर्पणखा नाम वैदिक रामकथा का उसके विषय का दृष्टिकोण विकृत एवं तिरस्कृत है यह स्पष्ट करता है।

शूर्पणखा का जन्म कैकसी की कुक्षी से होता है। उसको विकृतानना कहा है।[९३]

इसकें बाद उसका परिचय तब आता है जब रावण का लंका में प्रवेश होता है। उसने देखा कि शूर्पणखा गिरी हुई है। रावण उसे सान्त्वना देते हुए जमीनपर गिरने का कारण पूछता है तब वह कहती है कि कालकेय कहे जाते १४००० वीरों को तुमने लडाई में मारा जिससे मैं विधवा बन बैठी हूँ। तुम्हारे ही कारण मुझे वैधव्य प्राप्त हुआ है। रावण ने उसे चिन्तामुक्त करने के लिए दंडकारण्य की रक्षा के लिए भेजे गये खर के साथ रखा।[९४]

इससे शूर्पणखा का चरित्र स्वच्छन्दी बनने का कारण प्रकट होता है। दण्डकारण्य में वह स्वच्छन्द से भ्रमण करती थी। एक बार उसने देवतातुल्य रामलक्ष्मण को देखा। तब वह माया से सुन्दरी बनकर राम के समीप गई। शूर्पणखा ने राम को अपना परिचय एक स्वच्छंद से विचरनेवाली सुन्दरी के रूप में दिया। इससे वह बडी कामांध और स्वच्छन्दी स्त्री दिखाई देती है। राम ने उसे लक्ष्मण की ओर भेजा और लक्ष्मण ने अपनी योग्यता को महत्त्व न देकर उसे फिर राम के पास भेजा। पर हँसी हँसी में उसकी कामान्धता को बढावा मिला और राम के संकेत से लक्ष्मण ने उसको विरूप किया। इससे विक्षुब्ध हो उसने खरदूषण और रावण को मनगढंत कहानी कहकर अपने स्त्री-चरित्र का यथार्थ प्रयोग किया और रावण के मन में सीता की अभिलाषा पैदा की।

जैन रामकथा में चन्द्रनखा का चरित्र-चित्रण :

जैन रामकथा में शूर्पणखा का चित्रण सामान्यत: जैनेतर रामकथा के समान होनेपर भी राक्षस स्त्री होने के नाते वैदिक रामकथा उसे जिस तरह दुष्ट एवं खल पात्र चित्रित करती है उसका यहाँ पूरा अभाव प्रतीत होता है। जैन-रामकथाकारों ने रावण के रूप-गुणों से युक्त उसकी भगिनी का नाम चन्द्रनखा रखकर उसके सौन्दर्य की ओर संकेत किया है। विकृतानना यह जैनेतर रामकथा का विशेषण यहाँ पूर्णतया विलुप्त हो गया है। वह भानुकर्ण की अनुजा और विभीषण की अग्रजा है।

राम लक्ष्मण से उसका संबन्ध कपटाचरण से नहीं आया है। खर दूषण कें साथ वह दण्डकारण्य में रानी के रूप में रहती थी।

सूर्यहास खड्ग की घटना में लक्ष्मण के हाथ से उसका पुत्र शम्बुक मारा गया था। वह तो वन में आयी थी शम्बुक की विद्यासिद्धि देखने। पर वहाँ उसे

९३. वा. रा. उत्तरकाण्ड ९।३४।

९४. वा. रा. उत्तरकाण्ड २४।२४ से ४२।

पुत्र का कटा हुआ सिर देखने मिला। इससे क्रुद्ध होकर वह अपने दुष्मनों का पता लगाने राम लक्ष्मण के पास पहुँची। राम और लक्ष्मण को देखकर वह कामातुर बनी। पर राम ने परस्त्री कहकर उसे विमुख किया। पुत्रवध होने पर भी वह कामांध बनी इसमें उसकी कामुक प्रवृत्ति स्पष्ट दीख पडती है। अपने पुत्र की मृत्यु से क्रुद्ध बनकर उसने अपने पुत्रवात्सल्य का परिचय दिया पर अपने मृतपुत्र के कारण शोकाकुल अवस्था में भी कामपिपासू बननेवाली चन्द्रनखा हमारे लिए तिरस्करणीय की अपेक्षा दया का पात्र ही अधिक बनती है।

राम रावण युद्ध या सीतापहरण की जड चन्द्रनखा ही है।

जैन रामकथा में शूर्पणखा का एक नया रूप :

गुणभद्र की कथा में चन्द्रनखा का नाम शूर्पणखा ही है। एक दिन नारद के द्वारा सीता के रूप का वर्णन सुनकर रावण ने शूर्पणखा को सीता को वश करने तथा उसके मनोभाव को जानने के लिए भेजा। सीता के पास वह वृद्धा स्त्री के रूप में गई। राम के रूप का वर्णन कर वह सीता के मनोभाव को जान पाई। वहाँ से लौटकर उसने रावण से कहा कि सीता का मन राम के चरणों में दृढ है और वह सीता को कभी नहीं पा सकेगा। रावण ने शूर्पणखा की भर्त्सना की।

शूर्पणखा यहाँ अपने चरित्र को ऊँचा उठाती है। कामान्धता का कलंक यहाँ विलुप्त हो जाता है।

मन्दोदरी का चरित्र चित्रण

मन्दोदरी– रावण की पट्ट महिषी के रूप में जैन एवं जैनेतर रामकथा में वर्णित है। रावण को सीता से विमुख करनेवाली अथवा अपने पतिस्नेह के कारण सीता रावण की पत्नी बनने के लिए समझानेवाली सन्नारी के रूप में मन्दोदरी चित्रित की गई है। पर जैन रामकथा में मन्दोदरी की पतिभक्ति का एक तीसरा रूप वर्णित है।

सीता का जन्म मन्दोदरी की कुक्षी से हुआ। निमित्तज्ञों ने वह रावणघातिनी होने का भविष्य बतलाया। जिससे अपना मातृत्व और वात्सल्य दोनों का नियमन कर अपने पति की कुशलता के लिए उसने उस बालिका को लंका से बाहर कहीं जमीन में गाडने की आज्ञा दी। फिर भी वात्सल्य उभरकर आया और उसने कहा कि वह सुरक्षित रहे इसका भी ख्याल रखना। उस पेटिका में वह राजपुत्री है इसका सूचन करनेवाले राजवस्त्र भी उसमें रखे गए।

मन्दोन्दरी का यह रूप केवल गुणभद्र की जैन रामकथा–उत्तरपुराण में मिलता है।

वानरवंशीय वाली का चरित्र-चित्रण

वाली का चरित्र चित्रण वैदिक रामकथा में कुछ विरोधाभाससा प्रतीत होता है ।

वाल्मीकि रामायण में– वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव ही राम के पहले वाली का परिचय देता है । वह कहता है–

" वाली मेरा ज्येष्ठ भ्राता है । पिता के पश्चात सर्व संमति से उसे किष्किंधा में सिंहासनाधिष्ठित किया गया । एक दिन "मायावी" नाम का एक असुर किष्किंधा के महाद्वार पर आया और उसने वाली को लडने के लिए ललकारा । उस असुर को मारने के लिए वाली निकला । मैं अपनी स्त्री के मना करने पर भी उसके साथ गया । असुर को एक दुर्ग के तृणाच्छन्न विवर में प्रवेश करते देख वाली ने मुझे विवर द्वारपर ठहराया और वह खुद अन्दर प्रविष्ट हुआ । एक साल तक मैंने अपने जेष्ठ भ्राता की राह देखी । एक दिन उसमें से खून बहता हुआ मुझे दिखाई पडा । तब भाई को मृत मानकर मैं लौटा और मैंने शासन की बाग डोर संभाल ली । पर एक दिन एकाएक वाली किष्किन्धा आ पहुँचा । मैंने विनीत बनकर मुकुट उसके चरणों में रख दिया । फिर भी वह प्रसन्न नहीं हुआ । वाली ने अपना वृत्तान्त कथन किया और कहा कि, " विवर द्वार पर मैं तुझे पुकारता रहा पर तू तो राज्यलोभाविष्ट हो यहाँ भाग आया । " इस प्रकार कहकर वाली ने एक वस्त्र के साथ मुझे पुरसे निकाल दिया । मेरी स्त्री को भी उसने मुझसे छीन लिया । "

वाली बल के बारेमें सुग्रीव स्वयं कहता है कि वाली बडा प्रज्ञावान है । इन्द्र के समान पराक्रमी है । वह समर्थ युद्ध विशारद है । [९५]

वाली का पुरुषार्थ और धीरज सुनकर फिर उसके बारे में सोचना ठीक है । पश्चिम से पूर्वतक और दक्षिण से उत्तर तक के प्रदेशों में वाली सूर्योदय के पहले ही पहुँच सकता था । [९६]

सुग्रीव को वाली बार बार पराजित करता है जिससे उसके बल का स्वरूप प्रकट हो जाता है । सुग्रीव वाली के प्रति प्रेम प्रकट करता है तथा उसके चरित्र को प्रशंसनीय बताता है । जब से सुग्रीव उस पर्वत की गुहा के मुखपर शिला रखकर भाग आया था उसी समय उनमें वैर की भावना ने जन्म लिया । अन्यथा वे एक दूसरे के प्रति प्रीति करते थे और आपस में आत्मीयता ही रखते थे ।

---

९५. वा. रा. किष्किन्धा काण्ड ११।२० से २२

९६. वा. रा. किष्किन्धा काण्ड ११।३। से ४

श्रीराम ने वाली को अपने बाण से मारा यह रामचरित्र पर बडा भारी कलंक-सा माना जाता है। यह भी वाली के सौहार्द की निशानी है।

रामचरित मानस में :

रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने वालीवध का समर्थन उसी प्रकार से किया है जैसे वाल्मीकि ने किया है। बाण लगने पर वाली ने पूछा --

" धर्म हेतु अवतरेहु गोसाई। मारेहु मोहि व्याध की नाई
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा। "

हे गोसाई। आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह मारा ? मैं बैरी और सुग्रीव आपका प्रिय है। हे नाथ, किस दोष के कारण आपने मुझे मारा ?

इसके जवाब में श्रीराम ने कहा --

" अनुज वधू भगिनी सुतनारी, सुनु सठ कन्यासम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्ट बिलोकई जोई। ताहि बवे कछु पाप न होई॥ "

" हे मूर्ख, सुन ! छोटे भाई की पत्नी, बहिन, पुत्रवधू और कन्या ये चारों समान हैं इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी दोष नहीं है। " [१७]

"राम बालि निजधाम पठावा। नगरलोक सब व्याकुल धावा
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥

वाली हत हुआ यह जानते ही तारा शोकाकुल बनी। [१८]

तुलसी ने लिखा है --

"तारा बिकल देखी रघुराया। दिन ग्यान हरि लीन्हि माया। "

राम ने वाली को मौत के घाट उतार दिया। नगर के लोक व्याकुल होकर दौडे। तारा नाना प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की संभाल नहीं है।

यहाँ वाली की मृत्यु से तारा शोकमग्न बनी है। नगरवासी व्याकूल हो गये हैं।

समीक्षा :

राम के चरित्र पर वालीवध यह घटना धब्बा लगानेवाली मानी जाती है। इसके कारणों में--

---

१७. रा. च. मा. ८।३,४ १८. रा. च. मा. १०।१,२।

१. वाली और सुग्रीव इन दोनों में वास्तव में वाली को ही महानता प्राप्त है। वाली की मृत्यु पर सारा नगर व्याकुल हो गया है।

२. जिसके लिए उसे मारा जाता है वह तारा भी तो उसी के लिए ऐसा विलाप करती है कि वह सुग्रीव की पत्नी ही प्रतीत नहीं होती।

३ राम के हृदय में भी अपनी कृति के प्रति विषाद निर्माण हुआ है जिससे वह वाली को वचन देता है कि अंगद को वह और सुग्रीव दोनों पुत्रवत प्यार करेंगे।

४. वाली को वृक्ष की ओट से मारा है।

५. दोनों का युद्ध चलता हो तब तीसरे के द्वारा इस प्रकार का बाण प्रहार अनीति और अधर्म ही था।

राम ने इसका समर्थन करने के लिए कहा है कि–

१. भरत का धर्मपरायण राज्य होने से इस प्रकार का अधर्म राम सह नहीं सकते।

२. छोटे भाई की पत्नी पुत्रवधू समान थी इसलिए दण्ड देना आवश्यक था। ये दोनों भी कारण अधर्म से वाली को मारने के लिए समुचित नहीं लगते।

जैन रामकथा में वाली का चित्रण :

जैन रामकथा में भी वाली को उसी प्रकार बलवान माना है जिस प्रकार वैदिक रामकथा में। वैदिक रामकथा की तरह जैन रामकथा में सुग्रीव पत्नी को जबरदस्ती छीन लेने जैसा नीच कार्य का दोष उसके मत्थे नहीं मढा गया।

वाली आदित्य राजा का इन्दमाली से जन्मा हुआ वीर्यसंपन्न पुत्र है। उसका रूप-सौन्दर्य अद्वितीय था। वह सम्यकधर्मी था और अपने आचरण से प्रशंसनीय बन गया था। उस समय उसके समान अन्य कोई भी बली न था। समुद्रवलयांकित जंबुद्वीप की वह रोज प्रदक्षिणा करता और उसमें स्थित सारे जिनचैत्यों की वंदना करने का उसका नियम था।

आदित्यरज ने वाली को राज्य दे सुग्रीव को युवराज्याभिषेक कर प्रव्रज्या स्वीकार की।

वाली की महानता रावण से सही नहीं गई और उसने दूत भेजकर अपनी अधिसत्ता स्वीकृत करने के लिए उसे प्रणाम करने को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी। साथ ही साथ उसकी भगिनी श्रीप्रभा की पत्नी के रूप में माँग की। वाली ने सन्देश भेजा कि "मेरा सिर जिनेन्द्र के सिवा किसी के चरणों में नहीं

झुकेगा। " यहाँ वाली ने याद दिलाई कि एक बार उसे बगल में दबाकर जम्बुद्वीप प्रदक्षिणा की थी।

रावण के चरित्र चित्रण में रावण वाली के सन्दर्भ में वाली के उदात्त गुणों का परिचय हम पूर्व ही कर आये हैं इसलिए उसकी पुनरावृत्ति यहाँ हम नहीं करेंगे। रावण की चुनौती का प्रसंग और अष्टापद पर्वत की घटना का प्रसंग वाली में पाये गये धैर्य, उदारता, संयमशीलता, क्षमाशीलता तथा वैराग्यप्रवणता आदि गुणों का परिचय हमें देते हैं।

यहाँ हमें वाली के दो रूप मिलते हैं। एक है बलवीर्यशाली योद्धा का रूप और दूसरा है धर्म से चलनेवाले और अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग रहनेवाला विरागी मुनि का रूप। वाली मुनि रागद्वेष से परे समभाव में लीन होकर केवलज्ञानी बने और अन्त में उनका निर्वाण हुआ।

जैन रामकथा में वाली का चरित्र बडा ही श्रेष्ठ और आदर्श मुनिश्रेष्ठ के रूप में निखरा है। वह निर्भय है। शक्ति एवं बल में उनकी जोड नहीं थी। रावण को बगल में दबाकर उन्होंने जम्बुद्वीप की प्रदक्षिणा की और रावण का गर्वहरण भी किया था। उन्हें राज्य का मोह नहीं था। धर्म को वे राज्य से अधिक मानते थे। इसी कारण राजपाट सुग्रीव को सौंपकर वे धर्मकार्य में मग्न रहकर आत्मविकास के कार्य में वे सदा तपस्यारत रहे। जैन मंदिरों तथा प्राणियों की रक्षा के लिए उसने अपने तपोबल का प्रयोग किया। रागद्वेष रहित अवस्था में रहने से वे शुद्ध एवं संपूर्ण ज्ञान अर्थात् कैवल्यज्ञान पाने में समर्थ हुए।

वाली का चरित्र सम्पूर्णतया वैदिक कथा से भिन्न है।

जहाँ सुग्रीव की पत्नी का सवाल आता है वहाँ जार सुग्रीव के रूप में साहसगति नायक विद्याधर था जो सुग्रीव पत्नी पर पूर्व से ही मोहित था। उसने विद्या के बल सुग्रीव का रूप धारण किया था। राम ने सुग्रीव की मदद की। राम के प्रभाव से वैताली विद्या झट से निकल भागी। जार सुग्रीव को अपने पूर्व रूप याने साहसगति विद्याधर के रूप में प्रकट होना पडा जिसको राम ने लडने के लिए ललकार कर मौत के घाट उतार दिया।

जैन रामकथा ने वाली का एक नया चरित्र प्रस्तुत किया है जिसने वाली वध से कलंकित होनेवाले रामचरित्र को बचा लिया है।

जैन रामकथा के अनुसार हनुमान का चरित्र-चित्रण

जैन रामकथा में हनुमान की वीरता, समयसूचकता और सेवाभाव प्रशंसनीय है। शौर्य, चातुर्य, बल, धैर्य, पाण्डित्य, नीतिनैपुण्य, प्रभावकता आदि गुणों

का उत्कर्ष हमें हनुमान में दिखलाई देता है।

जैनेतर रामायण के अनुसार जैन रामकथा हनुमान को आदर्श भक्त के रूप में प्रस्तुत नहीं करती। राम का अवतार के रूप में वर्णन नहीं है फिर उनका समर्पित भक्त का रूप कैसे पुष्ट हो सकेगा ? यही एक कारण है कि जिससे जैन रामायण में हनुमान के चारों ओर का दिव्य वलय हट गया है।

हनुमान की कथा जैन रामकथा में अतिविस्तृत है।

हनुमान पवनंजय तथा अंजना का पुत्र है। पवनंजय को ही शायद जैनेतर रामकथा में वात कहा हो जिससे हनुमान वातपुत्र कहा गया। हनुमान की माता अंजना एक राजकन्या थी। हनुमान का पिता होनेपर भी संयोगवश उसकी माता को कलंकिनी बतलाया गया। वन में भटकती हुई अंजना ने एक गुफा में हनुमान को जन्म दिया।

हनुमान विद्याधर थे इसलिए विमान में गमन करते थे। एक दिन वे विमान से नीचे गिरे। वैदिक कथा के अनुसार वे सूर्यबिंब निगलने उडे पर वज्र से आहत होकर वे पहाड पर गिरे। कथा को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए उसपर यह आवरण चढाया है।

हनुमान का विमान से गिरना अधिक स्वाभाविक है।

हनुमान की वीरता एवं बुद्धिमानी की प्रतीति तब होती है जब विपत्ति का मारा सुग्रीव उसकी शरण लेता है। हनुमान अपनी सेना के साथ सुग्रीव की मदद के लिए प्रस्थान करता है। दोनों सुग्रीवों का समान रूप देखकर उनको पहचानना जब उनको कठिन लगता है तब हनुमान वापस लौटते हैं।

हनुमान की वीरता का एवं पुरुषार्थ का दूसरा प्रमाण यह है कि वह रावण की बहन चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा से और सुग्रीव पुत्री कमला इन दोनों से विवाह करते हैं। इस प्रकार वे राक्षसकुल और वानरकुल इन दोनों से संबद्ध और समान प्रतिष्ठित हैं।

लक्ष्मण ने कोटिशिला उठाई जिससे उनके बल पर विश्वास होनेपर हनुमान ने राम का साथ दिया।

मातृभक्ति हनुमान के रगरग में समाई हुई प्रतीत होती है। माता के कष्ट से क्षुब्ध होकर उन्होंने महेन्द्रनगर पर आक्रमण किया था। वैदिक रामकथा हनुमान को ब्रह्मचारी व्रती बताती है पर जैन रामकथा में लंका सुन्दरी के पराक्रम से प्रसन्न होकर उन्होंने उसका स्वीकार किया और वहां एक रात व्यतीत की। सौन्दर्यसम्पन्न शौर्यशाली वीरों का शृंगाररस में निमग्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

लंकागमन हनुमान की वीरता को प्रमाणित करता है । वीर होने के साथ माथ वे कुशल राजनीतिज्ञ, दीर्घदर्शी और चतुर भी थे । लंका में उनका विभीषण से मिलना तथा उनके द्वारा सीता की मुक्तता का प्रयास करना उनके सफल राजनीतिज्ञ होने का प्रबल प्रमाण देते हैं । रावण की सेना को नष्ट भ्रष्ट करने की उनकी क्षमता प्रशंसनीय है । लंका में उद्यानों को तहसनहस करनेवाले हनुमान में आत्मविश्वास था अन्यथा दुष्मनों के बीच होते हुए इस प्रकार का पराक्रम वे किस प्रकार कर सकते थे ?

रावण के सैनिकों के द्वारा बद्ध किये जाने पर भी वे रावण के आगे घुटने नहीं टेकते । वे तो स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–" हे रावण, रत्नश्रवा आदि वीरों के कुल में पैदा होकर भी अनीतिमान एवं अधम पुत्र के रूप में तुमने कुल का विनाश किया है ।

इस प्रकार स्पष्टवादिता, निर्भयता और अन्याय के प्रति कडा रुख हनुमान की विशेषताएँ हैं । लडाई में बहादुरी बतलाकर वे राम के विश्वासपात्र बने । वैसे तो वे रावण के भी विश्वासपात्र थे । उन्होंने रावण को भी दिग्विजय में बडी मदद की थी । यह भी उनकी वीरता की निशानी है ।

अपनी चतुराई तथा समयसूचकता से ही वे सीता की खोज कर सके । मीता के साथ उन्होंने जिस प्रकार का वार्तालाप किया उससे उनका विवेक, बुद्धिमत्ता और संवादपटुता के दर्शन होते हैं ।

हनुमान के अनेक पत्नियाँ थीं । यह उनके सौन्दर्य एवं सत्तासंपन्न तथा प्रभु-सत्ता की दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं है । राम को अवतार माननेवाले एक सेवक भक्त के लिए अपनी स्त्रियों का उपभोग करना अनिष्ट एवं अनुचित है पर जैन रामकथा में हनुमान का वह स्वरूप ही बदल गया है ।

कर्णकुण्डलपुर में भोगों का उपभोग करने पर भी प्रतिबुद्ध वनकर हनुमान ने दीक्षा ग्रहण की । सातसो पचास राजा भी उनके साथ श्रमण बने । इसके पश्चात् हनुमान ने कर्म रूपी वन को ध्यानरूपी अग्नि से जलाकर कैवल्य ज्ञान एवं निर्मल परमात्मपद प्राप्त किया ।

वास्तव में हनुमान रामकथा का एक प्रमुख पात्र है किन्तु उसके सम्पूर्ण जीवन की विस्तृत कथा जैन रामकथा ही प्रस्तुत करती है । यह आश्चर्य की बात है कि उन्हें देवत्व प्रदान कर उनको अपनी श्रद्धांजली देनेवाली रामकथाओं में इस प्रकार के सम्पूर्ण चरित्र का अभाव ही दिखाई देता है ।

नारद का चरित्र-चित्रण

नारद आकाशगमन करनेवाले एक लब्धिसंपन्न योगी से लगते हैं । अजातशत्रु के रूप में उनका चारों ओर संचार था । जम्बुद्वीप को छोडकर पूर्व विदेह

आदि क्षेत्रों में भी वे भ्रमण कर जिन चैत्य और तत्रस्थित तीर्थंकरों की वंदना करते थे।

एक दिन वे शान्तिनाथ के मंदिर में ठहरे थे। वहाँ उन्होंने किसी निमित्तक से विभीषण द्वारा की गई प्रतिज्ञा सुनी कि–" वे दशरथ को जान से मारेंगे जिससे उनके पुत्र के द्वारा रावणवध की संभावना नहीं रहेगी। सम्यक् दृष्टि के प्रति उनकी प्रीति थी इसलिए उन्होंने वह बात दशरथ से कही और खतरे की पूर्व सूचना देकर उनकी जान बचाई। इस प्रसंग से नारद की बुद्धिमत्ता और परोपकारिता दीख पडती है।

नारद के स्वभाव में कौतुहल प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। जनकसुता सीता बडी सुन्दर है यह जानकर उनके मन में उसे देखने का कौतुहल एवं औत्सुक्य पैदा हुआ।

उनपर लोगों का पूरा विश्वास था जिससे उनका संचार सर्वत्र बिना किसी रोकटोक के होता था। एक दिन वे सीता के महल में पधारे। उनकी विचित्र वेष भूषा देख बालसीता भयभीत होकर चिल्लाई। राजपुरुषों ने उन्हें मुक्कों से पीटकर भगा दिया। अपमान से आहत नारद ने प्रतिशोध लेने का निश्चय किया और रथनुपुर पहुँचकर उन्होंने राजोद्यान के गृह में पटपर सीता का चित्र अंकित किया। वहाँ विद्याधर राजा अपने पालित पुत्र भामंडल के साथ आ पहुँचा। सीता का चित्र देखकर भामंडल मुग्ध होकर विरहातुर हुआ। दिन ब दिन वह क्षीण होता गया। चन्द्रगति ने उसके क्षीण काय होने का कारण पूछा: तब उसने अपनी विरहव्यथा बतायी। चन्द्रगति ने राजा जनक को वहाँपर विद्या के बल बुलाया और वज्रावर्त धनुष्य देकर कहा कि यदि राम उसे वश में करे तो सीता उसे प्रदान की जाय। अन्यथा उसका ब्याह भामंडल से हो।

इससे नारद की कलहप्रियता एवं अपमान से क्षुब्ध बनने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

तीसरे प्रसंग में नारद सीता पुत्र अनंगलवण और मदनांकुश को सीता के कष्टों का वृत्तान्त सुनाते हैं जिससे क्रुद्ध होकर वे दोनों राम से युद्ध करने गये। राम की अपने पुत्रों के साथ लडाई छिड गई। नारद के ही कथन से अन्त में उसकी समाप्ति हुई।

इस प्रकार नारद का चरित्र वैदिक नारद के समान है पर नारद के चरित्र की विशेषता बतानेवाला एक और प्रसंग त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में है जो इस प्रकार है–[९९]

---

९९. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र–हेमचन्द्र पृ. १९–२७, सन १९६१ ई.

क्षीर कदंबक आचार्य के तीन शिष्य थे – वसु, पर्वतक और नारद । एक दिन आकाशगमन करनेवाले दो चारणमुनि उनकी छत के ऊपर से जा रहे थे। उनका आपस में वार्तालाप हुआ कि इन तीन शिष्यों में से दो नरकगामी होंगे और एक स्वर्गगामी होगा । छत पर स्थित आचार्य ने वह बात सुनी और उन्होंने शिष्यों की परीक्षा का उपाय सोचा । एक दिन उन्हों ने तीनों शिष्यों को एक एक आटे का कुक्कुट दिया और कहा, कोई न देखे ऐसे स्थान पर उसको मारो । पर्वतक और वसु ने कुक्कुटवध किया । नारद कुक्कुट लेकर गुरु के पास आया और विज्ञप्ति की, " गुरुदेव मैं इसे नहीं मार सका । क्योंकि कोई देख न सके ऐसा कोई स्थान कहीं पर नहीं है । ज्ञानी सर्वत्र देखते हैं ।" इस कथा से नारद के स्वर्गगामित्व की योग्यता सिद्ध होती है । नारद की प्रज्ञा और जीवदया की प्रवृत्ति भी प्रकट होती है ।

राजपुर के मरुत राजा के यज्ञ में होनेवाली हिंसा नारद न देख सके । वे रावण से मिले और उन्होंने यज्ञीय पशुओं की रक्षा का प्रबन्ध किया । नारद धर्मरत कौतुहलप्रिय, चतुर एवं अहिंसा का समर्थक है ।

भामण्डल

भामण्डल जैन रामकथा का एक विशिष्ट पात्र है । राजा जनक का वह पुत्र एवं सीता का सहोदर है । बचपन में ही चन्द्रगति विद्याधर के द्वारा उसका अपहरण किया गया था । नारद के कारण सीता पर ही वह आसक्त हुआ था । उसका वृत्तान्त हम पूर्व ही कह आये हैं । अतः यहाँ उसकी हम पुनरावृत्ति नहीं करेंगे । सीता सहोदर होने पर भी उसकी अभिलाषा की । इससे भामण्डल पश्चात्तापदग्ध बना । आगे चलकर वह सेना के साथ राम का सहायक बना ।

सीता तथा राम ने दीक्षा ग्रहण की तब भामण्डल भी मुनि बना ।

भामण्डल के प्रसंग से जैनेतर रामकथा की परशुराम की घटना का परिहार हुआ । धनुष्य को वश करने की घटना जैन तथा जैनेतर दोनों रामकथा में संपन्न हुई ।

इस अध्याय में हमने जैन रामकथा के ईक्ष्वाकु, विद्याधर, राक्षस और वानरवंशीय महत्त्वपूर्ण पात्रों का चरित्र चित्रण जैनेतर रामकथा के पात्रों के साथ तुलना करते हुए प्रस्तुत किया है । इन पात्रों की विशेषताएँ बताई हैं और जैन रामकथा की दृष्टि से कहीं कहीं मूल्यांकन एवं समीक्षा भी प्रस्तुत की है । समूची जैन रामकथा के सारे पात्रों का चरित्र चित्रण करना हमारे लिए एक कठिण कार्य है इसलिए हमें संयम से काम लेना पडा है जो हमारे अनुशीलन के अन्तर्गत आनेवाली बात है फिर भी हमने जानबूझकर किसी महत्त्वपूर्ण पात्र की उपेक्षा नहीं की है ।

अध्याय ६

जैन रामायणीय संस्कृति का अपने युग पर और परवर्ती युग पर प्रभाव

अब हम जैन रामायणीय संस्कृति, उसका अपने युग पर और परवर्ती युग पर पडा हुआ प्रभाव स्पष्ट करेंगे।

सांस्कृतिक महत्ता

इस जैन रामायणीय संस्कृति की महत्ता सबसे अधिक तो इस बात से प्रकट है कि भारतीय संस्कृति के केंवल धार्मिक अंग को उसने प्रभावित नहीं किया है बल्कि भारतीय संस्कृति के विविध अंगों पर और भारतीय जनजीवन पर भी इसका अमिट प्रभाव दृढ हो गया है।

जैन संस्कृति और अहिंसा एक रूप है इस लिए अहिंसा का प्रचार ही जैन संस्कृति की विशेषता बताई जाती है किन्तु जैन संस्कृति ने अपने समय के ही नहीं पर सार्वकालिक रूप में जीवन विकास में बाधक विरोधी शक्तियों का भी विरोध किया है।

क्या यह ब्राह्मणविरोधी संस्कृति है ?

सामान्यतः यह कहा जाता है कि यह संस्कृति ब्राह्मण विरोधी है। वास्तव में जैन संस्कृति का प्रचार एवं संवर्धन जितना ब्राह्मण विद्वान जैनाचार्यों द्वारा हुआ है उतना शायद ही किसी अन्य से हुआ है।

तीर्थंकर क्षत्रिय होने पर भी केवल ज्ञानसंपन्न धर्मोपदेशक के रूप में कर्म से ब्राह्मण ही कहे जाएँगे। भगवान महावीर की वाणी उत्तराध्ययन सूत्र में ग्रथित है जिसमें एक पूरा अध्याय सच्चे ब्राह्मण के लक्षण को स्पष्ट करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस संस्कृति ने जिन मूल्यों का पुनर्निर्माण या प्रचलन किया है उसमें द्वेष, स्वार्थ या कीर्तिलालसा का संपूर्ण अभाव है। इस लिए यह ब्राह्मण विरोधी संस्कृति नहीं है। यहाँ तो केवल मानवमात्र ही नहीं पर जीवमात्र की

समानता द्वेषविरहित पृष्ठभूमी पर, जाति, पंथ या राजकीय मान्यता विरहित भावना से निगडित एवं सुसंपन्न है।

इसमें वर्णभेद की विषमता का विनाश है और मानवता की समानता के साक्षात्कार से जीवमात्र की सुरक्षा एवं विकास का मुक्तमार्ग सामने आया है। डॉ. देव ने लिखा है कि "यह विषमता सच्चे मानवीय मन की सद्भावना के साथ हटाने का महान सांस्कृतिक कार्य जैन धर्म द्वारा पुरस्कृत किया गया है।"[६८]

इसके साथ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि समता की यह भावना भौतिक साधनों के विभाजन के लिए नहीं थी किन्तु आध्यात्मिक विकास के द्वारा क्या उच्च क्या नीच, क्या स्त्री क्या पुरुष, सब जाति, वर्ण और स्तर के लिए खेलने की लोकतांत्रिक कार्यवाही थी।

इसमें जनता के श्रेय के लिए आवश्यक विचार, जनभाषा में ही बतलाये गये। इससे लोकभाषा को समृद्ध बनाने का महाकार्य भी संपन्न हुआ और विविध विधाओं की निर्मिति होकर प्राचीन भाषाएँ समर्थ, समृद्ध और आकर्षक भी बनी।

इस जनताभिमुख वाङ्मय के द्वारा समाज जीवन का जो विविधतापूण चित्रण प्राचीन जैन साहित्य में प्राप्त होता है वह भारतीय संस्कृति की अनमोल संस्कृति की देन है। यह साहित्य हम चार भागों में विभाजित करेंगे।

१. जैन आगम
२. आगमेतर संस्कृत वाङ्मय
३. आगमेतर प्राकृत वाङ्मय
४. प्रान्तीय भाषा में लिखित वाङ्मय

जैन आगम

जैन आगम परंपरा को विशुद्ध एवं अखण्डित रखने की अविरत परंपरा चली आई है। काल दोष से जब उसमें बाधा पहुँची तब उस परंपरा को अविच्छन्न रखने के लिए श्रमणों की परिषद मथुरा तथा वल्लभी में आयोजित कर उस परंपरा को अविछिन्न रूप में आजतक सुरक्षित रखा गया है।

आगमेतर वाङ्मय

इस वामङ्य में भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति, टीका, पुराण, नाटक, चम्पू, चरित्र, काव्य तथा प्रबन्धों का अन्तर्भाव है। इस विभाग में विषयों की अपूर्वता तथा अनोखी विविधता के दर्शन होते हैं। इन ग्रंथों की संस्कृत भाषा विद्वानोंपयोगी तथा सरल एवं सादी होनेपर भी रम्य है।

---

६८. डॉ. शा. भा. देव–जैन सम्प्रदाय आणि संस्कृति, पृ. ११ सन १९६३ ई.

प्राकृत वाङ्मय

देश के बहुजन की बोली भाषा में प्राचीन काल में जैन संस्कृति का जो वाङ्मय निबद्ध है शायद ही कोई अन्य वाङ्मय उस प्रकार का दावा कर सके।

प्रांतीय भाषा में लिखित वाङ्मय

उसी प्राकृत भाषा से निर्मित अनेक प्रांतीय भाषाओं में समृद्ध वाङ्मय की निर्मिति की गई है। मराठी भाषा का पहला शिलालेख जैन शिल्प से संप्राप्त होता है और गुजराथी, राजस्थानी भाषा भी तो जैनाचार्यों के वाङ्मय से समृद्ध है। कन्नड भाषा के आदि काव्य निर्माता भी तो जैनाचार्य ही थे। तमिल भाषा में भी समृद्ध जैन वाङ्मय है। इस प्रकार यह संस्कृति संपूर्ण भारतीय संस्कृति पर छा गई है।

शिलालेख, ताम्रपत्र, ताडपत्र

जैन शिलालेख, ताम्रपत्र तथा अन्य सामग्री द्वारा यह संस्कृति केवल जैन संस्कृति के ही नहीं अपितु भारतीय इतिहास की सामग्री पर भी अनोखा प्रकाश डालती है। यह किसी एक प्रांत या काल में परिव्याप्त नहीं है बल्कि तीसरी शताब्दि से लेकर २० वी शताब्दि तक के अनेक शिलालेख, भारत के सारे प्रांत में बिखरे हुए हैं।

डॉ० देव का कथन है – " मथुरा और कर्नाटक विभाग के शिलालेख संख्या, काल और कथन की दृष्टि से अतिमौलिक हैं। इ॰ स. पहले दूसरे कालखण्ड के शिलालेखों से यह निष्कर्ष मिलता है कि जैनधर्म के उपासकों में विविधस्तर के लोग सम्मिलित थे। उनमें खजांची हैं, गंर्धा हैं, धातुकाम करनेवाले हैं, पंचायत के सम्मानित सदस्य हैं, ग्रामरक्षक हैं, व्यपारी हैं, सुवर्णकार हैं, नर्तक हैं तथा गणिकाएँ भी हैं। इससे सब वर्णों का जैन धर्म में होना प्रमाणित होता है।

उन उपासकों में राजा, मंत्री, सेनापति, आदि सभी का अन्तर्भाव है। उनके नामों को देखकर हम उनकी वीरता से गौरव का अनुभव करते हैं। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि इस संस्कृति की अहिंसा ने न तो लोगों में कायरता पैदा की है न देश को गुलाम बनने में सहायता प्रदान की है।

ताम्रपत्रों के या शिलालेखों के साथ हम ताडपत्रों के उन पन्नों को नहीं भूल सकते जिनपर ग्रन्थों को हाथ से लिखकर अपनी परंपरा को इस संस्कृति ने अमरत्व प्रदान किया है।

कला और स्थापत्य

कला और स्थापत्य के विषय में जैन संस्कृति ने गत दो हजार सालों में अभूतपूर्व कार्य किया है जो भारत के गौरव और जनजीवन के दर्शन के अनोखे साधन हैं।

कलापूर्ण गुफाएँ तथा स्तूप

कलापूर्ण स्थापत्यों में पहला स्थान हम पहाडों में खोदी गयी गुफाओं को देंगे। आज की उपलब्ध जैन गुफाएँ वास्तव में जितनी होनी चाहिए थीं उसका केवल एक अंशमात्र हैं। स्तूपों की भी वही दशा है। आज बौद्ध तथा हिन्दू गुफाएँ अधिक संख्या में उपलब्ध हैं किन्तु जैन गुफाएँ कमसंख्य दीख पाते हैं। उनमें यत्रतत्र बिखरी हुई ही पाते हैं।

मन्दिर

जैन मन्दिरों का निर्माण अतिप्राचीन काल से होता आ रहा है। शायद यह कथन कोई अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि भारतीय संस्कृति में मंदिरनिर्मिति शायद जैन संस्कृति की ही देन हो भारतभर में फैले हुए जैन मंदिर तथा उनके खंडहर आज भी इसी बात की साक्ष देते हैं।

जैन शिल्प की दृष्टि से देखा जाय तो बद्री, जगन्नाथपुरी, द्वारिका तथा हृषिकेश के मंदिर जैन मंदिर ही कहे जाएँगे। प्रचलित दंतकथाओं के अनुसार इन मंदिरों को पुराने समय में जैन मंदिरों के रूप में ही देखा जाता था।

इन मंदिरों के लिए तो हम कहेंगे कि जैन शास्त्रों के अनुसार स्वर्गलोक में भी जिन मंदिर तथा जिनमूर्ति की स्थापना की गई है ऐसा बतलाया जाता है।

जिनमूर्ति

जिनमूर्ति का स्वरूप सर्वत्र एक-सा है। उनके मुखपर करुणा की आभा चमकती है और उनकी आँखों में प्रशमभाव दिखाई देता है। प्रभावी मूर्ति की संख्या बहुत बडी है। गोमटेश्वर की ६५ फीट ऊँची मूर्ति दुनिया का एक आश्चर्य है।

इन जिनमूर्तियों के साथ जो देव, देवी, यक्ष, यक्षिणी की मूर्तियाँ हैं उनमें से ही शायद वैदिक देव देवियों की सृष्टि हो गई हो।

गोमटेश्वर की मूर्ति की विशालता मानव को अपनी क्षुद्रता की याद देती है। उनका प्रशमरस निमग्न मुख मानव को अद्‌भुत मानसिक शांति देता है।

इस प्रकार जैन मंदिर एवं मूर्ति कला ने इस देश में अनेक चित्रकार, मूर्तिकार तथा शिल्पकारों को जो सहयोग प्रदान किया है वह कला एवं शिल्प के इतिहास में बेजोड है। आबू के मंदिरों की खुदाई और राणकपूर के मंदिर की रचना संसार में सचमुच ही अद्‌भुत एवं आश्चर्यरूप है।

हस्तलिखित लेखनकला एवं चित्रकला

गुजरात में यह कला अति समृद्ध बनी है। उन चित्रों में अतिसूक्ष्मातिसूक्ष्म

भावों का चित्रण करने में उन कलाकारों ने जो सफलता प्राप्त की है वह इस क्षेत्र में अपूर्व है ।

इस प्रकार जैन संस्कृति के आश्रय से विविध कलाएँ, शिल्प, स्थापत्य आदि का निर्माण, विकास, संवर्धन होकर उसकी समृद्धि में वृद्धि हुई है । जैन रामकथाओं में ये सारी बातें स्पष्ट हुई हैं ।

मराठी समाचार पत्र " सकाळ " का लेख इस बात की पुष्टि करता है--

" म्हैसूर और कर्नाटक कन्नड प्रदेश है । वहाँ का प्रचलित धर्म लिंगायत है फिर वहाँ जैन धर्म का संशोधन किस लिए ? ऐसी शंका उत्पन्न होना अनिवार्य है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि बसवेश्वर के उदय से प्रचलित शैवधर्म के पूर्व म्हैसूर और कर्नाटक प्रान्तों में जैन धर्म का बडा भारी प्रभाव था ।

जैन धर्म के उपवास, आचार, व्रतनियम और गृहस्थ का दिनक्रम आदि बडी सूक्ष्म एवं दीर्घ विचारणा के बाद आयोजित हुए हैं । मानव का मानसिक विकास होने के लिए मन और आचरण का बडा चिन्तनीय संयोग किया गया है । मानसशास्त्र के अनुसार अब इनका अध्ययन जरुरी हो गया है । इस प्रकार के मानसशास्त्रीय अनुसंधान से आन्तरराष्ट्रीय ज्ञान के क्षेत्र में मौलिक और तप्त मनोवृत्ति को शान्ति की ओर मोडने का महान कार्य संपन्न होगा ।

नये ढंग से जैन धर्म और उसके तत्त्वज्ञान के अध्ययन अध्यापन की कोई महत्त्वपूर्ण योजना की निर्मिति में सहयोग प्राप्त हो यही अभ्यर्थना है । "[६९]

जैन रामकथा का राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक महत्त्व

राष्ट्र की भावना की परिपुष्टता क्या इस जैन रामकथा के पठन पाठन, प्रचलन और विवर्धन में परिपुष्ट हो सकेगी ?

---

६९. " सकाळ " में अग्रलेख ता. ११।५।६९

" म्हैसूर व कर्नाटक म्हटले की कानडी मुलूख, तेथे धर्म लिंगायत. अशा स्थितीत जैन धर्माचे संशोधन तिकडे आले कोठून ? परंतु ध्यानात ठेवले पाहिजे की श्री बसवेश्वराचा उदय होऊन शैवपंथी लिंगायत धर्माचा प्रसार झाला त्यापूर्वी म्हैसूर व कर्नाटक प्रान्तात जैन धर्माचा भारी प्रभाव होता. जैन धर्माने उपासतापास, आचार, व्रतवैकल्ये आणि माणसाचा दिनक्रम याचा खोल बारकाव्याने विचार केला असून त्या सर्वांचा उद्देश मनुष्याची मानसिक उन्नति आणि त्या उन्नतीसाठी मन व आचार यांचा सांधा त्यात जोडला आहे. मानसशास्त्राच्या दृष्टीने याचा सखोल अभ्यास करण्याची वेळ आलेली असून मनाच्या वरच्या पातळीत पोहोचण्याची विद्या म्हणजे मानस शास्त्र दृष्टया ग्रंथाचे केलेले संशोधन आंतरराष्ट्रीय ज्ञानक्षेत्रात अमोल व आजच्या तप्त मनोवृत्तीला शांततेच्या मार्गाने नेणारे होईल. नव्या पद्धतीने जैनधर्म व तत्त्वज्ञानाच्या अध्ययन–अध्यापनाची एक चांगली योजना पुढे आणण्यास मदत करावी अशी आमची विनंती आहे. "

— दैनिक सकाळ ११ मई, १९६९ ।

इस प्रश्न को सुलझाने के लिए हमें आज राष्ट्र की आवश्यकता एवं माँग क्या है इसपर विचार करना होगा । आज राष्ट्रीयता छिन्नभिन्न होने जा रही है। दक्षिण के विरोध में उत्तर, एकभाषा के विरोध में दूसरी भाषा, ऊँच और नीच की विषमता आदि प्रमुख समस्याएँ हैं ।

इन समस्याओं पर उपयुक्त प्रकाश डालने तथा उनको हल करने की क्षमता इन जैन रामकथाओं में निश्चित रूपेण है ऐसा हम कह सकते हैं।

रावण विरुद्ध राम

जैनेतर रामकथा में खलनायक के रूप में दिग्दर्शित रावण वास्तव में दक्षिण का वीर पुरुष भी है । दक्षिण की सारी अनार्य मानी गयी प्रजा का वह प्रतिनिधि-सा माना जाता है । राम आर्य संस्कृति का प्रतीक है और राम की रावणपर की विजय आर्यों की अनार्यों पर की विजय के रूप में प्रकट की जाती है।

जैनेतर रामकथा में कहीं कही रावण को महान भक्त के रूप में चित्रित किया गया है पर वह तो कहीं से प्रक्षिप्त के स्वरूप में ही आया हुआ प्रतीत होता है। दशहरे के दिन मनायी जानेवाली रामलीला और रावण, कुम्भकर्ण आदि के पुतलों का दहन वास्तव में रावण की गरिमा की मान्यता के ऊपर पानी फेर देता है।

राम और रावण के वंश का परस्पर संबंध

जैन रामकथा राम, रावण, (राक्षस) विद्याधर, वानर आदि सारे वंशों का स्रोत एक ही बताती है । उनकी संस्कृति भिन्न नहीं है । इससे राम रावण का युद्ध एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति पर किया गया आक्रमण नहीं है । यह भी इससे स्पष्ट होगा कि राम रावण का संघर्ष, दो संस्कृतियों का या दक्षिण का उत्तर के साथ का संघर्ष नहीं है । वह केवल दो व्यक्तियों का संघर्ष है और वह भी एक ऐसे तात्कालिक कारण से उद्भूत हुआ है कि जो बारबार हुआ ही करता है । संसार में युग युग में वह होता ही चला आया है । इस प्रकार का विचार हममें संकीर्णता का उपशम करने में सहायक बनेगा और देश की एकता को छिन्न भिन्न होने से बचायेगा ।

आर्य और अनार्य का भ्रम

आर्यकुल और अनार्य कुल चाहे भाषा, धर्म एवं संस्कृति से परस्पर भिन्न भले ही रहे हों किन्तु उसमें ऊँच–नीच का कोई भेद नहीं है । आज की हमारी संस्कृति तथाकथित आगत आर्यों के द्वारा आयी हुई संस्कृति नहीं है वह तो आगत आर्यों और यहाँ स्थित अनार्यों की संस्कृति के मेल से बनी और विकसित संस्कृति है यह बात भी स्पष्ट हो जायगी ।

इसमें एक महत्त्वपूर्ण बातयह है कि आज हम जिनके लिए आर्य और अनार्य शब्दप्रयोग करते हैं वे जैन रामकथा की दृष्टि से भ्रामक हैं। भारत वर्ष के साढे पच्चीस देश को वह आर्यावर्त कहती है। उसमें निवास करनेवाले सब आर्य ही हैं। केवल भौगोलिक विभिन्नता के कारण आचार, विचार, परंपरा आदि की भिन्नता हो सकती है परन्तु यह भिन्नता परस्पर मारक या विरोधी नहीं अपितु उसकी विविधता में से भी एकता की निर्मिति संभाव्य है।

इस प्रकार यह जैन राम कथा संकीर्ण प्रांतीय या साम्प्रदायिक भावनाओं के पोषण से दूर रही है जब कि वैदिक कालीन विचारप्रणालो समय के अनुरूप नहीं रही। इससे उसके स्थान पर आयी हुई उपनिषदकालीन वैचारिक परम्परा जैन रामकथा की विचार प्रणाली से प्रभावित सी लगती है।

वाल्मीकि रामकथा दो बातों पर बल देती है। १) ब्राह्मणों का अन्य तीन वर्णों पर प्रभुत्व, जिसमें तीनों वर्ण ब्राह्मणों के सेवक या आज्ञांकित होने की भावना भी सम्मिलित है। २) ब्राह्मणों द्वारा कथित धर्म और बतायी गई धर्म क्रिया का रक्षण एवं परिवर्धन। इसका दृश्य परिणाम यह हुआ कि वे बातें युग-बाह्य बनने पर भी पुरोहित वर्ग के द्वारा समाज पर जबरदस्ती से थोपी जाने लगी। इस विषय में डॉ. देव ने लिखा है,

"वैचारिक परिवर्तन तत्कालीन पुरोहित वर्ग और सामाजिक प्रतिष्ठा से विपरीत होने पर भी, उस समाज का समाज के वैचारिक दैनंदिन जीवन पर ऐसा दृढ दबाव था कि जिससे वैचारिक क्रांति का परिस्फोट न हो सका। अन्य समाज वैचारिक क्रांति से अनभिज्ञ ही रहे इसलिए उन्हें एक यांत्रिक क्रियाकाण्ड में बद्ध कर दिया गया। विविध प्रकार के यज्ञ, तरह तरह के मंत्र तंत्र और हिंसक क्रिया काण्ड आदि के कारण विचारधारा को स्वतंत्र बनने से रोका गया है"[७०]

यहाँ हमें आज की ताना शाही का दर्शन होता है जिसके इशारे पर सारे देश के लोगों का जीवन और वित्त निर्भर रहता है उसी ढंग से आम जनता की आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का काम पुरोहित वर्ग ने अपने जिम्मे ले लिया था और अपनी चिंतन प्रणाली समस्त देश पर जबरदस्ती से लाद दी थी। इसके कारण बढी हुई विषमता केवल एक पीढी तक ही सीमित नहीं रह सकी। उसने तो सदियों तक उन बन्धनों में समाज के एक अंश को जकड रखा जिससे पिछडा हुआ समाज का घृणित रूप हमारे सामने दृढ हो गया, जिसे बीसवी सदी का विज्ञान युग भी उन बंधनों से मुक्त करने में असमर्थ एवं असफल रहा है। आज भी तो साम्यवाद के नाम पर स्टालिन, लेनिन या माओ की ताना-

---

७०. डॉ. देव, जैन संप्रदाय और संस्कृति पृ. ९, सन १९६३ ई.

शाही अपनी विचार प्रणाली अत्याचार के द्वारा लोगों पर थोपने की भरसक कोशिश कर रही है। विचारों की यह जबरदस्ती व्यक्ति के चिंतन स्वतंत्रता का गला घोट रही है। इस अवसर पर इस संस्कृति की आचार-विचार उच्चार स्वातंत्र्य की घोषणा अत्यावश्यक है जो इस संस्कृति के स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद के अन्तर्गत अभिप्रेत है।

धर्मनिरपेक्षता की भावना

धर्मनिरपेक्षता की भावना तभी पनप सकती है जब धर्म की सही परिभाषा की जाय। धर्म सहिष्णुता एवं समन्वय का भाव जिन्दा रहना अत्यावश्यक है अन्यथा धर्मनिरपेक्षता की दुहाई देते देते ही कोई धर्म दूसरे पर हावी होने का प्रयास किये बिना नहीं रहेगा।

धर्म की जैन परिभाषाएँ

धर्म वास्तव में एक है, अखण्ड है, कल्याणमय एवं मंगलमय भी है। जैन रामायणीय संस्कृति धर्म की परिभाषा इस प्रकार करती है --

"दुर्गतिप्रपत् प्राणीधारणाद्धर्म उच्यते।"

दुर्गति में पडनेवाले प्राणियों को बचानेवाले होने से उसे धर्म कहते हैं। सर्वज्ञों ने उसे दस प्रकार का बतलाया है -- १) क्षमा २) मृदुता ३) सरलता ४) वाणी एवं आचरण की एकता ५) सत्य ६) संयम ७) तप ८) त्याग ९) ममत्व-त्याग १०) ब्रह्मचर्य।

धर्म का यह स्वरूप ऐसा है जिसमें से मानव में मनुष्यत्व खिलता है। इसमें सत्य तथा न्याय की भी उपलब्धी है और मनुष्य में विद्यमान देवत्व की भी अभिव्यक्ति होती है। जैन रामायणीय संस्कृति धर्म की एक दूसरी बडी ही लाक्षणिक परिभाषा करती है --- "वत्थुसहावो धम्मो" वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं। पानी का धर्म शीतलता है। पानी का गरम होना उसकी विकृति है किन्तु गरम पानी भी अगर अग्नि पर पडे तो वह वुझ जाती है। इससे पानी का असली स्वभाव प्रकट होता है। इसी प्रकार हमारा स्व-भाव क्या है इसे सोचना, और स्वभाव में रत हो जाना ही तो मानवता है। शरीर क्षणिक है फिर भी उसमें स्थित चेतनतत्त्व अमर है, शाश्वत है। वही तो जीव का असली तत्त्व है, स्वभाव है उसमें तादात्म्य पाने पर आज राष्ट्र को जीर्णशीर्ण करनेवाली क्षुद्रता का अंश भी हम देख नहीं पाएँगे। राष्ट्र की एकता, आत्मीयता या महानता और संस्कृति के जड को काटनेवाली विकृति धर्म के नामपर पैदा होनेवाले जोश के कारण होती है। स्व-भाव के कारण नहीं। धर्म समाज धारणा के लिए होता

है फिर भी प्रस्थापक एवं प्ररूपक के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार होता है इसलिए कोई धर्म समाज की एकता के लिए, कोई भौतिक साधना के लिए तो कोई आध्यात्मिक साधना के लिए होता है। इन सब का उद्देश्य समाज के उपकार के लिए है इसे मानकर उस धर्म की अच्छाई का रूप समझना और उस अच्छाई के अंश का समर्थन करना ही आज की मुख्य आवश्यकता है। इसे हम सर्वधर्म के प्रति सहिष्णुता की भावना कहते हैं। राष्ट्रीयता में इसका बड़ा महत्त्व है। वैदिक धर्म जब अद्वैतवाद की स्थापना करता है तो उसमें हमें प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता के दर्शन होने चाहिए और यदि द्वैतवाद की स्थापना होती है तो आत्मा और शरीर का भेद समझकर भौतिकवाद के पीछे पागल बन आत्मवाद को गौणत्व न प्राप्त हो सके इसकी चिंता करते हुए उसके प्रति जागरूक बनना आवश्यक है। जब हम जगत् को एक अलग हस्ती के रूप में देखते हैं तब उसको सुखी और समृद्ध बनाने की जिम्मेदारी भी उसमें से निकलती है।

बुद्ध जब क्षणिकवाद और दुःखवाद का स्वरूप समझाते हैं तो मानव को आसक्ति से बचाने का वह भरसक प्रयास स्थापित कर वास्तविक शाश्वतता के प्रति प्रयत्नशील होने का संकेत हमें देते हैं। दुःख ही संसार में सत्य रहा है यह कहने का उद्देश्य मानव को दुखी बनाने का नहीं अपितु उसे इस दुखवाद से ऊपर उठा कर सुख प्राप्त करने का है।

इस प्रकार विविध दर्शनों द्वारा समाज की धारणा के प्रयास राष्ट्रीयता का अभिन्न अंग है। किन्तु हम देखते हैं कि धर्म अब वैयक्तिक स्वार्थ के आखाडे बनने लग गये हैं। स्वार्थ साधना और राष्ट्रपुरुष के अंग को छिन्न विच्छिन्न करने में उसकी पूरी शक्ति लगी हुई है। तब यह जैन रामायणीय संस्कृति अपने स्याद्वाद के रहस्य से हमें समन्वय की राह बताती है।

कवि आनंदघन ने कहा है -- " सागरमाँ सघळी तटिनी छे तटिनी मां सागर भजना रे। षड्दरिषण जिन अंग भणिजे।"[७१]

जैन दर्शन के अंग षड्दर्शनों को समझना चाहिए जिस प्रकार समुद्र में सारी नदियाँ समाई हुई हैं किन्तु नदियों में समुद्र का समाना संशयास्पद हो सकता है इसी प्रकार षड्दर्शन एकांतवाद के समर्थन में ही संपूर्णता मानते हैं। परस्पर से अलग हटकर भी वे अपने में पूर्णता का अनुभव करते हैं। तब उनकी यह मान्यता दियों में सागर को मानने जैसी भ्रान्त है। जिन दर्शन एकांतता को छोड अनेकान्त को मानता है इस लिए इसमें अन्य सारे दर्शन सम्मिलित हैं। उनकी मान्यता एक विशिष्ट दृष्टिकोण से सच है न कि संपूर्णता से। राष्ट्रीयता के दृष्टि से जैन

---

७१. आनंदघन – पद संग्रह – बुद्धिसागर सूरि – प्रस्तावना, १९२५

संस्कृति की यह समृद्ध देन है जिसे बिना माने हम राष्ट्रीयता को न अपना सकते हैं न उसे समृद्ध बना सकते हैं ।

इस प्रकार धर्म का स्वरूप समझने पर उसके आचरण के नियमों द्वारा केवल राष्ट्रीयता की एवं सामाजिकता की भावना स्वयमेव प्रकट होगी । यही भावना इस संस्कृति में अणुव्रत के नाम से प्रचलित रही है । आज आचार्य तुलसी तथा अन्य मुनिगण इस भावना के प्रचार में व्यस्त हैं । इस अणुव्रत को प्रान्त, भाषा, सम्प्रदाय या अन्य कोई भी बाधा नहीं पहुँचा सके हैं ।

राष्ट्रीयता के विकास में पोषक ये अणुव्रत इस प्रकार हैं ।

पाँच अणुव्रत

१. स्थूल अहिंसा का आचरण

अहिंसा में सामाजिकता की भावना है । सब प्राणी सुख चाहते हैं । हमें जिसप्रकार दुख से भय है वैसा ही भय अन्य प्राणियों को भी है । इसलिए वह अपना सुख अन्यों के दुख से नहीं प्राप्त करता । शोषणहीन समाज की रचना की यही नींव है । शारीरिक अहिंसा के साथ वाचिक एवं मानसिक हिंसक भाव से बचने का भी इसमें प्रयास है ।

२. स्थूल सत्य का आचरण

कन्या, गौ, भूमि, संपत्ति और लेख-गवाही आदि में असत्य का प्रयोग करना निषिद्ध समझा जाय ।

३. स्थूल अचौर्य का आचरण

चोरी ही तो आज के राष्ट्रीय जीवन को खतरा पहुँचानेवाली वस्तु है । इस अणुव्रत में चोरी की चीज न ले, चोर को प्रेरणा या मदद न करे । वस्तु में मिलावट न करे, झूठे तोलमाप न करे और राज्यविरुद्ध आचरण न करे । इसमें व्यापार शुद्धि के तत्त्व हैं ।

४. स्थूल ब्रह्मचर्य का आचरण

स्वस्त्री में संतोष रखे और परस्त्री माता समान माने इस नियमन से स्वैच्छिक ब्रह्मचर्य की भावना बढती है ।

५. स्थूल परिग्रह का आचरण

धनादि की लालसावृद्धि परिग्रह है । धन ही नहीं पर अपनी आवश्यक समग्र वस्तुओं का आवश्यक परिमाण नियत करें । नियम से अधिक प्राप्त धन तथा वस्तुओं का सद्व्यय करे ।

इस संस्कृति ने अपनी धर्मक्रियाओं में भी इन तत्त्वों को गूंथा है ।

(१) दैनिक प्रतिक्रमण (२) वार्षिक क्षमापना ये दो इस संस्कृति की खास क्रियाएँ हैं।

१. **प्रतिक्रमण**–पाप मार्ग में बढते जीव को उससे विमुख होने की भावना प्रतिक्रमण है। हर शाम को वह दिन भर के सारे कार्यों का अवलोकन कर उपादेय कार्य की अनुमोदना और हेय कार्य के लिए अपनी भर्त्सना करता है। इसलिए वह वीतराग की वंदना करता है।

२. **वार्षिक क्षमापना**–इसमें वह पूरे वर्ष के कार्य का अवलोकन करता है। उसने मानसिक, वाचिक या कायिक पीडा जिसे पहुँचाई हो या अवाँछनीय भाव अपने चित्त में लाये हो तो उसके लिए पश्चात्तापदग्ध हृदय से वह क्षमा की प्रार्थना करता है और अपने बारे में किसी ने इस प्रकार का आचरण किया हो तो उसे माफ कर वह आत्मा को शुद्ध करता है।

इसी प्रकार की शुद्ध भावना की दृढता के लिए तथा इन्द्रियनिग्रह से मलिन भावों को दग्ध करने के लिए वह तप करता है।

इस प्रकार जैन रामायणीय संस्कृति के ज्ञान, ध्यान, दर्शन, पूजा, व्रतग्रहण आदि सारे कार्य अपनी आत्मशुद्धि के हेतु से किये जाते हैं। वह किसी वस्तु की प्राप्ति या अन्य भौतिक मोह के लिए नहीं है।

जैन रामायणीय संस्कृति की यह झलक राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक विकास के लिए उसकी उपयुक्तता प्राप्त करेगी।

जैन संस्कृति में पाँच समिति और तीन गुप्तिको अष्ट प्रवचन माता कहते हैं। समिति याने विवेक युक्त प्रवृत्ति है। इसके पाँच भेद इस प्रकार हैं –

पाँच समिति–

१. इर्यासमिति – किसी भी जन्तु को क्लेश न हो इस प्रकार सावधानीपूर्वक चलना इर्या समिति है।

२. भाषासमिति – सत्य, हितकारी, परिमित और सन्देहरहित वचन बोलना भाषा समिति है।

३. एषणासमिति – जीवनयात्रा में आवश्यक हो ऐसे निर्दोष साधनों को जुटाने के लिए सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना एषणा समिति है।

४. आदाननिक्षेप समिति– वस्तुओं को भली भाँति देखकर एवं प्रमार्जित कर उन्हें लेना या रखना। आदाननिक्षेप समिति है।

५. उत्सर्ग समिति – जहाँ जीवजंतु न हों ऐसे प्रदेश में अनुपयोगी वस्तुओं को डालना उत्सर्ग समिति है।

इन पाँच समितियों के पालन से जीवन के विविध दोषों का परिहार होकर शरीर तन्दुरुस्त, वाणी मीठी और मन स्वस्थ रहता है।

तीन गुप्ति

१. मनगुप्ति -- दुष्ट संकल्प या संमिश्र संकल्प का त्याग कर मनको अच्छे संकल्प में लगाना मनोगुप्ति कहलाती है।

२. वचनगुप्ति -- बोलने के प्रत्येक प्रसंग पर वचन का नियमन कर वाणी को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करना वचन गुप्ति है।

३. कायगुप्ति -- शारीरिक व्यापार को अपमार्ग से निवृत्त कर सन्मार्ग में जोडना काय गुप्ति कहलाती है।

इस प्रकार यह रामायणीय संस्कृति राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

उपसंहार

जैन रामायणीय संस्कृति ने राष्ट्रीयता के लिए जो प्रदेय दिये हैं उनके महत्त्वपूर्ण विचारों का संकलन इसप्रकार होगा।

(१) जाति प्रथा जिसे वर्णाश्रम कहा है उस पर उग्रप्रहार कर इसने घोषित किया है कि किसी विशिष्ट कुल में जन्म लेने से कोई भी महान नहीं बन सकता। महानता उसके आचरण पर निर्भर है। अपने ब्राह्मणत्व से सच्चा ब्राह्मण बन सकता है, क्षत्रिय क्षत्रियत्व से और वैश्य वैश्यत्व से महान बनता है। शूद्र कुल का जन्म किसी को भी शूद्र नहीं ठहरा सकता। अपने आचरण से चारों वर्णों में से कोई भी शूद्र बन सकता है। बिना किसी विरोध की पर्वाह किये महावीर ने २५०० साल पहले और अन्य तीर्थंकरों ने असंख्य वर्ष पहले यह बात स्पष्ट रूप में कही है।

इससे एक दूसरा दुष्टचक्र टूटता है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व विकसन का स्वत्व तथा अवसर ही छिन लिया जाता है। पीढियों से दबी हुई जातियों में से कितने अंबेडकरों का व्यक्तित्व आज तक दब गया होगा? यह राष्ट्रीय हानि है और राष्ट्रीयता की जड उखाडने वाली विषवल्ली भी।

(२) सामाजिक समता गुणवान्, चारित्र्यसंपन्नता के आदर्श पर अवलंबित है। इसे पाने के लिए ही धर्म का राजमार्ग है इसलिए इस संस्कृति ने सभी वर्ण, जाति, और पंथों के लिए अपने द्वार खुले कर रखे हैं।

(३) स्त्री और पुरुष दोनों गृहस्थी के रथ के दो पहिये हैं। दोनों का

अपना अपना महत्त्व है। इनमें से एक की न्यूनता दूसरे के लिए हानिप्रद रहेगी इसलिए इस संस्कृति में दोनों को अपने विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध कर दिये हैं। तीर्थंकरों ने भी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ की निर्मिति कर उसे तीर्थ संज्ञा प्रदान की है।

स्त्री और पुरुष वेद-कर्म के कारण है जो घातिकर्म याने आत्मगुणों का घात करनेवाला कर्म नहीं है इसलिए अपने विकास के लिए दोनों को प्राप्त परिस्थिति के अनुसार समान अवसर राष्ट्रीयता में दिये जाते हैं।

भौतिक के साथ साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में निर्मित वर्ण-जाति या स्त्री पुरुष की विषमता के सामने इस संस्कृति ने विरोध का पहाड खडा करने की परंपर निर्माण की है जो इस संस्कृति की विशेषता है।

(४) प्राचीन भारतीय परम्परा की अखण्डित रक्षा का कार्य पार्श्वनाथ द्वारा किया गया और उनके द्वारा प्रचलित चातुर्याम के साथ समय की माँग के अनुकूल महावीर ने ब्रह्मचर्य को जोड राष्ट्रीयता के लिए समयानुकूल आवश्यकता की पूर्ति की है।

(५) राष्ट्रीयता के लिए परमावश्यक बात यह है कि लोगों में उसके प्रति अनन्य निष्ठा पैदा की है। इस संस्कृति के सारे प्रचारकों ने अपने आचरण एवं जीवन से इस आदर्श को प्रकट किया है। केवल बुद्धिप्रामाण्य ही नहीं अपितु जीवन के अनुभवों का निचोड उसमें भर दिया है।

(६) इस संस्कृति ने पदयात्रा प्रणाली के जरिए राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक एकता की एक अखण्ड ज्योति प्रज्वलित की है। श्रमण वर्ग में सब प्रान्तों, वर्गों एवं सम्प्रदायों के लोग शिष्य के रूप में सम्मिलित हैं और भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन सब भाषाओं में इन श्रमणों ने अपने विचारपुष्प गुंथे हैं।

(७) यह संस्कृति केवल ज्ञान को ही महत्त्व–प्रदान नहीं करती किन्तु सम्यक् दर्शन (श्रद्धा), सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य के सम्मिलित मार्ग को ही मोक्षमार्ग कहती है।

(८) इस संस्कृति के उन्नायक संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होने पर भी उन्होंने अपना तत्त्वज्ञान उपदेश, और प्रवचन आदि सुलभ सामान्य जनता की भाषा में राष्ट्रभाषा में लिखा और इस प्रकार विद्वद्भाषा से भी अधिक राष्ट्रभाषा का, समर्थन और बोली भाषा का प्रचलन इस संस्कृति की महान देन है। शौरसेनी, प्राकृत, महाराष्ट्री, पाली, अर्धमागधी आदि, भाषाएँ आज की राष्ट्रभाषा की माताएँ हैं। इन्ही से हिंदी, मराठी, बंगला गुजराती आदि भाषाएँ पनपी हैं।

(९) इस प्रकार लोकभाषा में लोगों के विचारों को परिपुष्ट करने का कार्य

राष्ट्रीयता का पोषण करने में समर्थ है। इसलिए उन्होंने परस्परविरोधी विचारों को भी समझने की आवश्यकता प्रस्थापित कर दी। अपना प्रतिस्पर्धी जिस विचार-प्रणाली का प्रतिपादन करता है उसका खण्डन करने की अपेक्षा उसकी विचार परंपरा किस दृष्टिकोण से सच है यह समझना आवश्यक बताया गया। इससे विरोधी विचारों को भी समझने की सहिष्णुता और सहानुभूति की भावना परिपुष्ट होती है। मेरा ही सच है के स्थान पर मैं सत्य का अनुसरण करता हूँ इस भावना की वृद्धि होती है। इससे यह भी फलित होता है कि केवल अपनी बात का समर्थन या प्रतिस्पर्धी की बात सुन लेने की सहिष्णुता ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ किसी भी बात को उसके सारे पहलुओं के साथ समझने के लिए सर्वंकश विचार करने की सक्षमता होना भी आवश्यक एवं अनिवार्य है जिससे संशयात्मकता का अभाव होकर तत्त्व निर्णय में निश्चयात्मकता आ जाती है।

जैन रामकथाकालीन संस्कृति राष्ट्रीय भावना के लिए पुष्टिकारक

इस प्रकार जैन रामकथा कालीन संस्कृति राष्ट्रीय भावना के परिपोषण का एक श्रेष्ठतम साधन है। यही बात हमारे सामने सुस्पष्ट हो जाती है। डॉ. शान्ताराम भालचन्द्र देव ने इसी सुस्पष्टता का समर्थन किया है जो द्रष्टव्य है –

" आज के युग में इस प्रकार का धर्म और उसमें ग्रथित चिरंतन तत्त्वों को समझने की अधिक अनिवार्यता पैदा हो गई है। एकान्तिक संकीर्णता-ग्रस्त मानव जाति को सहिष्णु बनाने में महावीर का स्याद्वाद आज भी समर्थ है। इस सहिष्णुता से ही सब क्षेत्रों में समानता की दिव्यदृष्टि प्राप्त होगी। पक्षान्धता, संकीर्ण जातीयता और बल के उन्माद पर कारगर उपाय के रूप में महावीर ने बताई हुई समानता आज भी उपयुक्त है। आज की स्वार्थान्ध एवं संकीर्ण दुनिया में महावीर के समान चारित्र्यसंपन्न पुरुष की बडी भारी आवश्यकता है। मानवजाति का अस्तित्व ही खतरे में ले जानेवाले सर्वसंहारक युद्धों को रोकने के लिए अहिंसातत्त्व पालन की महत्ता आज के जैसी पहले कभी न थी।"[७२]

---

७२. " अशा तऱ्हेचा धर्म व त्यात ग्रथित केलेली चिरंतन तत्त्वे यांची आजच्या इतकी केव्हाही गरज नव्हती. एकांतिकतेने व संकुचितपणाने बरबटलेल्या सध्याच्या मानव जातीला सहिष्णुता शिकविण्यास महावीराचा स्याद्वाद आज ही उपयोगी पडणार आहे. या सहिष्णुतेमुळेच सर्व बाबतींत समानतेची दिव्य दृष्टि प्राप्त होणार आहे. गटबाजी, जातीयता आणि सामर्थ्याचा गर्व ह्यांच्यावर तोडगा म्हणून महावीरांनी शिकविलेले समानत्व आजही उपयोगी पडणार आहे. संकुचित आणि स्वार्थी बनलेल्या सध्याच्या जगताला महावीरांच्या सारखे आदर्श चारित्र्याचे पुरुष आज ही पाहिजे आहेत. मानवजातीचे अस्तित्व धोक्यात आणणारी सर्वसंहारक युद्धे थांबविण्यास आजच्या इतकी अहिंसेच्या तत्त्वपालनाची निकड कधीही नव्हती. "

– शान्ताराम भालचंद्र देव, जैन सम्प्रदाय व संस्कृति
पृ. १५।१६ सन १९६३

हमारी मान्यता इसी अहिंसा तत्त्वपालनार्थ

अहिंसा तत्त्व का पालन और उसकी सार ग्रहिता जैन रामकथाओं में अभिव्यक्त संस्कृति बिरासत के रूप में हमें निश्चित रूप में उपलब्ध हो गयी है। अतः उसका परिपालन दैनंदिन जीवन में चरितार्थ करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। परमपूज्य स्वर्गीय राष्ट्रपिता बापूजी ने इसी अहिंसा तत्त्व का समर्थन कर इस मान्यता को अपनी पुष्टि प्रदान की थी। यहाँ हमारा अभिप्राय अतिरेकी अहिंसा से कदापि नहीं है। इस आशय को स्पष्ट रूप से तभी समझा जा सकता है जब हम जैन रामकथाओं में अभिव्यक्त और अनुप्राणित अहिंसा तत्त्व का सम्यक अध्ययन करें और उसे जीवन में उतारे। यों जैन रामकथा का अध्ययन भिन्न भिन्न दृष्टियों से कई लोगों ने किया है। पर भारतीय संस्कृति में जो सर्वांगीणता है और उसमें हिंदू, बौद्ध, जैन और द्रविड संस्कृति की जो स्रोतनियाँ मिल गई हैं उनसे इस महाद्वीपवत् भारत वर्ष में महामानवों का जो सागर परस्पर वैचारिक आदान प्रदान की लहरें आन्दोलित कर चुका है उसकी धाराएँ इतनी गहराई तक संमिश्र हो चुकी हैं कि उनको अलग करना आसान कार्य नहीं है और यह हमारा लक्ष्य भी नहीं है। हमने तो प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत रामकथाओं के माध्यम से जो अध्ययन प्रस्तुत करना चाहा और उसमें प्रतिपादित अहिंसा तत्त्व का हिंदु जन जीवन पर पडे हुए व्यापक रामप्रभाव को देखा और उसे इसी के समानांतर और इसी से घुलमिल जानेवाली बौद्ध और जैन श्रमण संस्कृति से अनुप्राणित लोक व्यापिनी रामकथा में अभिव्यक्त राम लक्ष्मण रावण जैसे चरित्रों के अध्ययन से उसे परखा। परिणामतः इस जैन रामकथा का एक अलग स्वरूप किस प्रकार भारतीय जन जीवन को परिव्याप्त कर चुका है इसे जहाँ तक बन सके तटस्थ रहकर अभिनिवेश रहित दृष्टि से समझने का हमारा प्रांजल प्रयत्न रहा है। जातिप्रथा के अतिरिक्त गुणों पर आधारित ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व एवं शूद्रत्व आदि चारों वर्णों के गुण जीवन के लिए कितने उपादेय हैं इसे भी समझा बूझा है और यहां पर आचरण की बात प्रधान बन जाती है। इसे भी निश्चित ध्यान में रखा है।

राष्ट्रीयता के प्रति निष्ठा आचरण पर निर्भर

मानवीय धर्म अहिंसा और चारित्र्य संपन्नता से ही परिपुष्ट हो सकता है किंतु जबतक गुणार्जन समन्वय की दृष्टि से नहीं किया जाता तब तक व्यक्ति और समाज, स्त्री और पुरुष ऊँच और नीच के संघर्ष पारस्परिक विकास में बाधक सिद्ध होते ही रहेंगे। अतएव हमें ऐसा लगता है कि हमारे इस अध्ययन से राष्ट्रीयता के लिए पोषक जीवन की भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का विकास विरोधों को मिटा कर भी किया जा सकता है। ऐसी संभावनाएँ इन जैन रामकथाओं के अध्ययन से उपलब्ध हो सकती हैं ऐसा विश्वास पूर्वक कहा जा सकता

है। राष्ट्रीयता के प्रति निष्ठा, आचरण और जीवन के समन्वय से ही सिद्ध हो सकती है जिसे जैन वीतराग मुनियोने अपने दैनंदिन आचरण से सत्य कर दिखाया है। ज्ञान को सम्यक् महत्त्व देकर, जीवन और चारित्र्य को भी उतना ही सम्यक् महत्त्व देना जैन रामकथाओं के पात्रों की विशेषताएँ कही जा सकती हैं। डॉ. देव ने जिस बात का प्रतिपादन किया था उसे समझाने के लिए हमें इतना लंबा विवेचन करना पडा। इससे यही बात सिद्ध होती है कि हम श्री देव के कथन से पूर्णतया सहमत है और अपनी बातसे उसकी पुष्टि ही करते हैं।

इससे संपूर्णतया यही सिद्ध होता है कि मानवसमाज की सुरक्षा और विकास के लिए अहिंसातत्त्व का आचरण सिद्ध कर मानव कल्याणार्थ बरता जाय। जैन रामकथा से संप्राप्त यह दिव्य सन्देश भारतीय रामकथा साहित्य की अक्षय और अमर निधि है जिसे अक्षुण्ण रूप से यदि समझा-बूझा जाय तो भारतीय जन-जीवन का कल्याण हो सकता है ऐसा इस अनुशीलन कर्ता का प्रामाणिक और दृढ विश्वास है। यह समूचे भारतीय रामकथा साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रदेय है यही बात इससे सिद्ध हो जाती है।

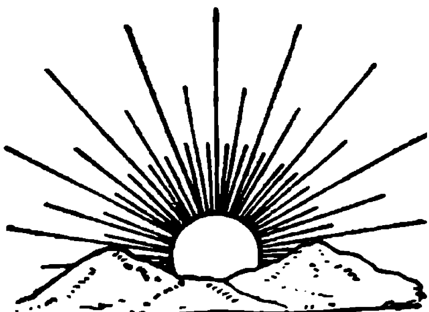

परिशिष्ट – ४

कुछ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी ग्रन्थ

क्र.	ग्रन्थ	लेखक या प्रकाशक	वर्ष
१	अमर कोष	चौखम्बा सेरिज वाराणसी	१९५७
२	अपभ्रंश भाषा का अध्ययन	वीरेंद्र श्रीवास्तव	१९६५
३	अशोकवन एकांकी	हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, बंबई	
४	अद्‌भुत रामायण	वेंकुंठेश्वर प्रेस, बंबई	
५	अपभ्रंश साहित्य	हरिवंश कोछड	सं. २०१३
६	असमियामें रामसाहित्य	विष्णुकान्त शास्त्री	
७	अहिल्या उद्धार कथा	मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ	
		धीरेन्द्र वर्मा	१९६५
८	ईस्ट इंडिया कालीन रामकाव्य	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	
		मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ	१९६५
९	काव्यशास्त्र	भगीरथ मित्र	१९५५
१०	कम्बन और तुलसी	नायड सुखंकरशन	१९५६
११	कन्नड साहित्य में रामकथा	हिरण्मय	
	परम्परा	मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ	७५१
१२	काव्यकल्पद्रुम – रसमंजरी	कन्हैयालाल पोद्दार	
१३	काव्यकल्पद्रुम – अलंकार मंजरी	,, ,,	
१४	गुजराथ में रामायण	प्रल्हाद चन्द्रशेखर दिवाणजी	
१५	गोरखनाथ और उनका युग	डॉ. रांगेय राघव (कल्याण –	
		रामायणांक)	१९६
१६	गोस्वामी तुलसीदास	डॉ. रामदत्त भारद्वाज	१९६२
१७	छन्दप्रभाकर	जगन्नाथ प्रसाद भानु	१९६०
१८	छन्दोन्दुशासन	प्रो. ह्. रा. वेलणकर	सं. २०३७
१९	जैन साहित्य और इतिहास	पं. नाथुराम प्रेमी	१९४१
२०	जैन धर्म की झलक	प्रा. शांतिलाल खेमचंद शाह	१९५९
२१	जैन दर्शन	प्रा. महेंद्रकुमार	१९५५
२२	जैन धर्म	कैलासचंद्र जैन	
२३	जैन शासन	पं. सुमेरुचंद्र दिवाकर	१९४७

२४ जैन भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि	डॉ. प्रेमसागर	१९६३
२५ जैन सम्प्रदाय और संस्कृत	शांताराम प्रे. देव	१९६३
२६ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास	पं. बेचरदास दोशी	१९६६
२७ जीवन और शिक्षण	विनोबा भावे	सं. २०१३
२८ जैन रामायण	नरसिंहाचारी	१९३९
२९ जैन आगमीय साहित्य में भारतीय समाज	डॉ. जगदीशचंद्र जैन	
३० जातक कथा	भदंत आनंद कौसल्यासन	सं. २००८
३१ जैन धर्मामृत	डॉ. हिरालाल जैन	१९५९
३२ तुलसी पूर्व रामसाहित्य	डॉ. अमरपाल सिंह	१९६८
३३ तुलसीदर्शन	बलदेव प्रसाद मिश्र	१९४२
३४ तुलसीदास और उनकी कविता	रामनरेश त्रिपाठी	१९२५
३५ तुलसीदास	माता प्रसाद गुप्त	१९५०
३६ देवनागरी लिपि स्वरूप और समस्याएँ	डॉ. जोगलेकर	
३७ नाथ सम्प्रदाय	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	
३८ पद्मपुराण	पं. दरबारीलाल	१९५९
३९ प्राकृत अपभ्रंश साहित्य का हिंदी पर प्रभाव	डॉ. रामसिंह तोमर	
४० प्राकृत साहित्य का इतिहास	डॉ. जगदीशचंद्र जैन	
४१ प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ	डॉ. जगदीशचन्द्र जैन	१९४६
४२ पुण्यास्रव कथा कोष	रामचंद्र मुमुक्षु – डॉ. उपाध्ये	१९६४
४३ पुण्यचंद्रोदय	कृष्णदास	१५२८
४४ प्रशस्ति संग्रह	आमेर शास्त्र भंडार	१९५०
४५ बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन	प्रा. भरतसिंह उपाध्याय	१९५४
४६ बृहत्कथा कोष	हरिषेण-डॉ. उपाध्ये	
४७ भागवत संप्रदाय	बलदेव उपाध्याय	
४८ भक्ति का विकास	मुन्शीराम शर्मा	१९५८
४९ भारतीय तत्त्वचिंतन	डॉ. जगदीशचन्द्र जन	
५० भारतीय संस्कृति के आख्याता – मैथिलीशरण गुप्त	डॉ. उमाकान्त नारंग	
५१ भारतीय दर्शन	डॉ. बलदेव उपाध्याय	
५२ भारत की मौलिक एकता	वासुदेव शरण अग्रवाल	१९५४
५३ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान	डॉ. हिरालाल जैन	१९६२

५४	भक्तमाल	नाभादास	१९६२
५५	भागवत पुराण	गीताप्रेस गोरखपूर	१९६२
५६	भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी	डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या	
५७	भारतीय दर्शन	उमेशमित्र	१९६४
५८	मानस में रामकथा	बलदेव उपाध्याय	१९६५
५९	मरुधर केसरी मिश्रीलाल महाराज अभिनंदन ग्रंथ		१९६८
६०	मुनिश्री हजारीमल अभिनंदन ग्रंथ		१९६५
६१	मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ		१९५९
६२	रामकथा	रे. कामिल बुल्के	१९६२
६३	रामायणकालीन समाज	शांतिकुमार नानुराम व्यास	१९६४
६४	रामायणकालीन संस्कृति	शा. ना. व्यास	१९६५
६५	रामचरित मानस	गीता प्रेस गोरखपुर	१९६१
६६	रामचरित मानस	काशीराज संस्करण	१९६२
६७	राष्ट्रभाषा विचार संग्रह	डॉ. न. चि. जोगळेकर	१९६२
६८	रामायण महाकाव्य का बालकाण्ड	पं. सातवलेकर	सं. १९८६
६९	रइधु साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन	डॉ. राजाराम जैन	१९६४
७०	वाल्मिकि रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. विद्या मिश्र	१९६३
७१	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग १-२	डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत	१९५९
७२	साहित्य दर्पण	मोतीलाल बनारसीदास	१९६१
७३	स्वयम्भू और तुलसी का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. ग. न. साठे	१९६८
७४	साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	सं. २०२०
७५	हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	डॉ. शंभुनाथ सिंह	१९६२
७६	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	
७७	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी	
७८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. रामचन्द्र शुक्ल	
७९	हिन्दी काव्यधारा	पं. राहूल सांकृत्यायन	१९४५
८०	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान	डॉ. नामवरसिंह	१९६१
८१	हिन्दी साहित्य कोष	ज्ञानमण्डल लि.	सं. २०१५
८२	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास	डॉ. शंभूनाथसिंह	१९६२

८३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ. रामकुमार वर्मा	१९६२
८४ हिन्दुस्थान की पुरानी सभ्यता	बेनीप्रसाद	१९३१
८५ हिन्दी और मराठी वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. न. चिं. जोगलेकर	१९६९

संस्कृत तथा प्राकृत ग्रंथ

१ अद्भुत रामायण	वैकुंठेश्वर प्रेस	बंबई
२ अध्यात्म रामायण	कलकत्ता संस्कृज सेरिज	सं. २०११
३ उत्तर पुराण	गुणभद्र–स्याद्वाद ग्रंथमाला	सं. १९७५
४ उपासकाध्ययन	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	१९६४
५ उत्तराध्ययन सूत्र	सौभाग्यचंद्रजी महाराज	सं. १९९१
६ चउपन्न महापुरिस चरित्र	शीलांकाचार्य	
७ त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	हेमचंद्र–जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर	१९६०
८ देशी नाममाला	बॉम्बे संस्कृत सेरिज (हेमचंद्र)	१९३८
९ धूर्ताख्यान	हरिभद्र	
१० धर्मपरीक्षा	अमितगति	
११ पउमचरिय	विमलसूरि जै. ध. भावनगर	१९१४
१२ पउमचरिय भाग १,२	विमल सूरि प्राकृत ग्रंथ परिषद	१९६२
१३ पउमचरिउ	स्वयम्भू भायाणी	१९६८
१४ पाइयसद्द महण्णओ	प्राकृत ग्रंथ परिषद	सं. २००९
१५ पुण्णस्सव कहा	रामचंद्र मुमुक्षु	१९३१
१६ प्राकृत पैंगुलम्	डॉ. भोलाशंकर व्यास	१९५९
१७ पुण्यचंद्रोदय	कृष्णदास	१५२८
१८ रघुवंश	निर्णयसागर प्रेस	सं. २००२
१९ रामचरित्र	देवविजयगणि	१५९६
२० लघु त्रिषष्टि	आचार्य सोमप्रभ	
२१ लघु त्रिषिष्टि	आचार्य सोमप्रभ	
२२ लघुत्रिषष्टि शलाक पु. च.	मेघविजय गणि पं. मफतलाल झवेरचंद	
२३ वसदेव हिण्डि	आत्मानंद जैन ग्रंथमाला	
२४ वाल्मीकि रामायण	निर्णयसागर प्रेस	
२५ वाल्मीकि रामायण	गीता प्रेस गोरखपुर	सं. २०१७
२६ शत्रुंजयमाहात्म्य	धनेश्वर पं. भगवानदास	

२७ श्रीमद्वाल्मीकि रामायण	मु. रा. सुंदेरेशशास्त्री	१९५९
२८ याज्ञवल्क्य स्मृति	चित्रशाला प्रेस पूना	शके १८३४

मराठी गुजराथी ग्रंथ

१ पद्म पुराण भाग १,२	(रविषेण) फडकुलेशास्त्री	१९६८
२ तत्त्वत्रयी-मीमांसा	अमरविजयजी	१९२५
३ रामायणाची समालोचना	महाराष्ट्रीय	१९२७
४ भावार्थ रामायणाचा विवेचक अभ्यास	श्री वसंत जोशी	१९६८
५ रामायणाविषयी नवा दृष्टिकोण	भास्करराव जाधव	
६ हैम सारस्वत	भारतीय विद्याभुवन अंधेरी	१९६३
७ हेम समीक्षा	मधुसूदन चिमनलाल मोदी	१९४२

अंग्रेजी

१ आउटलाइन्स ऑफ जैनिझम	चंपतराय जैनी	१९४०
२ ओरिजिन अँड डेवलपमेंट ऑफ रामस्टोरी इन जैन लिटरेचर	वी. एम्. कुलकर्णी	१९६०
३ क्रीटिकल स्टडी ऑफ पउमचरियम्	डॉ. के. आर्. चन्द्र	१९६२
४ कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया	डॉ. राधाकृष्णन	१९३०
५ जैनिझम	ग्लाझेनीप	१९२५
६ ट्रडिशन अबाउट वानराज अँड राक्षसाज	चक्रवर्ति चिन्ताहरण भाग १	१९२५
७ स्टडी इन दी एथिक्स ऑफ दि बॅनिशमेंट ऑफ सीता	अरविंदकुमार	१९६१
८ रिडिल् ऑफ रामायण	सी. वी. वैद्य	१९०६
९ रामायण अँड स्कलचर्ड रिफलेक्स इन जावानीझ टेम्पल	जे. कीटस्	१९४०
१० लाइफ ऑफ हेमचन्द्र	सिंघी ग्रंथमाला	
११ हिस्टरी ऑफ इंडियन लिटरेचर	एम. विण्टरनिट्झ	
१२ हिस्टॉरिकल ग्रामर ऑफ अपभ्रंश	जी. व्ही. तगारें	
१३ हिस्टरी ऑफ सिव्हिलाइझेशन ऑफ एन्शंट इण्डिया	दत्त आर्. सी.	१८९९

जर्नलस्

१ जैन गझेट	१९४०
२ इम्पिरियल गझट बा. ११	

३ जैन सिद्धान्त भास्कर १९४०

४ जर्नल ऑफ दि युनिव्हर्सिटी ऑफ बॉम्बे १९३१

५ जर्नल ऑफ दि ओरियंटल इन्स्टीट्यूट ऑफ बरोडा १९६२

६ म्युझियम रिपोर्ट (लखनौ) १८९०-९१

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची – क्र. २

भारतीय दर्शन	डॉ. राधाकृष्णन्	१९१८
जिनवाणी	हरिसत्य भट्टाचार्य सुशील	सं. १९९३
दशवैकालिक सूत्र	मुनि सौभाग्यचंद्रजी	१९३५
कर्मग्रंथ भाग १	देवेंद्र सूरि	१९३१
श्रीमद् भगवद्गीता		
नवतत्त्व	जैन श्रेयस्कर मंडल	सं. २००४
देवसिय राइय प्रतिक्रमण	„	सं. २००४
विविध पूजा संग्रह	प्र. उमेदचंद रायचंद	१९३३
कल्पसूत्र सुखबोधिका	भद्रबाहु स्वामी	१९५४
तत्व निर्णय प्रासाद	विजयानंद सूरि	१९०२
आनंदघन पदसंग्रह	बुद्धिसागर सूरि	१९२५
संस्कृत साहित्य का इतिहास	– बलदेवप्रसाद उपाध्याय	
जैन संप्रदाय आणि संस्कृति	डॉ. शां. भा. देव	१९६३
मॉडर्न रिव्यु सितंबर १९१४		
जैन युग – खंड १ व २		सं. १९८१
जैन विद्या – लाहोर – वाल्यूम १		
महाराष्ट्र टाईम्स पूर्ति १९७०		
दैनिक सकाळ ११ मई १९६९		
यस्टरडे अँड टु डे – ग्लिम्पस ऑफ – इन्शंट इंडिया	(प. चक्रवर्ति)	१९२५
ओरिजिन अँड डेवलपमेंट ऑफ जैन रामकथा – व्ही. एम् कुलकर्णी		१९६२
हिस्टरी अँड कल्चर ऑफ दि इंडियन पीपल–पास्ट वैदिकएज–डॉ. चाटुर्जा,		१९२५
लिटररी इव्हॅल्युएशन ऑफ पउम चरियं – डॉ. चन्द्र –		१९६६

अध्याय ९

जैन परंपरा के रामकथा-साहित्य के अनुशीलन की निष्कर्षात्मक उपलब्धियां एवं उपसंहार

जैन परंपरा के रामकथा साहित्य का इतना विशद अध्ययन कर लेने के बाद ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि एक विहंगमावलोकन अपने इस अनुसंधान विषयक सामग्री का कर लेने से हमारे अध्ययन में उपलब्ध निष्कर्षों को हम एकत्र कर सकेंगे। यह अध्ययन जिस लक्ष्य को सामने रखकर सिद्ध किया गया है उसका उपक्रम चार प्रातिनिधिक जैन रामकथाओं को अनुशीलनार्थ चुनने से होता है। अत: हम यहां पर अब यही कार्य करेंगे।

चार प्रातिनिधिक रामकथाएँ अनुशीलनार्थ क्यों ?

इस अध्ययन के लिए जो चार रामकथाएँ ली गई हैं उनमें से प्रथम और द्वितीय जैन रामकथाएँ क्रमश: प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में लिखी गई हैं जो लोक-साहित्य से संबंधित प्रातिनिधिक जैन रामकथाएँ हैं। इनको इसलिए चुना गया क्योंकि इनमें जैन रामकथा की मान्यताओं के अनुसार राम अवतार और भगवान नहीं है। बल्कि वे बुद्धि एवं शक्तिसंपन्न बलदेव एवं श्रेष्ठ व्यक्ति हैं। लक्ष्मण त्रिखण्ड के स्वामी और बलदेव से अधिक शक्तिसंपन्न एवं वासुदेव हैं। विमलसूरि और स्वयम्भू ने इन विशेषताओं से युक्त पात्रों का निर्माण अपनी लोकभाषा में किया है जिसका अनुकरण अन्य जैन रामकथाकारों ने किया है। कैकेई, रावण, वाली आदि के चरित्र भी पारंपरिक रूपों से इनके द्वारा अभिव्यक्त नहीं किये गये प्रत्युत इनमें भिन्न एवं अधिक मानवीय रूपों में लोकभाषाओं में निबद्ध जैन रामकथाओं में अभिव्यक्त हो सके हैं। अन्य दो रामकथाएँ संस्कृत में लिखी गई हैं। वे इसलिए चुनी गई हैं क्योंकि इन दोनों के लेखक अपने काल के गण्यमान संस्कृत के आचार्य एवं विद्वान थे अतएव लोकभाषा में प्रचलित जैन रामकथा को विद्वद् जनों की भाषा में अंकित करना और उसे मान्यता प्राप्त करा देना साधारण कार्य नहीं था। आचार्य गुणभद्र और आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने जैन परम्परा की रामकथा के अतिरिक्त वैदिक परंपरा की रामकथा की कुछ विशेषताओं को ग्रहण करते हुए कुछ अन्यतम मौलिक उद्भावनाएँ अपनी संस्कृत

जैन रामकथाओं में प्रस्तुत की हैं। कहने का अभिप्राय यही है कि इनमें इतिहास-तत्त्व, लोककथातत्त्व और पुराणतत्त्व इन तीनों तत्त्वों का अद्भुत संगम हुआ है। इन जैन रामकथाओं को चुनकर समूची जैन रामकथाओं के स्वरूप, विकास और शैली का सम्यक् अध्ययन करनेवालों के लिए हमारे इस अध्ययन से महत्त्वपूर्ण निकष प्राप्त हो सकते हैं जो इन तीन तत्त्वों पर आधारित हैं।

रामकथा के स्रोत :

रामकथाओं की लोकप्रियता हमें इस प्रकार के चिन्तन को जन्म देती है कि हम रामकथा के मूलस्रोतों को खोजें। यह खोज करने पर हमारे सामने दो प्रमुख स्रोत आते हैं। प्रथम स्रोत विद्वान साहित्यकारों के द्वारा निर्मित वैदिक परंपरा का है। दूसरा स्रोत जनता के मानस में प्रचलित लोकरामकथा का है। ऐसी परिस्थिति में जैन रामकथा की गंगोत्री कहाँ से निकली है इसकी छानबीन करना आवश्यक था जिसे केवल जैन रामकथाओं से ही खोजना उपयुक्त नहीं हो सकता था इसलिए जैनेतर रामकथा और जैन रामकथा दोनों का तारतमिक रूप से विचार करने पर लोकप्रियता की दृष्टि से लोक रामकथा की परिणति जैन रामकथा में किस प्रकार हुई इसे सम्यक रूप से देखा गया। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय क्षेत्रों में होनेवाले विकास के साथ साथ भिन्न भिन्न रामकथाओं के भिन्न भिन्न रूप मानवीय स्वभाव की भिन्न भिन्न विशेषताओं के साथ जैन रामकथाओं में प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत भाषाओं के माध्यम से सतत विकसनशील और प्रवाहमान होते रहे हैं जैसे वह वैदिक परंपरा में भी होते रहे। पर अपेक्षाकृत कम मात्रा में। अतएव जैन रामकथाओं में अपनी मौलिकताओं की उद्भावनाएँ तथ्य के रूप में हमारे सामने स्पष्ट रूप से आ जाती है जो इन स्रोतों के अध्ययन से उपलब्ध हुई हैं।

जैन रामकथाओं के पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि

जैन रामकथाओं के पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से कुछ अन्यतम विशेषताएं इन चारों जैन रामकथाकारों ने हमारे सामने अंकित की हैं। उनमें से प्रमुख रावण और राम की वांशिक संबंधों कें संदर्भों की है। ऐसी कतिपय भिन्नताएँ जैनेतर रामकथाओं से उसे अलग करती हैं। जैन रामकथाओं में कई उद्भावनाएँ रावण, वाली, लक्ष्मण, राम, कुम्भकर्ण, हनुमान और नारद का लेकर की गई हैं जिनका सम्यक् अध्ययन बिना चरित्र चित्रण के स्पष्ट नहीं हो सकता था। सीता, कैकेई, चन्द्रनखा, मन्दोदरी, अंजना और विशल्या आदि के चरित्र भी अपनी अपनी दृष्टि से जैनेतर रामकथा के पात्रों से बिलकुल पृथगात्मक हैं। इन पात्रों में उभरी हुई मानवीय विशेषताएँ सहज सुलभ होने से आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य गुणभद्र, आचार्य विमलसूरि और आचार्य स्वयम्भू जैसे कृतिकारों की प्रतिभा-संपन्नता के विपुल प्रमाण इस अनुशीलन से हमें उपलब्ध हो जाते हैं। राम के चरित्र से लक्ष्मण

का चरित्र जैन रामकथाओं में अधिक वरेण्य बन गया है। रावण जैसा खलपुरुष मानवीय बनकर गुणों और धर्म निष्ठा से ओतप्रोत तथा व्रतस्थ और सहज सुलभ चरित्र लगता है। उसका स्खलन भी मानवीय ही है। यहाँ प्रत्येक पात्र की विशेषताओं के बारे में कहने का अवकाश नहीं पर इतना कहना ही पडेगा कि इन कृतिकारों ने अपनी रामकथाओं के पात्रों से मनुष्य की द्वंद्वात्मक प्रकृति को दिखाने का प्रयत्न किया है। मनुष्य अपने में पूर्णतया मानवीय या अमानवीय नहीं होता। उसकी प्रकृति सदाचार या दुराचार से संपृक्त होती है। इन दो में से किसी एक का दूसरे से बढ जाना ही मनुष्य को अधोगामी या ऊर्ध्वगामी बना देता है। यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि जैन रामकथा के माध्यम से हमें उपलब्ध होती है। यह निष्कर्ष कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस अध्ययन से पारंपरिक मान्यताओं के दोषों का परिहार करने के संकेत हमें उपलब्ध हो जाते हैं। जैन रामकथाओं के पात्रों की एक अन्यतम विशेषता एवं उपलब्धि जीवन के प्रति वैराग्य की भावना को जगाना भी है जो अंत में वीतराग-रस में परिणत हो जाती है।

जैन रामकथाओं में धर्म और मोक्ष को प्राधान्य :

चारों जैन रामकथाओं में अर्थ और काम गौण बन गये हैं और धर्म और मोक्ष के लिए प्रमुख पात्र प्रयत्नशील दिखाये गये हैं। कहीं कहीं पर शृंगारवर्णन साहित्यिक दृष्टि से अश्लीलता की कोटितक पहुँच गये हैं ऐसी धारणा संभवतः हो सकती है। पर वह भी परिपूर्ण रीति से अश्लील इसलिए नहीं कही जायगी क्योंकि उसमें कहीं भी वासनासक्तता नहीं दिखाई देती। जैन रामकथा एक माध्यम होने से घटना और प्रसंगों के अनुकूल पात्रों की विशेषताएँ वर्णन करते समय मानवीय धरातल पर उनका यथार्थ वर्णन यदि किया जाय तो वह श्लाघ्य ही माना जाना चाहिए। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ये चारों आचार्य प्रवर अपने जीवन में वीतरागी महापुरुष थे जिनका आचरण समाज में आदर्श माना जाता था। अतः वे वासनासक्त वर्णन क्योंकर करेंगे ?

जैन रामकथा में भक्तिरस एवं वीतराग रस की प्रधानता :

अवतार ईश्वर स्वरूप के प्रति भक्ति प्रायः साहित्य में अभिव्यक्त की गई है पर वीतरागी तीर्थंकरों की भक्ति वीतरागी रस से अनुप्राणित हो कर करना जैन रामकथा की भक्ति का स्वरूप कहा जा सकता है। यहाँ भक्ति भगवद् प्रेम से न होकर वीतरागी के प्रति सहज, वीतराग से उत्पन्न वीतरागी में उद्भुत धर्मरसात्मक अनुभूतिपूर्ण भक्ति का स्वरूप सामने आता है। यहाँ न राग है न विराग। बल्कि दोनों का अन्त होकर साधक एक साम्यावस्था की उपलब्धि करता है जहाँ साधक की आत्मा अपनी सम्पूर्ण आत्मदशा में आ गई हो तथा जहाँपर आनन्दमय अनन्त

ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र्य और अनन्त सुख के द्वारा अपूर्व पूर्णावस्था को प्राप्त करती है। हम कह सकते हैं कि यह स्थिति अपनी आत्मशक्ति का विकसनशील आत्मविकास है। जैन रामकथाओं का यह वीतराग रस एक उच्चतम उपलब्धि है। ऐसा वीतराग रस अन्यत्र प्राप्त करना दुर्लभ है अतः इसका आध्यात्मिकता के नाते सर्वश्रेष्ठ महत्त्व स्पष्ट एवं स्वयंसिद्ध है।

जैन रामकथाओं की दार्शनिकता

भौतिक जीवन में आध्यात्मिकता का समन्वय जैन रामकथाओं की दार्शनिक मान्यताओं का सार है। स्याद्वाद, नयवाद और सप्तभंगी ये सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की अविभाज्यता और षड्दर्शन के परस्पर विसंवादी तत्त्वों के विरोध को हटाकर उसमें एक संवाद निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। जैन रामकथाओं में प्रकट ज्ञान सिद्धान्त, कर्म सिद्धान्त, ओर गुण स्थान क्रमारोह, सांस्कृतिक समन्वय और बल प्रदान कर सकते हैं। जीवों की बिकट अवस्था या उनकी नारकीयता से उनका उद्धार प्रव्रज्या और वीतरागता से सुसंपन्न हो सकता है यह जैन रामकथा हमें सिखाती है। सगुण और निर्गुण ब्रह्म के पचडे में न पडकर इतना कहा जा सकता है कि ये दोनों सिद्धरूप ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय आयु, गोत्र ओर अंतराय कर्मों को उसी प्रकार नष्ट कर सकते हैं जैसे एक दीपक के पास दूसरा दीपक रखने से पहले के प्रकाश से दूसरे का प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। पर उसका अपना अस्तित्व दूसरे से भिन्न होता है वैसे ही प्रत्येक आत्मा का एक स्वतंत्र अस्तित्व है। उनमें समानता की दृष्टि, केवलज्ञान, केवल दर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य की धारणाएँ पृथक् होकर भी समान रूप से पाई जा सकती हैं यही उनकी एकात्मता है। पर जीवन्मुक्त सिद्ध-पुरुष ही तीर्थंकर होते हैं और उनके पाँच विशिष्ट गुण उनमें पाये जाते हैं जैसे उनकी सर्वज्ञता, रागादि दोषरहितता, उनकी त्रैलोक्यपूजित प्रतिष्ठा, मैत्रीभाव, प्रमोदभाव, कारुण्यभाव और माध्यस्थ भाव एवं उनकी यथास्थितार्थवादिता उनको सिद्ध बनाती है। यह उपलब्धि जैन रामकथाओं में बराबर मिलती है। पाँच प्रकार के संसारी जीव भी जैन रामकथाओं में उपलब्ध होते हैं। यहाँ हम उनका विशेष विवेचन नहीं करेंगे। जैन दर्शन के अनुसार जगत्, जीव और अजीव का अस्तित्व अनादि है। जैन रामकथा के पात्र और जैन रामकथाओं का जगत् इस अनादि अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय आदि द्रव्यों से जीव और पुद्गलों का संचरण और स्पन्दनादि होता रहता है। अणुव्रत जैसे आचारपक्ष की बातें जैन रामकथाओं के पात्रों के द्वारा आचरण में बरती गई दिखाई देती हैं। पुद्गल और जीवन का नियम विश्व नियमन के पुरुषार्थ, काल, स्वभाव नियति आदि से होता है। कर्म आत्मा के साथ संबद्ध है अतएव कर्म से सुख दुःख की उत्पत्ति होती

है। बिना पुरुषार्थ के कोई कार्य नहीं होता। अतः पुरुषार्थ को भी सृष्टि रचना का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। इसके साथ काल, स्वभाव, नियति उसके सहायक होते हैं। इसे घट के उदाहरण से हम पूर्व ही स्पष्ट कर आये हैं जिसकी पुनरावृत्ति हम यहाँ पर नहीं करेंगे।

जैन रामकथा के अनुशीलन का सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व

यह अनुशीलन भारत की राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक भावना की पृथगात्मकता को एकात्मता में परिवर्तित करने में सहायक हो सकता है क्यों कि, जो समस्याएँ आज राष्ट्रीयता को छिन्न भिन्न कर रही हैं उनको समता के स्तर पर लाने की प्रेरणा यह अनुशीलन निश्चित रूप से दे सकता है ऐसा विश्वास इन चारों जैन रामकथाओं के अनुशीलन से संप्राप्त हो जाता है। धर्म-निरपेक्षता, धर्मसहिष्णुता से ही पनप सकती है तथा क्षमा, मृदुता, सरलता, वाणी एवं आचरण की एकता, सत्य, संयम, त्याग, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य ऐसे गुण हैं जो धर्म के सम्यक् स्वरूप को मानव में विकसित करते हैं और मनुष्य को देवत्व की ओर ऊर्ध्वगामी करते हैं। सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना राष्ट्रीयता का अनमोल गुण सिद्ध हो सकता है। यही निष्कर्ष जैन रामकथा के अनुशीलन से हमें उपलब्ध हुए हैं।

संक्षेप में जैन रामकथाकालीन संस्कृति हमारी राष्ट्रीय भावना का परिपोष करने में सक्षम है यह मानने में हमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। जीवनोपयोगी सारग्रहिता, चारित्र्यसंपन्नता, स्त्री और पुरुष के बीच मैत्रीभाव, परस्पर सौहार्द, एक दूसरे के प्रति अनन्य निष्ठा ज्ञान की तितिक्षा और जनभाषाओं का विकास ये सारे गुण जैन रामकथाओं के अनुशीलन से हम उपलब्ध कर लेते हैं।

जैन रामकथा शोभनीय :

अतएव कहा जा सकता है कि इस अध्ययन का जो उपक्रम किया गया था उसका उपसंहार भी उतना ही उपादेय और सारग्राही बन सकता है क्योंकि मानव यदि गुणार्जन करे तो दोषों का परिहार अपने आप हो जाता है। यही मान्यता और अनमोल सन्देश इन चारों जैन रामकथा साहित्यानुशीलन से हमें उपलब्ध हुआ है जो सुष्ठु और शोभनीय है।